卐

श्रीसरस्वती-महानदी-निर्णय:

(भाषा-टीका-सहितः)

स्वा० कूटस्थानन्देन विरचितः

स च

श्रीमता पं० अमरनाथेन शास्त्रिणा व्याकरणाचार्येण संशोधितः

प्राचीनभारत तथा पञ्जाब के नक्शे, सरकार की मुद्रण-स्वीकृति न होने के कारण इस पुस्तक में नहीं दिये जा सके।

卐

श्री सरस्वती-महानदी-निर्णयः

स्वा० कूटस्थानन्देन विरचितः

स च

श्रीमता पं० अमरनाथेन शास्त्रिणा व्याकरणाचार्येण संशोधितः

प्रकाशक :

श्रीमान् बदरीनारायण ब्रह्मचारी,
कुटिया ला० मुन्शीराम सूद,
बहादुरपुर होशियारपुर।

प्रथम संस्करण—१०००

मुद्रक :

देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर,
विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च-
इन्स्टीच्यूट प्रैस, होशिआरपुर।

प्रार्थना

भो विद्वज्जनाः !

यद्यपि अस्मिन्निबन्धे प्रमादाद् वाऽल्पज्ञतावशाद् बहवो दोषाः स्युः। तथापि भवन्तोऽनुकम्पया तान्विगणय्य स्वयं शोधयित्वा पठन्तु तथा मामपि सूचयन्तु। एनमादितोऽन्तपर्यन्तं विचार्यैव सरस्वत्या निर्णयस्य यथार्थज्ञानं भविष्यति। प्रथमं भूमिकां पठित्वा समाहितेन चेतसाऽध्येतव्योऽयं ग्रन्थः।

बालकृतमपराधं क्षमयन्ति सन्तः।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

ग्रन्थ-समीक्षा

होशियारपुरनगरस्योपवनेषु 'सूखी चोई' इत्यभिधानमस्ति वीतरागाणां तपस्त्यागमूर्तीनां ब्रह्मलीनानां महात्मनां परमं श्रद्धास्पदं स्थानमिति । तत्स्थानस्याऽध्यक्षा गृहस्थसात्रस्य समादरणीया महात्मानः स्वामिपादा महता परिश्रमेण पद्भ्यामेव गत्वा सरस्वत्या नद्या उद्गमस्थानं प्लक्षप्रस्रवणं स्वयमेव दृष्टवन्तः । प्लक्षप्रस्रवणाद् अवतीर्य च कानि कानि धामानि पावयन्ती सरस्वती कथं पश्चिमसमुद्रे प्रभासक्षेत्रान्नातिदूरेऽन्तर्भवतीति तथ्यं स्वीययौजस्विन्या लेखन्या गीर्वाणवाण्यां ते निबद्धवन्तः । स एवाऽयमस्मदादिगोचरः 'सरस्वती-नदी-निर्णयः' इत्याख्यो ग्रन्थः । सर्वसाधारणज्ञानाय भाषानुवादेनाऽप्यलंकृतोऽयं ग्रन्थः । ममेदं महासौभाग्यमासीद् यत् करुणावरुणालयाः स्वामिचरणा ग्रन्थमिमं द्रष्टुं मह्यं दत्तवन्तः । अहमपि चासूलचूलं व्यापकया दृष्ट्याऽक्षरशो ग्रन्थमपठम् । अद्यत्वे का नाम प्रसिद्धा सरस्वती नदी, का च दृषद्वती, तयोर्मध्ये कश्च ब्रह्मावर्तप्रदेश इत्यादिजटिल-प्रश्नानाम् ऐतिहासिकतथ्यानुसन्धानप्रवणविद्वद्विचारविषयाणां समाधानमनायासमत्र पश्यामः । प्रसिद्धा मार्कण्डा नदी सरस्वती, घग्गरा दृषद्वती, कुरुक्षेत्रप्रदेशश्च ब्रह्मावर्तप्रदेश इति चाऽनायासमभ्युपगच्छामः ।

प्रायेण सर्वसाधारणस्याऽयं विश्वासो यत् प्रयागराजे त्रिवेणीसंगमे गङ्गा-यमुनयोर्धारया संवलिता तृतीया वेणी सरस्वती नदीति, परं स्वामिपादा लक्षणप्रमाणाभ्यामिमं विश्वासं खण्डितवन्त इति चाऽत्र विशेषो विदुषां वरेण्यैरवधारणीयः । ग्रन्थेनाऽनेन जनसाधारणस्य महोपकारम् आशासानः —

अमरनाथशास्त्री, व्याकरणाचार्यः
होशियारपुरम् ।

☆ ☆ ☆

स्वामी कूटस्थानन्द जी की नवीन रचना 'सरस्वती-नदी-निर्णय' प्रो० रमाकान्त आङ्गिरस द्वारा प्राप्त हुई । मैंने इसका आद्यन्त अवलोकन किया है । वास्तव में भारत के भूगोल, साहित्य तथा धर्मदर्शन में सरस्वती की प्रतिष्ठा विपुल एवं विविध सर्गों में हुई है । साहित्य में तो वाग्देवी तथा सरस्वती में नितान्त अभेद का निर्वाह हुआ है । धार्मिक संस्कारों में भी जिस सप्त सिन्धुजल की पूत भावना का विधान किया गया है, उसमें सरस्वती के पावन नीर का समावेश मिलता है । भौगोलिक दृष्टि से सरस्वती प्रायः निश्शेष होकर केवल ग्रन्थचर्चित ही रह गई है, प्रत्यक्ष प्रमाणित नहीं । यदि प्राचीन ग्रन्थों के उपलब्ध साक्ष्य को प्रामाणिक मान लिया जाय तो सरस्वती की वारिधारा का अस्तित्व ब्रह्मावर्त प्रदेश में मानने के लिये तो अवश्य ही बाध्य होना पड़ता है । इस से आगे यह नदी कौन सी है, इसका उद्गम कहां से हुआ तथा इस के प्रवाह का अन्त किस स्थल पर होता है आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में किसी प्रकार की विस्तृत चर्चा के अभाव में निराश ही होना पड़ता है । इस दिशा में स्वामी

कूटस्थानन्द जी की पुस्तक में उनका गम्भीर अनवरत एवं अप्रतिहत श्रम रूपायित हुआ है, जो सर्वथा अभिनन्दनीय है।

यह हार्दिक परितोष का विषय है कि स्वामी जी की अनेक वर्षों की साधना सरस्वती नदी के सम्बन्ध में उठने वाली विविध जिज्ञासाओं तथा आशंकाओं के शमन के प्रयास में पुस्तकाकार हुई है। लेखक एक ओर पदयात्री के रूप में इस अन्तःसलिला के साथ-साथ चला है तो दूसरी ओर वेदों और पुराणों के सांस्कृतिक विश्वासों के पावन प्रवाह में भी आकण्ठ मग्न हो कर बहता गया है। सरस्वती नदी के प्रवाह में भारतीय संस्कृति का उदार वेग भर देने में लेखक को अभूतपूर्व सफलता मिली है। उक्त सरिता के उद्गम स्थल, प्रवाह मार्ग तथा तिरोभाव क्षेत्र के सम्बन्ध में लेखक ने अपूर्व निष्ठा एवं विश्वास के साथ अपने मत का प्रतिपादन किया है। स्वामी जी ने लोक मानस में भौतिक रूप से विलुप्त सरस्वती के अस्तित्व के पुनरुज्जीवन का दृढ़ प्रयास किया है। उन्होंने मार्कण्डा नदी को सरस्वती, घघर को दृषद्वती तथा कुरुक्षेत्र और ब्रह्मावर्त को सिद्ध करते हुए प्रबल प्रमाण प्रस्तुत किये हैं जो निश्चय ही भावी शोधार्थियों के लिये एक ठोस दिशा संकेत सिद्ध होंगे। आशा है सुधी पाठक इस पुस्तक का हृदय से स्वागत करेंगे।

Sansar Chandra Dean
Faculty of Arts; Punjab University,
Chandigarh.

भूमिका

मैं चैत्रशुदि पूर्णमासी विक्रमी संवत् २०२० को होशियारपुर से जगाधरी नगर के प्रेमियों की याचना से वहां गया था और वहीं चातुर्मास्य किया। वहां पहुंचने के कुछ दिन उपरान्त सत्संग में आने वाले प्रेमियों के मुख से उस भूमि की महिमा सुनी कि यह ब्रह्मावर्त है तब मैंने पूछा कि आपके पास क्या प्रमाण है। तब उन्होंने सोमदत्त शास्त्री जी का नाम उच्चारण किया तथा एक दिन उनको वहां कुटिया में जहां मेरा निवास था ले आए। जब मैंने उनसे भी इस विषय में प्रमाण पूछा तब उन्होंने मनुस्मृति के दूसरे अध्याय का श्लोक उद्धृत किया। सो यह है :—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

सरस्वती और दृषद्वती दोनों देवनदियों का जो मध्य है उस देवताओं के द्वारा निर्मित अथवा देवार्थ निर्मित (रचित) देश को ब्रह्मावर्त कहते हैं। इसके अनन्तर उन्होंने कहा कि यह जो एक कोस की दूरी पर दृषद्वती के अपभ्रंश नामान्तर वाली नदी है वही राकसी है और उसके आगे लगभग ६ कोस की दूरी पर बिलासपुर नामक ग्राम के समीप में जो नदी है वह सरस्वती है। इनके मध्य की भूमि ही ब्रह्मावर्त है। तब मेरे मन में सन्देह हुआ कि राकसी तो अत्यन्त लघु (छोटी) नदी है। वह कैसे दृषद्वती हो सकती है क्योंकि उसे मैं जाते समय देख गया था। किन्तु सरस्वती नदी के विषय में किंचित् श्रद्धा उत्पन्न हुई जो आज इस ग्रन्थरूप में दिखाई दे रही है। यद्यपि देखा हुआ तो उसे भी था परन्तु स्मरण नहीं था। इसके अनन्तर मेरे मन में विचार हुआ कि जिस ग्रन्थ में नदियों का विवरण हो उसे देखना चाहिए। इसके पश्चात् एक प्रेमी भक्त से गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित वाल्मीकीय रामायण उपलब्ध हुई तथा उसी प्रेस से प्रकाशित महाभारत का शल्यपर्व और संक्षिप्त नारदविष्णुपुराणांक यह दोनों ग्रन्थ सोमदत्त शास्त्री जी से उपलब्ध हुए। इनके भीतर जहां तहां कुरुक्षेत्र का माहात्म्य और सरस्वती का विवरण तथा अन्य तीर्थों का भी माहात्म्य वर्णन किया हुआ था। उनको ध्यानपूर्वक जब पढ़ा तब प्रथम वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या काण्ड में मुनि वसिष्ठ जी के द्वारा बुलाये गए भरत के आगमन काल में क्रम से जिन महानदियों का वर्णन किया है उनमें शतद्रु जो सतलुज नाम की नदी है उसके पश्चात् शिलावहा नदी तदन्तर सरस्वती पश्चात् यमुना और गंगा का वर्णन है। यह पढ़ कर मुझे शिलावहा ही घघर (दृषद्वती) है और मार्कण्डा सरस्वती नदी है यह भाव हुआ। तब मैंने शास्त्री जी को दिखाया परन्तु उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया। चूंकि वह राकसी को दृषद्वती सिद्ध कर चुके थे। उसी समय मैंने महाभारत का शल्यपर्व और संक्षिप्त नारदविष्णुपुराणांक के कुरुक्षेत्रमाहात्म्य को भी पढ़ा। तब शल्यपर्व में सरस्वती नदी का प्लक्षप्रस्रवण से प्रादुर्भाव हो कर प्रभासक्षेत्र में लीन होना तथा नारदविष्णुपुराणांक में मार्कंण्डेय मुनि के आश्रम से प्रकट होना पढ़ कर

मेरे मन में अति सन्देह हुआ। तब उसी समय मैंने निश्चय कर लिया कि इन दोनों नदियों का निर्णय होशियारपुर चल कर करूंगा। यहां होना कठिन है क्योंकि वहां इस निर्णय के साधक जो प्राचीन वेद आदि धार्मिक और आधुनिक भौगोलिक ग्रन्थ हैं उनकी उपलब्धि के लिए दो वृहत् पुस्तकालय विद्यमान हैं। प्रथम सनातन धर्म संस्कृत कालेज का और दूसरा वेदों का रिसर्च स्थान साधु आश्रम का है तथा वहां के भक्त जन भी उदार हैं। वह मूल्य से भी अनुपलब्ध ग्रन्थ मंगवा सकते हैं। यह निश्चय करके चातुर्मास्य समाप्त होने पर वहां से छछ्रोली होकर बिलासपुर गया। इस बिलासपुर नाम को वहां के लोग तथा शास्त्री जी व्यासपुर नाम का विकृत रूप कथन करते हैं। उसी ग्राम में एक कच्चा तालाब है। उसे वही व्यासह्रद (कुण्ड) कहते हैं। जिसमें सेना के मर जाने के पश्चात् दुर्योधन भाग कर लोप (छुपा) हुआ था। यह वहां की लोकप्रथा[1] है। परन्तु महाभारत शल्यपर्व के लेख से विरुद्ध है। यथा :—

गदमादाय तेजस्वी पदातिः प्रस्थितो ह्रदम्। नातिदूरं ततो गत्वा पद्भ्यामेव नराधिपः ॥

तेजस्वी राजा दुर्योधन ने हाथ में गदा ले कर पैदल ही व्यास कुण्ड को प्रस्थान किया। वह उस युद्धभूमि से अपने दोनों चरणों से ही अतिदूर न जाकर स्थित हो गया।

क्रोशमात्रमपक्रान्तं गदापाणिमवस्थितम्। एकं दुर्योधनं राजन्नपश्यं भृशविक्षतम् ॥४२॥

संजय बोले—हे राजन्! केवल कोस मात्र ही भागे हुए और हाथ में गदा ले कर खड़े तथा अति घायल अकेले दुर्योधन को मैंने देखा।

दुर्योधनो हते शल्ये विद्रुतेषु कृपादिषु। ह्रदं द्वैपायनं नाम विवेश भृशदुःखितः ॥

(महाभा० श० प० अ० २०)

राजा शल्य के मारे जाने पर तथा कृपाचार्य, अश्वथामा, कृतवर्मा इन तीनों के भाग जाने पर अति दुःखित दुर्योधन उसी व्यासह्रद (कुण्ड) में प्रवेश कर गया।

इस प्रकार वह व्यासकुण्ड समन्तपंचक कुरुक्षेत्र से केवल एक कोस मात्र वर्णन किया है। परन्तु वह बिलासपुर ग्राम के अन्तर्गत जो व्यासकुण्ड कहा जाता है सो तो तीस २ कोस के लगभग है। यह प्रथम लोकप्रथा है। वहां से १ कोस पर कपालमोचन नाम तीर्थ है। जिसका वर्णन मूल ग्रन्थ में देखें। उससे आगे लगभग दस कोस की दूरी पर पर्वत के अन्तर एक आद्यवदरी नाम से प्रसिद्ध देवस्थान है। वह सोमनदी के तीर पर विद्यमान है। उस मन्दिर के दक्षिण में एक अत्यन्त लघु नाला है। उसे भी वहां के लोग सरस्वती कहते हैं तथा मन्दिर के उत्तर में दूसरा नाला भी अत्यन्त लघु है। उसे दृषद्वती कहते हैं। यह दोनों नाले वहीं सोम में मिल जाते हैं। उनका मध्य भाग जो

---

१. किंवदन्ती या जनश्रुति (कहावत)।

एक कोस के लगभग है उसे ही वहां के पुजारी आदि लोक ब्रह्मावर्त कहते हैं। परन्तु नारदीय पुराण में ब्रह्मावर्त रूप कुरुक्षेत्र का विस्तार पांच योजन लिखा है। यथा :—

कुरुणा ततः कृष्टं यावत्क्षेत्रं समन्ततः। पञ्चयोजनविस्तारं दयासत्यक्षमोद्‌गमम् ॥

(ना० पु० उ० भा० अध्याय ६४, श्लो० २६)

तत्पश्चात् वह क्षेत्र जितना था उसको कुरु राजा ने सब ओर से जोता। उसका विस्तार पांच योजन है और दया, सत्य, क्षमा का उद्‌गम स्थान है। इस प्रमाण से विरुद्ध होने से वह ब्रह्मावर्त नहीं हो सकता और दृषद्वती का सोम में संगम भी शास्त्र से विरुद्ध है। यथा :—

दृषद्वत्या अप्ययेऽपोनप्त्रीयामिष्टिं निर्वपेत् ।

(लाट्यायनश्रौतसूत्रे १ अध्याये १७ प्रपाठके १ सूत्रम्)

अप्ययः संगमः सरस्वत्या एकीभावः इति भाष्यम् ।

दृषद्वती का सरस्वती में यहां संगम होता है। वहां अपोनप्ता अर्थात् अग्नि देवता सम्बन्धी इष्टि करे। यह लाट्यायन श्रौतसूत्र का लेख है। इस हेतु से आद्यवदरी का मन्दिर मात्र ब्रह्मावर्त नहीं हो सकता और आद्यवदरी नाम तीर्थ का शास्त्रों में कहीं वर्णन नहीं है तथा आद्यवदरी नाम से विख्यात चार देवस्थान हैं। उनमें से प्रथम व्रजभूमि में है। दूसरा प्रसंग प्राप्त जगाधरी तहसील जिला अम्बाला में है। तीसरा कर्णप्रयाग में चतुर्थ केदारनाथ और गुप्तकाशी के मध्य में त्रियुगीनारायण नाम से विख्यात है। इनमें से कौन सत्य है। यह कहना कठिन है परन्तु शास्त्रों में एक ही वदरिका आश्रम का वर्णन है। यथा महाभारत में कहा है :—

तं वयं ते नरव्याघ्रं सर्वे वीरदिदृक्षवः। प्रवेक्ष्यामो महाबाहो पर्वतं गन्धमादनम् ॥२२॥

हे वीर महाबाहो ! अब उस नरश्रेष्ठ अर्जुन को देखने के अभिलाषी वे हम गन्धमादन पर्वत की घाटियों में प्रवेश करेंगे।

विशालवदरी यत्र नरनारायणाश्रमः ॥२३॥

(महा० भा० वन० प० तीर्थया० प० १४१ तमे अध्याये)

यहां पर विशाल वदरी (वेरी) का वृक्ष और नर नारायण भगवान् का आश्रम है।

तत्राऽपश्यत धर्मात्मा देवदेवर्षिपूजितम्। नरनारायणस्थानं भागीरथ्योपशोभितम् ॥४२॥

(श्री महाभारते वन० प० तीर्थया० प० १४५ तमे अध्याये)

वहां पहुंच कर धर्मात्मा युधिष्ठर ने देवता तथा देवऋषियों द्वारा पूजित और

भागीरथी गंगा से सुशोभित नरनारायण का आश्रम देखा। यद्यपि वहां अलकनन्दा है। तथापि जब से भागीरथी आई है तब से अलकनन्दा भी भागीरथी नाम से विख्यात हो गई।[1] अब पुनः सरस्वती नदी का वर्णन करता हूं। वह भी जगाधरी तहसील में चार हैं। एक वलौड ग्राम से निकल कर वराडा गई है। दूसरी विलासपुर वाली नदी है जिसका पूर्व वर्णन किया गया है वह भी वहां से कुछ कोस आगे से निकल कर पावनी में समाप्त हो गई है। तीसरी कपालमोचन से ४ मील २ फरलांग धनौरा राजमार्ग (रोड़) पर मिलती है तथा वहीं समीप ही सोमा में मिल गई है और सोम भी दादुपुर के समीप जमुना में संगम को प्राप्त हुई है। चतुर्थी वहां से आगे आद्यवदरी वाली है। जिसका पूर्व वर्णन हो चुका है। इस प्रकार ये चार सरस्वती नदियां हैं। इनमें मुख्य कौन है यह निश्चय भी असंभव है। क्योंकि वहां के लोग अपनी २ नदी को प्रधान मानते हैं तथा ये चारों ही क्षुद्र (स्वल्प) नदियां हैं। परन्तु ऋग्वेद में तथा पुराणों में महानदियों में सरस्वती की गणना की है। यह दूसरी जनश्रुति या लोकप्रथा है। अब चूहड़पुर से आगे जाकर यमुना नदी के पश्चिमी तट पर लाखामण्डल नाम से प्रसिद्ध देवस्थान है। वहां के लोगों का यह कथन है कि यह वही स्थान है यहां दुर्योधन ने पांडवों को माता सहित दग्ध करने के लिए लाख का भवन या दुर्ग वनवाया था। वहां एक विल (सुरंग) भी बताते हैं इसके विषय में महाभारत का लेख (प्रमाण) दिया जाता है। यथा :—

वैशम्पायन उवाच—

अष्टमेऽहनि रोहिण्यां प्रयाता फाल्गुनस्य ते। वारणावतमासाद्य ददृशुर्नागरं जनम् ॥२४॥

वैशम्पायन बोले— हे जनमेजय! वे पांडव फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र में हस्तिनापुर से गए और वारणवत जा कर वहां के नागरिक जन को देखा।

पाण्डवाश्चापि ते सर्वे सह मात्रा सुदुःखिताः। बिलेन तेन निर्गत्य जग्मुर्द्रुतमलक्षिताः॥

(अध्याय १४७ श्लोक १८)

वे सब पाण्डव भी माता के सहित अतिदुःखित होकर उस विल (सुरंग) से निकल कर तुरन्त चले गए उनको किसी ने नहीं देखा।

इत्युक्त्वा स तु तान् वीरान् पुमान् विदुरचोदितः।
तारयामास राजेन्द्र गङ्गां नावा नरर्षभान् ॥१३॥

(महाभा० आदिप० जतुगृहप० गंगोत्तरणे १४८ अध्याये)

इस प्रकार हे राजेन्द्र! विदुर का सन्देश देकर उसी के द्वारा भेजे हुए पुरुष ने उन नरश्रेष्ठ वीर पाण्डवों को गंगा पार उतार दिया।

---

१. अथवा यही भागीरथी है।

इस प्रमाण से यह विदित होता है कि वारणावत लाखा-भवन गंगा तट के समीप था और उपर्युक्त लाखा मण्डल यमुना तीर पर होने से शास्त्र से अत्यन्त विरुद्ध है। यह तीसरी लोकप्रथा भी निराकरण हुई। अब चतुर्थी दिखाई जाती है। पाठकवृन्द ध्यान दें। होशियारपुर जिला में एक दसूहा तहसील है। उस नगर में निवास करने वाली जनता की यह कहावत (कथन) है कि यह विराट् नगर है। वहां एक पुराना खण्डित दुर्ग है। उसे विराट् भवन कहते हैं तथा एक तालाब है। उसमें कमल भी प्रचुरता से हैं। उसे भी विराट् राजा का बनवाया हुआ कहते हैं। अब इस विषय में भी विराट्पर्व महाभारत का प्रमाण उपस्थित किया जाता है। यथा :—

ततो ययुर्द्वैतवने नृवीरा निस्तीर्यैव वनवासं समग्रम् ॥

(महाभा० वन० प० त्रिंशत्तमे अध्याये)

इस प्रकार वनवास की अवधि पूरे बारह वर्ष बिता कर वे नरवीर वहां से द्वैतवन में चले गए।

बद्धगोधाङ्गुलित्राणाः कालिन्दीमभितो ययुः ॥१॥

पुनः वहां से वह सब गोह के चर्म से बने अंगुलित्राण (दस्ताने) पहने हुए यमुना तीर के निकट गए।

ततस्ते दक्षिणं तीरमन्वगच्छन् पदातयः ॥२॥
उत्तरेण दशार्णांस्ते पञ्चालान् दक्षिणेन च ॥३॥
अन्तरेण यकृल्लोमान् शूरसेनांश्च पाण्डवाः।
लुब्धा ब्रुवाणा मत्स्यस्य विषयं प्राविशन् वनात् ॥४॥

(महाभारते विराट्प० अस्त्रसंस्थापने पञ्चमे अध्याये)

वहां से पैदल ही यमुना के दाहिने तीर के अनुसार गमन करने लगे। वे पाण्डव लोग दशार्ण के उत्तर से और पंचालों के दक्षिण एवं यकृल्लोम और शूरसेन देशों के मध्य से होकर गए थे तथा लोगों के पूछने पर अपने को विराट राज्य में वास करने की इच्छा वाले बताते हुए वन से उसमें प्रवेश किया।

यह चतुर्थी लोकप्रथा या किंवदन्ती का निराकरण सिद्ध हुआ॥

पञ्चम प्रथा—पंजाब प्रान्त में अमृतसर से आगे तथा लाहौर से प्रथम एक रामतीर्थ नाम से प्रसिद्ध स्थान है। वहां की जनता ही नहीं अपितु पंजाब भर में ही यह प्रथा प्रसिद्ध है कि यहां पर ही वाल्मीकि मुनि का आश्रम था और सीता जी भी भगवान् राम के द्वारा त्याग देने पर यहाँ रही। जो त्याग काल में गर्भवती थी। पश्चात् उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नामकरणसंस्कार करते हुए मुनि ने एक का नाम लव और दूसरे का नाम कुश रखा। पश्चात् बड़े होने पर लव ने लवपुर (लाहौर) और कुश ने कुशपुर (कुसूर)



नगर बसाया। यह लाहौर जिला की तहसील है। उस रामतीर्थ पर वर्तमान काल में हरिजनों का अधिकार सुना जाता है। वर्तमान कांग्रेसराज्य तथा भूतपूर्व अंग्रेजी राज्यशासनीय पाठशालाओं में पढ़ाई जाने वाली ऐतिहासिक पुस्तकों में भी यही लिखा हुआ और पढ़ाया जाता है। इस विषय में वाल्मीकिमुनिआश्रम के बोधक (वाल्मीकीय रामायण तथा तुलसीदासकृत रामायण के) वाक्य उद्धृत किए जाते हैं। यथा :—

गंगायमुनयोः सन्धौ प्रापतुर्निलयं मुनेः ॥४॥

गंगा यमुना के संगम में सीता सहित दोनों भ्राता मुनि के आश्रम के निकट गए।

प्रात प्रातकृत रघुराई। तीर्थराज दीख प्रभु जाई।

गत्वा मुहूर्तमध्वानं भरद्वाजमुपागमत् ॥

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दण्डवत मुनि उर लाए ॥

वे तीनों एक मुहूर्त (दो घड़ी) भर में मार्ग से जाकर मुनि भरद्वाज के समीप पहुंच गए।

एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम्।

हे भगवान्! कहीं एकान्त में आश्रम के योग्य उत्तम स्थान देखिए।

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरद्वाजो महामुनिः। राघवस्य तु तद्वावयमर्थग्राहकमब्रवीत् ॥२७॥

भगवान् राम के इस शुभ वाक्य को सुनकर महामुनि भरद्वाज ने उस कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि का बोध कराने वाली बात कही।

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि ॥२८॥

हे तात! जिस पर आप निवास करेंगे वह पर्वत यहां से दस कोस परहै।

चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसंनिभः ॥२९॥

वह चित्रकूट इस नाम से विख्यात तथा गन्धमादन के समान मनोहर है ॥२९॥

(बाल्मीकीये० रा० अयो० का० ५४ सर्गे २८–२९ श्लो०)

चित्रकूट गिरि करहु निवासु। तहं तुम्हार सब भांति सुपासु ॥

ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया। रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोहरम् ॥१२॥

उस तीर्थराज प्रयाग से सीता जी सहित वह दोनों भ्राता पैदल ही चलते हुए रमणीय तथा मनोहर चित्रकूट पर्वत पर पहुंचे।

अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन् ॥१९॥

(वा० रा० अयो० का० ५४ सर्गे १२,१९ श्लो०)

उन सबने आश्रम में जाकर वाल्मीकि मुनि को प्रणाम किया।

देखित वन सर शैल सुहाए वाल्मीकि प्रभु आश्रम आए।
मुनि कहं राम दण्डवत कीन्हा। आर्शीवाद विप्रवर दीन्हा॥

यह प्रमाण श्रीराम के वनवास काल में वाल्मीकि मुनि के आश्रम के बोधक हैं। अब सीता जी के प्रवास काल के बोधक प्रमाण उद्धृत किए जाते हैं।

श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम् ॥१६॥

आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज। गङ्गायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः॥१७॥

हे लक्ष्मण! कल तुम प्रातः ही सुमन्त्र सारथी से युक्त रथ पर चढ़ कर उस पर सीता जी को बैठा कर राज्य के बाहर छोड़ आओ। गङ्गा के परले किनारे तमसा नदी के तट पर महात्मा वाल्मीकि का दिव्य आश्रम है (वा० रा० आ० का० उ० का० ४५ सर्गे)।

ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणः। उवाच मैथिलीं वाक्यं प्राञ्जलिर्बाष्पसंवृतः॥३॥

तब लक्ष्मण ने भागीरथी के तीर पर पहुंच कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से अञ्जलि बांध कर सीता जी को यह वचन कहे।

सा त्वं त्यक्ता नृपतिना निर्दोषा मम संनिधौ ॥१३॥

पौरापवादभीतेन ग्राह्यं देवी न तेऽन्यथा ॥१४॥

हे देवी! आप मेरी दृष्टि में निर्दोष हैं किन्तु जनापवाद (लोग या पुरवासियों की निन्दा) के भय से आप को महाराज रामचन्द्र जी ने मेरे सामने त्याग दिया है। इसका विपरीत (अन्य) भाव न लेना।

तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम्। पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथाः शुभे॥१५॥

हे देवी कल्याणि! आप दुःख न मनाओ। गङ्गा जी के तीर पर यह वही ब्रह्मर्षियों का पवित्र और रमणीय तपोवन है।

राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुङ्गवः। सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः॥१६॥

जिसमें मेरे पिता राजा दशरथ के ही परम मित्र मुनियों में श्रेष्ठ महा यशस्वी ऋषि वाल्मीकि हैं।

पादच्छायामुपागम्य सुखमस्य महात्मनः। उपवासपरैकाग्रा वस त्वं जनकात्मजे॥१७॥

(वा० रा० आ० का० उ० का० ४७ सर्गे)

हे माता सीते ! जनकपुत्रि ! उस महात्मा के चरणों की छत्रछाया में सुखपूर्वक एकमात्र उपवास करती हुई या एकान्त में आप वास करो ।

इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण के उत्तर काण्ड के ४७वें सर्ग में कहा है ।।

तां सीतां शोकभारार्तां वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः । उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा ।।

मुनियों में श्रेष्ठ वाल्मीकि जी ने अपने दिव्य तेज से आह्लादित करते हुए अति-शोक से पीड़ित उस सीता जी को मधुर वचन कहे ।

आश्रमस्याऽविदूरे मे, तापस्यस्तपसि स्थिताः । तास्त्वां वत्से यथा वत्सं पालयिष्यन्ति नित्यशः ।।
(वा० रा० आ० का० उ० का ४९ सर्गे)

मेरे आश्रम के समीप ही कई तपस्विनियां तप कर रही हैं। हे पुत्री सीते ! वह प्रतिदिन तुम्हारा बालक के समान पालन करेंगी । यह बात ४९वें सर्ग में कही है ।

यामेव रात्रीं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत् । तामेव रात्रीं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ।।१।।

जिस रात को शत्रुघ्न पर्णकुटी में आए । उसी रात को सीता जी ने दो बालकों को जन्म दिया ।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि श्री राम के वनवास काल में वाल्मीकिमुनि का आश्रम चित्रकूट पर्वत पर था तथा श्री सीता जी के त्यागकाल में उनका आश्रम गंगा जी के पार तमसा नदी के तट पर था ।

इस प्रकार यह पञ्चमी प्रथा भी शास्त्र से विरुद्ध है यह सिद्ध हुआ । अब यदि विद्वान् पुरुष भी ऐसी लोककल्पित प्रथाओं का अनुकरण करने लगें तब तो उनकी विद्वत्ता और शास्त्र दोनों ही कूप में गए ।

अन्धेन नीयमाना यथान्धाः ।

यह अन्धानुकरणन्याय पूर्णतया चरितार्थ हो जायगा परन्तु शास्त्र में विद्वान् तो उसे कहा है जिसके यह दो नेत्र हों :—

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे विप्राणां प्रकीर्तिते । एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ।।

विद्वानों के श्रुति और स्मृति रूप ही दो नेत्र कथन किए हैं न कि केवल चर्मनेत्र । एक से हीन काणा और दोनों से हीन अन्धा कथन किया है ।

विद्यया याति विप्रत्वमिति शब्दकल्पद्रुमे ।

शब्दकल्पद्रुम में श्रुतिस्मृतिरूप विद्या से विप्रत्व को प्राप्त होता है ऐसा कहा है ।

इस कारण से शास्त्रप्रमाणित लोक-प्रथाएं ही मानने योग्य हैं। विरुद्ध नहीं।

भगवद्गीता में भी कहा है :—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याऽकार्यव्यवस्थितौ।

उपर्युक्त हेतु से तेरे लिए कार्य (करने योग्य) अकार्य (न करने योग्य) के निर्णयार्थ शास्त्र ही प्रमाण है।

इन कल्पित प्रथाओं का प्रथम कारण यह है कि जब भारत पर यवन राजाओं के आक्रमण होने लगे तब उनको टिड्डीदल के समान सेना का समूह एकत्रित करके आते हुए सुन कर देश, नगर, तीर्थ तथा आश्रमनिवासी जनता जहां तहां भाग गई। पश्चात् उन यवनों ने आकर उन नगर आदि स्थानों को लूटा और नष्ट भ्रष्ट किया तथा देवमन्दिरों को भी खण्डित किया। उनमें सबसे प्रथम महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ उसके पश्चात् शहाबुद्दीन गौरी और तैमूरलंग आदि यवन राजा आए। उन्होंने क्या क्या अत्याचार किया इसको अनुभव करने वाले ही जानते हैं। हम लोक तो केवल श्रवणमात्र ही करते हैं। यह वार्ता पद्मपुराण में वर्णित है।

आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा। देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥१॥

(पद्मपुराणे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये)

इस भूमि में आकर यवनों ने आश्रमों, तीर्थों तथा नदियों पर अधिकार कर लिया और दुष्टों के द्वारा देवस्थान तो अतिशय करके नष्ट कर दिए गए। इससे ज्ञात होता है कि पश्चात् उन नगरों और तीर्थों में आकर जिन लोगों ने निवास किया उनको वहां का पूर्ण ज्ञान न होने से उन्होंने उन तीर्थस्थानों की यहां तहां रचना कर ली। यह शास्त्र के अनुसार है या विरुद्ध इसका ध्यान नहीं किया और दूसरा कारण यह है कि कई स्वार्थी पुरुषों ने अर्थ का साधन जानकर निज निज स्थानों के पूर्वोक्त नाम रख लिए, जैसे वर्तमान काल में हो रहा है। तथा उस आपत्तिकाल में ग्रंथों की उपलब्धि भी यवनों के भय से कठिन थी। इन्हीं कारणों से कई तीर्थस्थानों की शास्त्र के अनुसार यथोक्त स्थान पर उपलब्धि नहीं होती। जैसे वाल्मीकीय रामायण में प्रयाग से चित्रकूट को दूरी का प्रमाण दस कोस लिखा है। कोस का प्रमाण शब्दकल्पद्रुम में।

क्रोशः, पुं, (क्रोशति यतः। क्रुश-अपादाने घञ्) सहस्रधनुः। चतुःसहस्रहस्त-परिमाणम्। कोश इति भाषा तत्पर्यायः। गव्यूतम् इति हेमचन्द्रः।

इस प्रमाण से सहस्रधनुष का कोस हुआ। एक धनुष दो गज़ या चार हाथ का होता है इस प्रकार दो हज़ार गज़ का एक कोस होता है और १७६० गज़ का एक मील होने से एक मील और २४० गज़ का कोस सिद्ध हुआ। और वर्तमान चित्रकूट पर्वत ८० मील के लगभग है।

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि ।

हे तात ! जिसमें आप निवास करोगे यहां से दस कोस है। यह भगवान् राम के प्रति भरद्वाज मुनि का कथन है। अब भरत के प्रति जो कहा है वह यह है जैसे—

भरतार्धतृतीयेषु योजनेष्वजने जने । चित्रकूटगिरिस्तत्र ॥२॥

(वा० रा० अयो० का० ९२ अध्याये)

हे भरत ! तीसरे योजन में अर्ध के परिमाण अर्थात् ढाई योजन उस निर्जन स्थान में चित्रकूट पर्वत है।

इस प्रकार कई तीर्थ स्थानों की संगति शास्त्रों से नहीं मिलती। इसी प्रकार बेचारी सरस्वती से भी यही व्यवहार हुआ। जव मार्कण्डेय मुनि के स्थान से निर्गम होने से उसका नाम मार्कण्डा प्रसिद्ध हो गया तब जो यात्री वहाँ आते थे वह सरस्वती का नाम पूछते कि सरस्वती कहां है ? परन्तु जानने वाले पूर्वज मर चुके या अन्यत्र चले गए थे और नए पुरुषों को उसका ज्ञान नहीं था। इस कारण से उन्होंने अर्थलोभ से महाभारत के आगे लिखे श्लोक का विपरीत अर्थ करके नई सरस्वती की निजीय क्षुद्रनदी में कल्पना कर ली। जब एक की पूजा होने लगी तब दूसरे ग्रामनिवासियों ने भी उसी प्रकार से चार नदियों की रचना कर डाली। जैसे आजकल नगरों और तीर्थों में हो रहा है।

दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्युत्तरेण च । ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ॥

(महा० भा० वन० प० ८३ अध्याये ४ श्लो०)

सरस्वती से दक्षिण दिशामें और दृषद्वती से उत्तर दिशा में स्थित कुरुक्षेत्र में जो वास करते है वे स्वर्ग में ही निवास करते हैं। इस अर्थ के अनुसार ही उन्होंने राकसी को दृषद्वती तथा मुस्तफाबाद[1] की नदी को सरस्वती नाम से विख्यात कर दिया[2]। इसी का लोग भी अनुसरण करने लगे, परन्तु उसका अर्थ यही है यह उचित नहीं क्योंकि महाभारत के उस ही अध्याय का २०४वाँ श्लोक इस अर्थ का बाधक है जैसे :—

दक्षिणेन सरस्वत्या उत्तरेण दृषद्वतीम्। ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ॥

सरस्वती नदी के दक्षिण (दाहिने भाग) और दृषद्वती के उत्तर (वाम भाग) में विद्यमान कुरुक्षेत्र में जो लोग वसते हैं वे मानों स्वर्ग में ही वसते हैं। इससे पूर्वोक्त अर्थ करने वाले विद्वान् शास्त्रोक्त द्वीपवर्णन की मर्यादा से भी अपरिचित (अनभिज्ञ) थे। इसी हेतु से ऐसा अर्थ करके उन्होंने लोकहित का महा अनुपकार किया है। वह मर्यादा यह

१. यह सरस्वती महानदी (मार्कण्डा) का प्राचीन मार्ग था।

२. वर्तमान काल मे एक विद्वान् ने घग्घर नदी को सरस्वती और चटांग नदी को दृषद्वती लिखा है।

है कि प्रथम द्वीप के पूर्व दिशा वाली नदी का पश्चात् पश्चिम दिशा वाली नदी का वर्णन किया जाता है। जैसे काशीपुरी का दूसरा नाम जो वाराणसी है वह इसका द्योतक है।

वरणा च असी च नदीद्वयम्। तस्य अदूरे भवा इत्यर्थे अण्-ङीप् प्रत्ययः, वाराणसी ॥

वरणा और असी नदियों के निकट होने वाली वाराणसीपुरी है। जिनमें वरणा नदी पूर्व में तथा पश्चिम में असी नदी है। द्वितीय उदाहरण प्रयाग है। इसके प्रतिपादक प्रमाण जैसे :—

यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाऽभिप्रवर्तते। (वा० रा० अयो० का० स० २ श्लो० ५४)

यहां पर भागीरथी गंगा से यमुना नदी का संगम होता है।

नूनं प्राप्ताः स्म संभेदं गङ्गायमुनयोर्वयम् ॥६॥

निश्चय ही हम लोग गंगा-यमुना के संगम के समीप पहुंच गए हैं।

गङ्गायमुनयोः संधौ।

गंगा यमुना की सन्धि में।

गङ्गायमुनयोः सन्धिमासाद्य ॥८॥ (वाल्मी० रा० अयो० का० ५४–५५वें सर्गे)

गंगा यमुना की सन्धि (संगम) में पहुंच कर।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नाति यः संगमे नरः ॥३५॥

(महा० भा० वन० प० तीर्थ प० ८४ अध्याये)

गंगा यमुना के मध्य संगम में जो पुरुष स्नान करता है।

गङ्गायमुनयोर्वीर संगमं लोकविश्रुतम् ॥१८॥ (महा० भा० ८७ अध्याये)

हे वीर! गंगायमुना का संगम लोक में विख्यात है। यह महाभारत में कहा है।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्यां यत्परं स्मृतम् ॥५२॥

नारदीयपुराण में भी कहा है पृथिवी पर गंगा यमुना के मध्य में जो परम (श्रेष्ठ) तीर्थ कहा गया है।

सितासिते तु यो मज्जेत् ॥६०॥

सिता (गंगा) असित (यमुना) दोनों के मध्य में संगम में जो स्नान करे।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्बिषात् ॥७२॥

(बृहन्नारदीयपुराणे उत्तरे भागे प्रयागमाहात्म्ये ६३ तमे अध्याये)

गंगा यमुना के मध्य प्रयाग में स्नान करने वाला पापों से मुक्त हो जाता है।

भविष्यपुराणे च—

राजन् बिल्ववतीग्रामे गङ्गायमुनामध्यगे।

वेताल बोला—हे राजन् गंगा यमुना के मध्यगत बिल्ववती ग्राम में।

आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयान्विता। विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः॥
(श्रीमद्भा० म० पु० ४ स्क० २ अध्याये)

जहां पर गंगा यमुना के साथ संगम को प्राप्त होती हैं वहाँ पर अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करके वे सब दक्षादि प्रजापति देवता ऋषि मुनि पवित्र शरीर से वहां से अपने अपने धाम को चले गए।

गङ्गायमुनयोर्नद्योरन्तरा क्षेत्रमावसन्। आरब्धानेव बुभुजे भोगान् पुण्यजिहासया॥११॥
(श्रीमद्भा० म० पु० ४ स्क० २१ अध्याये)

गंगा यमुना दोनों नदियों की मध्य भूमि में वास करता हुआ पुण्य को नाश करने की इच्छा से अपने प्रारब्ध भोगों को ही भोगने लगा।

इस प्रकार प्रयागरूप द्वीप के वर्णन में भी प्रथम पूर्व दिशा वाली गंगा और पश्चात् पश्चिम दिशा वाली यमुना का सब ही उपर्युक्त श्लोकों में प्रतिपादन किया है। किसी भी श्लोक में इससे विरोध नहीं। इससे दो अर्थों का ग्रहण होता है। एक तो पूर्व दिशा वाली नदी का प्रथम कथन करना दूसरा संगम नाम मिश्रित धारा से पृथक् प्रयाग में सरस्वती नदी के अभाव का ग्रहण है। किसी भी श्लोक में सरस्वती का उल्लेख नहीं है। तथापि जो विद्वान् हठ से ग्रहण किए हैं वह करें। यह उनका प्रौढ़िवाद मात्र है। इससे हमारे सिद्धांत की कोई हानि नहीं। मेरा सिद्धान्त ब्रह्मावर्त की सीमा रूप सरस्वती नदी से है। अब मैं आधुनिक प्रमाण उपस्थित करता हूं। जिनके नामों से ही इस मर्यादा का ज्ञान हो जाता है। वह पंजाब प्रान्त के तीन द्वीपों के नाम हैं। प्रथम वारी द्वीप दूसरा रचना, तीसरा चजद्वीप है। इनमें से वारी द्वीप (द्वाबा) व्यासा नदी और रावी नदी की मध्यवर्तिनी भूमि का नाम है। जिसके पूर्व दिशा में जो व्यासा नदी है उसके नाम का आदि अक्षर वकार और पश्चिम में जो रावी नदी है उसके आदि अक्षर रकार और अन्तिम ईकार को लेकर ही वारीनाम की रचना हुई। ऐसे ही रावी और चिनाब के मध्य का रचना द्वीप है तथा चिनाब और जेहलम (वितस्ता) के मध्य का द्वीप चज है। यह दोनों नाम भी पूर्वी और पश्चिमी नदियों के आदि अक्षरों से बने हुए हैं। ऐसे ब्रह्मावर्त भी द्वीप है। उसकी भी सरस्वती नदी पूर्वदिशावर्तनी और दृषद्वती पश्चिमदिशावर्तनी नदी होनी चाहिए। क्योंकि शास्त्र में इसी क्रम से उल्लेख किया है।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् (मनु० २ अध्या० १७ श्लो०)।

सरस्वती और दृषद्वती दोनों देवनदियों का जो मध्य है।

दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्युत्तरेण च। ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ॥

(म० भा० वन० प० ८३ अध्या० ४ श्लो०)

सरस्वती नदी के दक्षिण (दाहिने) भाग और दृषद्वती के उत्तर (वाम) भाग में कुरुक्षेत्र में जो लोग वसते हैं।

वामनपुराण में भी :—

सरस्वतीदृषद्वत्योरन्तरे कुरुजाङ्गले (वामन पु० २२ अध्या० ४७ श्लो०)।

सरस्वती और दृषद्वती के मध्य कुरुजांगल में।

इस प्रकार यमुना और शतद्रु (सतलुज) इन दो महानदियों के मध्य की भूमि में मार्कण्डा और घग्घर को त्याग कर अन्य कोई महानदी नहीं है। इन हेतुओं से अर्थात् यमुना महानदी के अनन्तर और मार्कण्डेय मुनि के आश्रम से निर्गमन (निकलने) से तथा महानदी होने से मार्कण्डा ही सरस्वती है और इससे पश्चिम दिशा में तथा महानदी होने से घग्घर जो घर्घरा नाम का विकृत रूप है वही दृषद्वती है और वर्तमान काल में पंजाब प्रांत के भूचित्रों में भी इन दो नदियों की ही महानदियों में गणना है। जैसे उर्दू भाषा में दरयाए मार्कण्डा और दरयाए घग्घर नाम लिखा है और इंगलिश भाषा में भी मार्कण्डा रीवर और घग्घर रीवर नाम लिखा है। इस का विशेष वर्णन आगे मूल ग्रन्थ में ही देखें। इस प्रकार इन सब बातों को हृदयङ्गम करके पुनः वहां से मैं रेणुका होकर ऋषिकेश गया। पश्चात् वहां से हरिद्वार होकर पुनः होशियारपुर चला आया। यद्यपि यहां पर मैं फाल्गुन मास की अमावस से पूर्व ही पहुंच गया था तथापि दो मास पर्यन्त इस पर ध्यान नहीं दिया। जब वैशाख मास संवत् २०२१ में पुनः जगाधरी नगर के प्रेमी दो भक्त आए उनके द्वारा पुनः स्मरण कराने पर मैंने इस पर विचार किया। तदनन्तर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संशोधन संस्थान के विद्वानों के एक परमसन्तोष विनय आदि गुणों से सम्पन्न विद्वान् पंडित सूर्यनारायण शास्त्री जी को अपने आश्रम पर बुलाया और उनसे इस सरस्वती नदी के विषय पर विचार परामर्श किया। तब उन्होंने वेदों ब्राह्मण ग्रन्थों श्रौतसूत्रों आदि से कुछ प्रमाण लिखकर उपस्थित किए। तब मेरा विचार एक लघु सा लेख ही लिखने का हुआ था। क्योंकि मैं कोई विशेष विद्वान् नहीं हूं। इस हेतु से सरस्वती नदी का निर्णय करने का साहस कैसे हो सकता था परन्तु मेरे मन में सरस्वती नदी के विद्वानों के प्रमाद आलस्य तथा लोकप्रथा-अनुकरणवश प्रायः लोपभूत हो जाने से उसके स्नान-पान आदि से वंचित हुई जनता को देखकर हृदय में करुणा-जन्य वेदना होने लगी। उसीसे प्रेरित होकर इस महान् कार्य को असंभव होने पर भी

करने का मैंने साहस किया। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा तथा सरस्वती देवी की प्रेरणा ही हेतु है। जैसे :—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

जिसकी कृपा मूक (गूंगे) को वाचाल अर्थात् बहुत बोलने वाला कर देती है और पंगु (जंघा रहित) पर्वत को लांघ जाता है। उस परमानन्द माधव भगवान् की मैं वन्दना करता हूं। तत्पश्चात् श्रीमान् पण्डित रमाकान्त जी शास्त्री (प्रोफेसर) हिन्दु-कालेज सोनीपत से खण्डित ऋग्वेद-संहिता (संस्कृत टीका सहित) तथा मेघदूत प्राप्त हुए। उस संहिता में वे सब वेदमन्त्र मिल गए जो सरस्वतीनदी की महिमा के प्रतिपादक थे। इस प्रकार मैंने उनका संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। पश्चात् अन्य पुराण आदि ग्रन्थों से भी जो सरस्वतीनदी के निर्णय के साधक थे उन सब प्रमाणों को ग्रहण कर लिया। उनमें से कुछ ग्रन्थ तो अपने आश्रम में ही उपलब्ध हो गए, शेष सनातनधर्मसंस्कृत कालेज, होशियारपुर तथा साधु आश्रम के पुस्तकालयों से प्राप्त करके इस कार्य को समाप्त कर लिया और शास्त्री जी को दिखाया गया। जब यह प्रमाण-संग्रहमात्र समाप्त होने वाला था उसी समय में सनातनधर्मसभा के अधिवेशन पर श्रीमान् पं० माधवाचार्य जी शास्त्रार्थमहारथी पधारे हुए थे। उनसे भी इस विषय में परामर्श किया। तब उन्होंने भी अरुणा-संगम से मार्कण्डा नदी में ही सरस्वतीत्व की पुष्टि करते हुए इस प्रमाणसंग्रह को ग्रन्थरूप देकर मुद्रित कराने का आग्रह किया। उस समय मेरा विचार वहां जाने का था जहां से मार्कण्डा नदी का उद्गम होता है कि वहां जाकर उस स्थान को स्वयं देखूं। क्योंकि शास्त्र में कहा है कि प्रमाण, युक्ति और अनुभव इन तीनों की एकरूपता ही निर्णय का मुख्य साधन है।

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः।

जब तक न देखूं अपने नयनी। तब तक न मानूं गुरु के वयनीं ॥

इस प्रकार विचार कर मैं वहां गया और उस स्थान को देखकर तथा वहां की जनता से पूछ कर सूर्यग्रहण पर कुरुक्षेत्र चला गया और वहां के विद्वान् पण्डितों से भी परामर्श किया। तत्पश्चात् पृथूदक (पेहोवा) गया वहां से समीप ही दो कोस पर अरुणा-संगम में गया। आते समय मार्ग में प्राचीन नदी के सेतु (पुल) के समीप सरस्वती अहेंड लिखा हुआ देखा तथा वहां प्राचीन मार्कण्डा नदी को छोड़ कर अन्य किसी महानदी का सम्बन्ध नहीं होता। अतः मार्कण्डा ही सरस्वती है यह निश्चय परिपक्व हो जाने पर वहां से चला आया और मार्गशीर्ष की पूर्णमासी संवत् २०२२ को होशियारपुर पहुंच गया। जैसे ग्रन्थ में पढ़ा था वहां वैसे ही देख कर मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह अत्यन्त प्राचीन वृक्ष है जिसके मूल से स्रोतरूप में सरस्वती बह रही है। उसी स्थान को वहां की जनता मार्कण्डेय मुनि का आश्रम कहती है। इस प्रकार अनुभव से भी निश्चय करके पुनः सूर्यनारायण जी से परामर्श किया। तब उन्होंने कहा कि प्रथम इसकी हिन्दी टीका करके ही इसे मुद्रित कराना चाहिए। जिससे जनसाधारण भी लाभ प्राप्त कर सकें। यह

विचार कर इसकी भाषाटीका करके पं० सूर्यनारायण जो की सम्मति से श्रीमान् पं० अमरनाथ जी शास्त्री व्याकरणाचार्य के प्रति शुद्ध करने को दी गई।

अब मैं इसके विशेष विषयों का संक्षेप से वर्णन करता हूं। प्रथम ग्रन्थ का प्रयोजन है जिसके बिना प्रवृत्ति नहीं हो सकती। 'विना प्रयोजनं मन्दोऽपि न प्रवर्तते'। दूसरा सरस्वती नदी की वेदोक्त महिमा तथा प्राची या पूर्ववाहिनी प्रत्यङ्मुखी या पश्चिमवाहनी का माहात्म्य, तोसरा सरस्वतो देवी के नदीरूपत्व का हेतु, चतुर्थ उसकी दृश्यादृश्य-गति। पंचम सरस्वतो और दृषद्वतो दोनों महानदी हैं अथवा क्षुद्रनदी इसका विवेचन। छठा सरस्वती का उद्‌गम स्थान। सप्तम गंगा से सिन्धुनदीपर्यन्त महानदियों का अनुलोम-प्रतिलोम रूप से अनुक्रम-वर्णन ~~प्राकृत भारत तथा पंजाब प्रान्त इन दो चित्रों के सहित है।~~ अष्टम बलरामजी तथा विदुर जी और स्वायम्भुव मनु जी की यात्रा का विलोम-रूप प्रभास क्षेत्र से प्रारम्भ करके प्लक्षप्रस्रवण पर्यन्त सरस्वती के तटवर्ती तीर्थों का अनुक्रम से वर्णन। नवम ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्र एक है अथवा पृथक् २ देश हैं ब्रह्मावर्त समन्तपंचक कुरुक्षेत्र भूचित्र सहित इसका विवेचन। दशम कुरुक्षेत्र का ईषद् विस्तार पूर्वक माहात्म्यवर्णन।

इस प्रकार इन दस विशेष शीर्षकों तथा 'प्रयागराज में मुख्य सरस्वती नदी नहीं है' इत्यादि तथा अन्य अनेक उपशीर्षकों (प्रघटकों) द्वारा सरस्वती-महानदी के निर्णयरूप अपने लक्ष्य को शास्त्रों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। अब मैं आधुनिक भौगोलिक पुस्तकों के प्रामाणिक चित्र उपस्थित करता हूं। प्रथम प्रमाण जो वर्तमान काल संवत् २०२१ तथा ईस्वी सन् १९६४ में नवीन राष्ट्रीय-ऐटलस नाम पुस्तक इण्डियन बुक डिपो दिल्ली से प्रकाशित हुई है। जिसके रचयिता बीबासिंह कौशल बी० ए० हैं। उसके पृष्टांश ५२ पर पंजाब हिमाचल प्रदेश, दिल्ली नाम का भूचित्र है। उसमें भो मार्कण्डा नदी के चिन्ह पर सरस्वती नदी का नाम लिखा है मार्कण्डा नहीं। तथा दूसरा प्रमाण भूतपूर्व अंग्रेज़ी राज्य शासन काल में राय साहिब मुन्शी गुलाबसिंह एण्ड सन्ज़ लाहौर से प्रकाशित खण्डित पुस्तक नाम उर्दू एटलस मेरे पास विद्यमान है। उसके पृष्ठ नं० १२ पर भूचित्र कृत्रिम नदी समूह पंजाब (नकशा अनहार पंजाब) है उसमें भी मार्कण्डा नदी के चिन्ह पर सरस्वती नदी नाम लिखा है मार्कण्डा नहीं। सिरसा या सरसा नगर भी इस मार्कण्डा नदो के सरस्वतीत्व की पुष्टि करता है। क्योंकि मार्कण्डा (सरस्वती) से घग्घर (दृषद्वती) नदी करनाल जिला की भूमि में संगम को प्राप्त होकर सिरसा के समीप से जाती थी। अतः सरस्वती के तट पर बसने से ही सिरसा नाम हुआ। परन्तु वहाँ की जनता तथा आधुनिक विद्वान् शास्त्र के अज्ञान से घग्घर नाम से कथन करते हैं। इनसे भी मार्कण्डा नदी का सरस्वतीत्व सिद्ध है। इस प्रकार प्राचीन शास्त्र प्रमाणों और अर्वाचीन भौगोलिक चित्रग्रन्थों से यह सरस्वती नदी का निर्णय सिद्ध हुआ।

अब श्रीमान् डा० हेतराम जी आदि से लेकर जिन २ सज्जनों ने इस ग्रन्थ के रचने मुद्रण करने और चित्रों के निर्माण आदि करने में यत्किंचित् भी सहायता की है।

वह सब ही प्रशंसनीय है। विस्तार भय से उन सबके नामों का उल्लेख नहीं किया है अतः क्षमा करें।

विशेष प्रशंसनीय श्रीमान् पं० सोमदत्त जी शास्त्री हैं जिन्होंने इस विषय की स्मृति कराई। दूसरे श्रीमान् पं० सूर्यनारायण शास्त्री जी हैं जो इस ग्रन्थ के सामान्य शोधक तथा समय समय पर अनुमति देने वाले वह अतिशय करके प्रशंसनीय हैं अतः मैं उनका कृतज्ञ हूं। तीसरे विशेष शोधक श्रीमान् पं० अमरनाथ जी शास्त्री व्याकरणाचार्य अतिशय प्रशंसनीय हैं। जिन्होंने इस ग्रन्थ को अक्षरशः शोधन करके तथा टिप्पणी से विभूषित किया और विषयों को भी यथास्थान रखने की सम्मति तथा प्रयत्न करने की कृपा की। इस लिए मैं उनका और भी विशेष कृतज्ञ हूं।

प्रूफरीडर की असावधानता से इस ग्रन्थ में बहुत सी अशुद्धियाँ रह गई हैं। अन्त में शुद्धि-पत्र देखें।

विक्रमी संवत् २०२४ श्रावणशुदि एकादशी।

ग्रन्थकर्ता

अस्मिन् सरस्वतीनदीनिर्णये नाम ग्रन्थे किमपि अवश्यवक्तव्यम्

वेदब्राह्मणसूत्राणां स्मृत्या रामायणस्य च। इतिहासपुराणानां मेघदूतस्य चैव हि ॥१॥
यानि नद्याः सरस्वत्या निर्णये साधकानि च। प्रमाणानि गृहीत्वैव निबन्धोऽयं मया कृतः ॥
तेषु दृष्टो विरोधो योऽन्योऽन्यं पूर्वाऽपरं तथा। तस्यापि तु परीहारः प्रमाणैश्च युक्त्या कृतः ॥
मुख्यमत्र प्रमाणं तु युक्तिस्तस्य सहायिका। अत एवेदृशो ग्रन्थः सर्वेभ्योऽपि विशिष्यते ॥
येऽन्ये सारस्वता ग्रन्था विद्वद्भी रचिताः पुरा। युक्त्याधारास्ते केवलं वेदस्य वचनैस्तथा।
पाश्चात्यविदुषां सर्वे मनःकल्पैर्विकल्पिताः ॥५॥
राज्यशासनमान्यानि भारतभूचित्राणि च। अर्वाचीनानि प्राचीनान्यानीय भूरियत्नतः ॥६॥
ब्रह्मावर्तस्य भूम्याश्च समन्तपञ्चकस्य च। चित्रं सम्यग् विचार्यैव प्रयत्नेन मया कृतम् ॥७॥
क्रियते धन्यवादस्तु सोमदत्तस्य शास्त्रिणः ॥
ब्रह्मनद्याः सरस्वत्याः स्मारको योऽभवन्मम ॥८॥
सूर्यनारायणशास्त्रिसम्मत्या ग्रन्थयोजना। तस्मात्तस्यापि श्रीमतो धन्यवादं करोम्यहम् ॥९॥
देहदुःखमुपेक्ष्यैव गृहकार्यं विहाय च। श्रीमताऽमरनाथेन द्विजमुख्येन शास्त्रिणा ॥
शोधितोऽक्षरशो ग्रन्थष्टिप्पण्या च विभूषितः ॥१०॥
विषयांश्च यथास्थानं स्थापयित्वा कृपा कृता। अतस्तस्य कृतज्ञोऽस्मि तं प्रशंसामि भूरिशः ॥

विषयानुक्रमणिका

विषयस्य नाम		पृष्ठाङ्काः
१.	प्रयोजनम् । (ग्रन्थ का प्रयोजन ।)	१—३
२.	सरस्वती-नदी-महिमा वेदेषु । (सरस्वती नदी की वेदों में महिमा ।)	४—५
३.	सरस्वत्यै सुरभीनां शापदानम् । (सरस्वती के लिए सुरभि गऊओं का शाप देना ।)	६—७
४.	सरस्वत्या नदीरूपेणावतरणम् । (सरस्वती का नदी रूप से अवतार ।)	८—१२
५.	सरस्वत्या उद्गमस्थानम् । (सरस्वती नदी का उद्गम स्थान ।)	१३—१५
६.	दधीचि ऋषिणा सरस्वत्यै वरदानम् । (दधीचि ऋषि का सरस्वती को वरदान ।)	१६
७.	सरस्वती पश्चिमवाहिनी । (सरस्वती पश्चिमवाहिनी है ।)	१६
८.	सरस्वत्या वाडवं नीत्वा पश्चिमसमुद्रे क्षेपणम् । (सरस्वती नदी का वडवाग्नि को ले जाकर पश्चिम समुद्र में फैंकना ।)	१७
९.	अथ दृश्यादृश्यगतिवर्णनम् । (सरस्वती नदी की दृश्य गति और अदृश्य गति का वर्णन ।)	१८—२४
१०.	सरस्वती-महिमा । (भविष्य पुराण में सरस्वती महानदी की महिमा ।)	२५—२८
११.	प्रतीचीसरस्वती-माहात्म्यम् । (स्कन्द पुराण में कथित प्रतीची (सामान्या) सरस्वती का माहात्म्य ।)	२८—३१
१२.	प्राची-सरस्वती-माहात्म्यम् । (पूर्ववाहिनी सरस्वती का माहात्म्य ।)	३२—४०
१३.	प्रयागराजे मुख्या सरस्वती नदी नास्ति । (प्रयाग राज में मुख्य सरस्वती नदी नहीं है ।)	४१—४३
१४.	विश्वामित्रेण सरस्वत्यै शापदानम् । (विश्वामित्र के द्वारा सरस्वती के लिये शाप देना ।)	४३—४५

विषयानुक्रमणिका

१५. मुनिना वसिष्ठेन तन्निवृत्तिः ।

(वसिष्ठ मुनि द्वारा उस शाप की निवृत्ति ।) ४५—४७

१६. भगवद्बलरामकृतसारस्वततीर्थयात्रावर्णनम् ।

(भगवान् बलराम के द्वारा की गई सरस्वती के तीर्थों की यात्रा का वर्णन ।) ४८—६४

१७. विदुरकृतसारस्वततीर्थयात्रायाः संक्षेपेण वर्णनम् ।

(विदुर के द्वारा भी की गई सरस्वती के तटवर्ती तीर्थों की यात्रा का संक्षेप से वर्णन ।) ६४—६५

१८. पुरा स्वायम्भुवमनुकृत-सारस्वततीर्थयात्रायाः संक्षेपेण वर्णनम् ।

(पूर्व काल में स्वायंभुव मनु के द्वारा भी की गई सरस्वती सम्बन्धी तीर्थों की यात्रा का संक्षेप से वर्णन ।) ६५—६७

१९. श्रीमद्भागवतस्यापि रचना सरस्वत्यास्तटे बभूव ।

(श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना भी सरस्वती नदी के तट पर हुई ।) ६७—६८

२०. विलोमानुलोमाभ्यां दशमहानदीनामनुक्रमेण वर्णनम् ।

(विपरीत और अनुकूल रूप से दश महानदियों का क्रम से वर्णन ।) ६९—७३

२१. उभे सरस्वतीदृषद्वत्यौ महानद्यौ स्तः क्षुद्रनद्यौ वा ।

(सरस्वती दृषद्वती दोनों महानदी हैं अथवा स्वल्प (लघु) नदी हैं ।) ७३—७९

२२. महानदी-त्रय-वर्णनम् ।

(स्कन्द पुराण में तीन महानदियों का वर्णन ।) ७९

२३. दृषद्वती-प्रकरणम् ।

(दृषद्वती नदी का प्रकरण ।) ८०—८१

२४. दृषद्वत्याः सरस्वत्यां संगमो भवति ।

(दृषद्वती का सरस्वती में संगम होता है ।) ८२

२५. दृषद्वत्यादिपञ्चनदीनां संगमः ।

(दृषद्वती आदि पांच नदियों का सरस्वती में संगम ।) ८२—८५

२६. अथ ब्रह्मावर्तकुरुक्षेत्रयोर्विवेचनम् ।

(इस के अनन्तर ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्र दोनों का विवेचन ।) ८५—९०

२७. समन्तपञ्चकस्य महिमा ।

(समन्तपञ्चक कुरुक्षेत्र की महिमा ।) ९०—९१

२८. ईषद्विस्तरेण कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्यम् ।

(किञ्चिद्विस्तार से कुरुक्षेत्र के दोनों भागों का माहात्म्यवर्णन ।) ९१—१०२

विषयानुक्रमणिका

२९. कुरुक्षेत्रस्य ब्रह्मावर्तस्य च माहात्म्यम् ।
(ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र और समन्तपंचक कुरुक्षेत्र का माहात्म्य ।) १०२—१०६

३०. कुरुक्षेत्रान्तर्गतानां वनानां नदीनां च वर्णनम् ।
(ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत वनों और नदियों का वर्णन ।) १०६—१०७

३१. कुरुक्षेत्रान्तर्गतस्य कुलोत्तारणकतीर्थस्य माहात्म्यम् ।
(कुरुक्षेत्र भूमि के अन्तर्गत कुल का उद्धार करने वाले तीर्थ का माहात्म्य ।) १०८—१०९

सरस्वतीप्रकरणस्य शिष्टांशः ।

३२. श्रीमद्भागवते सरस्वत्या नद्या विशदं वर्णनम् ।
(श्रीमद्भागवत में सरस्वती नदी का विशाल वर्णन ।) ११०—११६

श्रीसरस्वतीवाग्देवी-स्तोत्रम्

त्वं देवि सर्वलोकानां माता वेदारणिः शुभा । सदसद्देवि यत् किंचिन्मोक्षबोधाय यत्पदम् ॥

यथा जलं सागरे हि तथा तत् त्वयि संस्थितम् । अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत्क्षरात्मकम् ॥

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा ध्रुवम् । तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ॥८॥

ओंकाराक्षरसंस्थानं यत्र देवि स्थिरास्थिरम् । तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देवि नास्ति च ॥९॥

त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् । त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा ॥

त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात् । त्रिधातवस्तथावस्थाः पितरश्चाणिमादयः ॥

एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति । विभिन्नदर्शना आद्या ब्रह्मणो हि सनातनाः ॥१२॥

श्रीगणेशाय नमः। साम्बशिवाय नमः। श्रीगुरुभ्यो नमः। धर्माचार्येभ्यो नमः। श्रीकृष्णाय वासुदेवाय नमः। मार्कण्डेय जी बोले—हे देवि सरस्वती तुम सब लोकों की माता हो तथा वेद रूपी अग्नि के लिए आप शुभ अरणीकाष्ठ के समान हो और जैसे सागर में जल है, तैसे हे देवि सत्य या असत्य जो कुछ भी है तथा मोक्ष और बोध (ज्ञान) के लिए जो पद (स्थान) है वह भी तुम्हारे में ही स्थित है ॥६॥

तथा यह जो क्षरात्मक कहिए नाशरूप जगत् है और अक्षर रूप (नाश रहित) परब्रह्म है। यह दोनों ब्रह्म और जगत् पूर्ण रूप से तुम्हारे में वैसे ही स्थित हैं जैसे लकड़ी में अग्नि और भूमि में गन्ध ध्रुव रूप से अवस्थित हैं अर्थात् अटल रूप से विराजमान हैं ॥७-८॥

हे देवो ! जिस में स्थावर जंगम रूप जगत् की स्थिति है वह ओंकार अक्षर ही तुम्हारा चिन्ह है। उसमें ही तीनों अकार उकार तथा मकार मात्राएं हैं और हे देवि ! जिसमें अस्ति (है) नास्ति (नहीं है) यह सब है ॥९॥

भू आदि तीनों लोक तथा ऋग् यजुः साम ये तीनों वेद तथा तीनों वेद जानने वाली ब्राह्मण मण्डली या तीनों वेदों का अध्ययन तथा गार्हपत्य आह्वनीय दक्षिण तीनों अग्नि और सूर्य चन्द्रमा तथा अग्नि तीनों ज्योतियां तथा धर्म, अर्थ, काम तीनों वर्ग तथा सत्त्व रज तम तीनों गुण तथा क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण तथा क्रम से तीनों ब्रह्मा, विष्णु, शिव देवता तथा वात, पित्त, कफ तीनों शरीर को धारण करने से धातु तथा बाल युवा, वृद्ध तीन अवस्था तथा पितृगण और जो अणिमा आदि सिद्धियां हैं ॥११॥

हे देवि सरस्वती ! यह मात्रात्रय तुम्हारा रूप है। देखने में विभाग युक्त हुई भी सनातन हैं और ब्रह्मा से भी आदि है ॥१२॥

सोमसंस्थां हविःसंस्थाः पाकसंस्थाः सनातनाः। तास्त्वदुच्चारणाद्देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः॥
अनिर्देश्यं तथा चान्यदर्धमात्राश्रितं परम्। अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम्॥१४॥
तथैतत्परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितम्। (वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते इति श्रुतिः) न चान्येन तथा जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते॥१५॥
स विष्णुः स शिवो ब्रह्मा चन्द्रार्कज्योतिरेव च। विश्वावासं विश्वरूपं विश्वात्मानं महेश्वरम्॥
सांख्यसिद्धान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम्। अनादिमध्यनिधनं सदसच्च सदैव तु॥१७॥

हे देवि! सोमरूप तथा हविरूप तथा पाकरूप क्रियाएं कल्पपर्यन्त स्थायी होने से सब सनातन हैं और वे तुम्हारे उच्चारण से वेदवादियों द्वारा की जाती हैं॥१३॥

और उससे अन्य अर्धमात्रा के आश्रित परम निर्देश रहित तथा विकार और नाश-रहित दिव्य (अलौकिक) परिणाम रहित तैसे यह परमरूप है जो मेरे द्वारा उच्चारण नहीं किया जा सकता। यथा श्रुतिः—(वाणी भी जिससे लौट आती है उसको कौन कह सकता है)। तैसे दूसरे से भी जिह्वा, तालु, ओठ आदि के द्वारा उच्चारण करना कठिन है अथवा जिह्वा आदि बिना उच्चारण कठिन है॥१४॥

वही विष्णु, शिव, ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि भी है या वह विश्व (संसार या सब) का घर है तथा विश्व रूप विश्व के आत्मा महान् ईश्वर को वेदोक्त सांख्यसिद्धांत और बहुत सी वेद शाखाओं के द्वारा स्थिर (सिद्ध वा निश्चित) किया गया है॥१६॥

और आदि मध्य तथा नाश रहित है। पुनः सदा ही सत्य और असत्य भी है॥१७॥

---

१. अत्र गौतमधर्मसूत्रे अष्टमाध्याये सूत्राणि—

अष्टका पार्वणः श्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी चैत्र्याश्वयुजीति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः॥१६॥

पार्वणः स्थालीपाकः, श्राद्धं मासिश्राद्धम्, श्रावणी उपाकरणम्, आग्रहायणी आग्रहायणम्, चैत्री शूलगवः, आश्वयुजी इन्द्रध्वजहोमः इति भाष्यम्।

अग्न्याधेयम् अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावाग्रयणं चातुर्मास्यानि निरूढपशुबन्धः सौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः॥१७॥

अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमः उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः॥१८॥

कात्यायनश्रौतसूत्रभूमिकायां विद्याधरः सर्वं यथायथं निर्दिष्टवान्। यथा—

औपासनहोमः, वैश्वदेवम्, पार्वणम्, अष्टका, मासि श्राद्धम्, श्रवणा, शूलगवः इति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः।

अग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासौ, आग्रयणं, चातुर्मास्यानि, निरूढपशुबन्धः, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादयो दर्विहोमा इति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः।

अग्निष्टोमः, अत्यग्निष्टोमः, उक्थ्यः, षोडशी, वाजपेयः, अतिरात्रः, अप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः।

एकं त्वनेकधाऽप्येकं भावभेदसमाश्रितम् । अनाख्यं षड्गुणाख्यं च बह्वाख्यं त्रिगुणाश्रयम् ॥

नानाशक्तिविभावज्ञं नानाशक्तिविभावकम् । सुखात्सौख्यं महासौख्यं रूपं तत्त्वगुणात्मकम् ॥

एवं देवि त्वया व्याप्तं निष्कलं सकलं जगत् । अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये येऽर्थाः स्थूला ये विनश्यन्ति सूक्ष्माः ।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा तेषां दृश्या सा त्वमेवोपलब्धिः ॥२१॥

यद्वाऽमूर्तं यच्च मूर्तं समस्तं यद्वा भूतेष्वेव कर्माऽस्ति किंचित् ।
यद्वा देवेष्वस्ति लेखेऽन्यतो वा तत्संबन्धं त्वक्षरैर्व्यञ्जनैश्च ॥२२॥

इति मार्कण्डेयमुनिकृतं सरस्वतीस्तोत्रम् ॥

पुनः एक होकर भी अनेक रूप हैं तथा नाना भेदभाव को आश्रय करके भी एक है। आख्या अर्थात् नाम, संज्ञा उससे रहित होकर भी षट्भग रूप जो ६ गुणों वाले भगवान् नाम को धारण करते हैं और बहुनाम वाले भी हैं विष्णुसहस्रनाम में वर्णित होने से तथा तीनों गुणों का आश्रय हैं ॥१८॥

नाना शक्तियों के ज्ञान परिचय को जानने वाले तथा नाना शक्तियों के परिचित अर्थात् प्रकाशक हैं और सुख से भी सुख और महासुख रूप जो तत्वरूप (वास्तविक रूप इत्यमरः) तथा गुणरूप है तथा निर्गुण और सगुण रूप जितना भी जगत् और जो अद्वैत रूप में स्थित ब्रह्म तथा जो द्वैत रूप में विराजमान है ऐसे हे देवि वह सब आप से व्याप्त है ॥१९-२०॥

हे देवि ! जितने पदार्थ नित्य हैं और इन से भिन्न जो नाश होते हैं और जो स्थूल पदार्थ तथा जो सूक्ष्म पदार्थ अथवा जो नाश नहीं होते हैं वह सूक्ष्म पदार्थ हैं और वे जो सब नाश को प्राप्त होते हैं। जो भूमि में या अन्तरिक्ष में या पाताल में पदार्थ हैं उन सबकी क्रिया प्राप्ति कराने वाली तुम ही देखी गई हो और जो मूर्त या अमूर्त रूप समस्त पदार्थ हैं वा जो भूतों में किंचित् भी कर्म है वा जो देवताओं में है वा और जो भी लिखने में आता है वह सब स्वर और व्यंजनों से सम्बद्ध (रचित) है ॥२१-२२॥

इस प्रकार वामनपुराण के पूर्व भाग के ३२वें अध्याय में कथित यह मार्कण्डेय मुनिकृत स्तोत्र का भाषार्थ समाप्त हुआ ॥



मुद्रक- गीताप्रेस, गोरखपुर

भक्त-संतोंके लक्ष्य भगवान् श्रीकृष्ण

卐

हरि ॐ तत्सत्

ॐ नमो ब्रह्मणे परमात्मने

श्री सरस्वती महानदी निर्णयः

[सरस्वती प्रकरणम्]

॥ प्रयोजनम् ॥

अथ सर्ववेदशास्त्रेषु प्रतिपादिताऽपि लोकेऽप्रसिद्धत्वात् तथा संशययुक्तत्वाच्च तस्या निर्णयोऽवश्यमेव कर्तव्यः। ननु किं तेन प्रयोजनम्। अन्यासां सर्वासां नदीनां विद्यमानत्वे सत्यपि किं तया विना कार्यं न सिध्यति इति चेत् तदेवं गृहाण। यथा महाभारते शल्यपर्वणि ब्रह्मणो यज्ञे प्रवर्तमाने सति तया विना यज्ञो नाशोभीत्। यथा—

वैशम्पायन उवाच—

वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे। अब्रुवन्नृषयो राजन्नायं यज्ञो महागुणः॥
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती। तच्छ्रुत्वा भगवान् प्रीतः संस्माराथ सरस्वतीम्॥
पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै. (महा. श. अ. ३८,११,१२)

मंगलाचरण पद

पूर्णब्रह्म परमात्मा, सत्य चिदानन्दरूप। अनादि अनन्त विभू साक्षि, आत्म कूटस्थस्वरूप ॥ १ ॥
ध्यान अरु प्रणाम तिहिं, यद्यपि अगुण अरूप। तथापि भक्त प्रेम वस, होत साकार सरूप ॥ २ ॥
विघ्नहरण मंगलकरण, वन्दौं सरस्वती गनेस। रूप स्रद्धा विस्वास जिहिं, नमो भवानी महेस ॥ ३ ॥
आचार्य सनातन धर्म के, तिन सबकूं नमस्कार। वन्दौं शिवरूप गुरु जिहिं, दिओ ज्ञान उज्यार ॥ ४ ॥
जासु कृपा गिरि पंगु चढ़े, मूक होए बाचाल। वन्दौं माधव परमानन्द. द्रवउ सश्रीनन्दलाल ॥ ५ ॥

अथ शब्द मंगलार्थ है। सब वेदादि शास्त्रों में वर्णित होने पर भी विश्व में प्रसिद्ध न होने से तथा संशय-युक्त होने से उसका निर्णय अवश्य ही करने योग्य है। शंका—इसका क्या प्रयोजन है और सब नदियों के विद्यमान होने पर भी क्या उस सरस्वती नदी के बिना कार्य सिद्ध नहीं होता। यदि ऐसा है, तो सुनो ! जैसे महाभारत में लिखा है—कि पुष्कर राज में ब्रह्मा जी द्वारा यज्ञ आरम्भ किए जाने पर वह उसके बिना शोभित न हुआ अर्थात् विशेष फलदायक तथा पूर्ण नहीं हुआ ! यथा—वैशम्पायन उवाच। हे राजन् ! इस प्रकार पितामह ब्रह्मा जी के द्वारा पुष्कर क्षेत्र में यज्ञ आरम्भ किए जाने पर ऋषि बोले। हे पितामह यह यज्ञ महागुण (फल)

एवमन्यैर्बहुभिर्यत्र तत्र सरस्वती समाहूता। तत्सर्वमग्रे वक्ष्यामि। तथाऽद्यापि ज्ञातव्यम्। अधुना प्रयोजनं वर्णयामि। विना प्रयोजनं मन्दोऽपि न प्रवर्तते। तद्द्विविधं लौकिकं पारमार्थिकं च। तत्र द्वितीय सर्वदुःखनिवृत्तिः परमानन्दप्राप्तिश्च। तत्साधनं ब्रह्मज्ञानम्। तस्यापि चतुर्विधः संन्यासः कुटीचको बहूदको हंसः परमहंसश्चेति। तेषु द्वितीयो बहूदको नाम तीर्थाटनमेवास्ति। तेन सर्वदोषाणां निरासो भवति। यथा-स्कन्द-पुराणे प्रथमखंडे अष्टाविंशतितमे अध्याये—"तीर्थानुगमनं पुण्यं यज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते इति।"

अथ प्रथमं प्रयोजनं वर्ण्यते। पापप्रक्षालनार्थं तथेप्सितवस्तुप्राप्त्यर्थं च ताभ्यां तस्मिन् तीर्थाटने प्रवृत्तिः भवति। यानि पापानि केनाप्युपायेन न नश्यन्ति तानि सर्वाणि विधिना तीर्थाटनमात्रेण नश्यन्ति। अस्यां तीर्थयात्रायां सर्वेषां वर्णानामाश्रमिणां च समानोऽधिकारोऽस्ति। यथा—

सर्वेषामेव वर्णानां सर्वाश्रमनिवासिनाम्।
तीर्थं तु फलदं ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा॥ स्क. पु. अ. २८.

दायक नहीं है जिससे कि नदियों में श्रेष्ठ सरस्वती यहां नहीं दिखाई दे रही है। उसको सुनकर प्रसन्न हुए भगवान ब्रह्मा जी ने इसके अनन्तर सरस्वती का स्मरण किया। अर्थात् पितामह ने यजन करते हुए तीन पुष्करों में आवाहन किया। इति (महा० भा० श० प० ३८ अध्याये, ११,१२ श्लोके) इस प्रकार और भी बहुत से यज्ञ करने वालों ने सरस्वती नदी का आवाहन किया। सो सब आगे कहूंगा। तैसे अब भी जानने योग्य है। अब मैं इसका प्रयोजन वर्णन करता हूं विना प्रयोजन के मूढ पुरुष भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। वह लौकिक और पारमार्थिक भेद से दो प्रकार का है। उनमें से दूसरा जो पारमार्थिक प्रयोजन सो परमानन्द की प्राप्ति और सब दुःखों की निवृत्ति है। उसका साधन ब्रह्मज्ञान है। उसका भी चतुर्विध संन्यास जो कुटीचक बहूदक हंस और परमहंस संज्ञा वाला है। उन चारों में से दूसरा बहूदक नाम संन्यास अनेक तीर्थों में भ्रमण रूप ही है। उस से सब दोषों का नाश होकर मन शुद्ध हो जाता है। जैसे स्कन्द पुराण १ खंड २८ वें अध्याय में लिखा है। तीर्थ यात्रा का पुण्य यज्ञों से भी विशेष है। अब प्रथम जो लौकिक प्रयोजन है। वह पापों का नाश तथा इच्छित वस्तु की प्राप्ति रूप है। इन दोनों से ही उस तीर्थाटन में प्रवृत्ति होती है। जो पाप किसी भी प्रायश्चित से निवृत्त नहीं होते। वह विधिपूर्वक तीर्थ यात्रा मात्र से नाश होते हैं।

इस तीर्थ यात्रा में चारों वर्ण और चारों आश्रमों का समान अधिकार है। यथा (जैसे)—स्कन्द पुराण में लिखा है—सब ही वर्ण और सब आश्रम निवासियों के लिए तीर्थ समान फल देने वाला जानने योग्य है, इसमें और विचार नहीं करना चाहिए। स्क० पु० प्रथम खं० २८ अ०।

अतस्तीर्थानां यथार्थं ज्ञानमवश्यमेव कर्तव्यम्। तच्च प्रमाणैरेव सिद्धं भवितुमर्हति नान्यथा। यथा च श्रुतिः—

श्रुत्या यदुक्तं परमार्थमेव तत्संशयो नात्र ततः समस्तम्।
श्रुत्या विरोधे न भवेत् प्रमाणं भवेदनर्थाय विना प्रमाणम्॥

(इति ब्रह्मविद्योपनिषदि. ३२ श्रुतिः)

गीतायामपि—तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

अथ प्रथमं सरस्वती माहात्म्यं वर्ण्यते। येन विना कस्यचिदपि स्नानपाने प्रवृत्तिर्न भवितुं शक्यते।

इति प्रयोजनम्

इस लिए तीर्थों का यथार्थ ज्ञान अवश्य ही करने योग्य है। वह भी प्रमाणों द्वारा ही होने योग्य है। केवल लोक प्रथा या केवल युक्ति के आधार पर नहीं। यथा श्रुति में कहा है—श्रुति ने जो कहा है परम अर्थ वही है इसमें सन्देह नहीं। इस हेतु से अन्य सब शास्त्रों का श्रुति रूप वेद से विरोध होने पर प्रमाणत्व नहीं है। प्रमाण बिना कोई भी कर्म अनर्थ का ही हेतु होता है। गीता में भी कहा है, करने योग्य न करने योग्य में शास्त्र ही प्रमाण है। अब प्रथम सरस्वती महानदी का माहात्म्य वर्णन किया जाता है। जिसके श्रवण या स्वाध्यायर्के बिना तीर्थस्नान आदि में प्रवृत्ति असम्भव है।

इस प्रकार प्रयोजन समाप्त हुआ।

अथ सरस्वती नदी महिमा वेदेषु

ऋग्वेदः —

ओं नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ।
(ऋ. मं. ३ सू. २३ मं. ४)

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
(ऋ. मं. ६ अ. ५ सू. ५२ मं. ६)

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ।
(ऋ. मं. ६ अ. ५ सू. ६१ मं. २)

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।

अथ सरस्वती नदी की वेदों में महिमा

हे अग्निदेव ! गो रूप धारण करने वाली भूमि के श्रेष्ठस्थान दृषद्वती और आपयाया तथा सरस्वती इनके मध्य मनुष्यों के संचारयोग्य जो ब्रह्मावर्त रूप ब्रह्मा जी की उत्तरवेदी उसमें यज्ञ करने योग्य दिनों के किसी शुभ दिन में आपको स्थापन करता हूं। यहां प्रज्वलित होवो और उस हवि को दहन करो।१। यह अत्यन्त समीप के समान देवराज इन्द्र रक्षार्थ आवे यह स्यन्दमान जलों से बढ़ने वाली नदी रूपा सरस्वती भी रक्षार्थं पधारे।२। यह नदीरूपा सरस्वती शोषण करने वाले अपने पराक्रमों से अथात् बलों के तथा फैली हुई महान् तरंगों के द्वारा निजीय तट सम्बन्धि पर्वतों के मध्य समतल भूमि के सहित पर्वतों को ऐसे विदीर्ण करती है जैसे कोई भिस खनता हो। तट से दूर देश में विद्यमान वृक्षों को भी हनन करने वाली अथवा पारावार दोनों तटों को गिराने वाली उस सरस्वती की हम स्तुति और कर्मो के द्वारा परिचर्या करते हैं। इस लिए कि वह हमारी रक्षा करे।३।

हे गंगे, हे यमुने, हे सरस्वती, हे शुतुद्रि, परुष्णि और असिक्नी के सहित हे मरुद्वृधे तथा वितस्ता और सुषोमा के सहित हे आर्जीकीये ! मेरे द्वारा सम्बद्ध (रचित) इस स्तोत्र

---

१. इलास्पदं च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम ॥७७॥ — हे भरतवंश श्रेष्ठ। उसी रुद्र कोटि तीर्थ में ही इलास्पद नाम तीर्थ है॥७७॥

तत्रस्नात्वार्चयित्वा च दैवतानि पितॄनथ ।
नदुर्गतिमवाप्नोति वाजपेयं च विन्दति ॥७८॥ — वहां पर स्नान करके और देवताओं तथा पित्रों का पूजन करके कोई मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता और वाजपेय यज्ञ का फल पाता है ॥७८॥

इति म. भा. कु. क्षे. मा. व. प. ८३मेंऽध्याये ।

असिक्निया मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्यासुषोमया ॥

(ऋ. मं. १० सू. ७५ मन्त्र ५। श्रुति महा. ना. उ. १३ वा)

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः। अमश्चरति रोरुवत् ॥८॥

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती। वाजे वाजे हव्या भूत ॥१२॥

प्रया महिम्ना महिनासु चेकिते, द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा।
रथ इव बृहती विभ्वने, कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥

(ऋ. ६.६१.१३)

यजुर्वेदः—

पंचनद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥११॥

(वाजसनेयि श्रीशुक्लयजुर्वेदसंहिता अध्याये ३४ मन्त्रः ११)

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासर्त। (इत्यैतरेय ब्राह्मणे २ अध्याये १९ सूत्रम्)

को सेवन करो अर्थात् स्वीकार करो। इस प्रकार ऋग्वेद के दशम मण्डल में पचत्तरवें सूक्त में कहा है ॥४॥

जिस सरस्वती नदी का बल (वेग) अनन्त और अहिंसित या अकुटिल है, दीप्तिमान चरणशील अर्थात् अप्रतिहतगति और जल से परिपूर्ण है। ऐसा जिस सरस्वती का बल अत्यन्त शब्द करता हुआ वर्तमान है ॥८॥

तीनों लोकों में व्यापक, सप्तधातु सात गंगा आदि नदियां जिसके अवयव हैं, निषाद पाँचवां जिनमें है ऐसे चारों वर्णों को बढ़ाती हुई, ऐसी सरस्वती सब विपत्तियों में हमारी आह्वान करने योग्य है ॥१२॥

जो माहात्म्य और कीर्ति-द्वारा देवों में प्रसिद्ध है, जो नदियों में सबसे वेगवती है और श्रेष्ठता के कारण जो अतीव गुण-शालिनी है, वही सरस्वती देवी ज्ञानी स्तोता की स्तुति-पात्रा होती है ॥

वाजसनेयि श्रीशुक्लयजुर्वेद संहिता के मन्त्र का अर्थ—वैतरणी आदि पाँच नदियां अपने स्रोतों अर्थात् सहायक नदियों के सहित सरस्वती में मिलती हैं। मानों वह सरस्वती नदी ही उस देश (ब्रह्मावर्त) में अपने से भिन्न पांच रूप धार कर नदी हुई ॥५॥

प्रायः ऋषि लोक यज्ञ करने को सरस्वती नदी के तट पर विराजते हैं ॥६॥

सरस्वत्यै सुरभीनां शापदानम्

एवं पुरन्दरस्याग्रे संकीर्त्य स महामुनिः। दधीचिः प्राणसंहारं कृतवान् संवत्सरं तदा ॥४०॥
गतासुं तं विदित्वैवं विबुधास्तत्कलेवरम्। मांसशोणितनिर्मुक्तं कथं कार्यं व्यचिन्तयन् ॥४१॥
ततस्तदस्थि शुद्ध्यर्थमुवाचेदं सुरेश्वरः। गौरीणां कर्कशा जिह्वा ता एतदुत्खिदंत्विति ॥४२॥
ततस्तैर्विबुधैर्नन्दा यदा लोकेषु संस्थिता। ध्याता तदोपयाता सा सखीभिः परिवारिता ॥४३॥
नन्दा सुभद्रा सुरभिः सुशीला सुमना तथा। इति गोमातरः पंच गोलोकाच्च समागताः ॥४४॥
ऊचुस्तान् विबुधान्सर्वानस्माभिर्यत्प्रयोजनम्। कर्तव्यं तत्करिष्यामः कथ्यतां सुविचारितम् ॥४५॥

देवा ऊचुः—

यदेतदृषिणा त्यक्तं स्वमेव कलेवरम्। एतन्मांसादिनिर्मुक्तं क्रियतामस्थिपञ्जरम् ॥४६॥
तत्कृत्वा गर्हितं कर्म देवादेशात्सुदारुणम्। पुनः पितामहं द्रष्टुं गतास्ताः सुरसत्तमाः ॥४७॥

सरस्वती के लिए सुरभि गउओं का शाप देना

उस महामुनि दधीचि ने देवराज पुरन्दर के आगे इस प्रकार कथन करके उसी साल (समय) प्राणों का त्याग कर दिया ॥४०॥

उस मुनि के उस प्राण रहित शरीर को जानकर देवताओं ने मांस और रक्त से मुक्त (पृथक्) कैसे किया जाए इस प्रकार विचार किया ॥४१॥

तत्पश्चात् उन अस्थियों की शुद्धि के लिए देवराज ने यह वचन कहा कि गउओं की जिह्वा कठिन (खुरदरी) होती है। वह इस को मूल से उखाड़ें ॥४२॥

उसके पश्चात् जब नन्दा गौ अपने लोकों में स्थित थी। देवताओं ने उस का ध्यान (स्मरण) किया। तब वह सखियों से घिरी हुई उनके समीप आई ॥४३॥

नन्दा, सुभद्रा, सुरभिः, सुशीला तथा सुमना इन नामों वाली पांच गौ माताएं गोलोक से वहां आईं ॥४४॥

और उन सबने देवताओं को कहा कि हमारे से जो प्रयोजन है उसे भली प्रकार विचार किए हुए कर्तव्य (करने योग्य कार्य) को कथन करें। हम उसे करेंगी ॥४५॥

देवता बोले—जो यह ऋषि के द्वारा स्वयं ही त्यागा हुआ शरीर है। इसको मांस त्वचा रक्त से रहित हड्डियों का पञ्जर (पिंजड़ा) मात्र कर दो ॥४६॥

तब देवताओं के आदेश (आज्ञा) से उस भयानक निन्दित कर्म को करके पुनः वे गौ माताएं और देवश्रेष्ठ सब पितामह ब्रह्मा जी के दर्शन के लिए गए ॥४७॥

---

१. चेति अध्याहारः कर्तव्यः।

ततस्तु दारुणं कर्म यच्च ताभिरनुष्ठितम् । पितामहस्य तत्सर्वं समाचख्युर्यथातथम् ॥४८॥
तच्छ्रुत्वा विबुधान्सर्वान्समाहूय पितामहः । सर्वं गात्रेष्वस्पृशतं सुरभिशुद्धिकाम्यया ॥४९॥
तास्तु तैर्विबुधैः स्पृष्टाः सुपूताः समवस्थिताः । मुखमेकं परं तासां न स्पृष्टमशुचिस्मृतम् ॥५०॥
अपवित्रं भवेत्तासां मुखमेकं जुगुप्सितम् । शेषं शरीरं सर्वासां विशिष्टं तु सुरैः कृतम् ॥५१॥
सरस्वत्या तु ताः प्रोक्ता भवत्यो ब्रह्मघातिकाः । अन्यथा कारणात्कस्मान्न स्पृष्टममरैर्मुखम् ॥५२॥
ततस्ताभिस्तु सा प्रोक्ता देवी तत्र सरस्वती । नैतत्ते वचनं युक्तं वक्तुमेवंविधं मुखम् ॥५३॥
अस्माकमेव हृदयमनेन वचसा त्वया । निर्दग्धं येन तस्मात्त्वमचिराद्दाहमाप्स्यसि ॥५४॥
शापं दत्त्वा ततस्तस्याः सरस्वत्यास्तु तास्तदा । गोलोकं गतवत्यस्तु सुरभ्यः सुरपूजिताः ॥५५॥

इति श्री स्का० म० पु० ७मे प्रभा खं० वडवानल-वचन-
वृतान्त-वर्णन-नाम ३२ अध्याये कथितम् ।

वहां जाकर उन गौ माताओं ने जो भयंकर कर्म किया था । वह सब ज्यों का त्यों पितामह ब्रह्मा जी के प्रति सम्यक् रूप से कथन कर दिया ॥४८॥

उसको सुन कर पितामह ब्रह्मा जी ने सब देवताओं को बुला (संबोधन) कर कहा । कि शुद्धि की इच्छा से गो माताओं के सब अंगो पर स्पर्श करो ॥४६॥

उन देवताओं के द्वारा स्पर्श किए जाने पर वह भली भान्ति पवित्र हुई सम्यक् प्रकार से स्थित हो गईं। परन्तु उनके एक मुख को स्पर्श नहीं किया । इस हेतु से अपवित्र कहा गया ॥५०॥

उनका एक मुख ही निन्दित और अपवित्र हुआ। अर्थात् शेष (बाकी) शरीर सब देवताओं के द्वारा यशस्वी वा विशेषता-युक्त कर दिया गया ॥५१॥

तब सरस्वती ने कहा। आप ब्रह्महत्यारी हैं। अन्यथा किस कारण से देवताओं ने मुख को स्पर्श नहीं किया ॥५२॥

तत्पश्चात् वहां पर उन सब ने उस सरस्वती देवी से कहा । इस प्रकार के मुख के प्रति भी तुम्हारा यह वचन कहने योग्य नहीं ॥५३॥

अपने इस वचन से जिस प्रकार तुमने हमारे हृदय को जलाया है। उसी कारण से तुम भी शीघ्र ही दाह को प्राप्त होगी ॥५४॥

तब उस सरस्वती के प्रति शाप देकर वह देवताओं के द्वारा पूजित हुई गोमाताएं पुनः गोलोक को चली गईं ॥५५॥

इस प्रकार श्री स्कन्द म० पु० ७ प्रभा-खं-प्रथ० प्रभा० क्षे० मा० वडवानल वृतान्त वर्णन नाम ३२ अध्याय में कहा है ॥५६॥

---

१. यह आर्ष प्रयोग है । स्पृशत ऐसा पाठ होना चाहिए । २. अतः कारणात् इति शेषः ।

सरस्वत्या नदी रूपेणावतरणम्

[स्कन्दपुराणोक्तम्]

देव्युवाच—

पितुर्वधामर्षसुजातमन्युना यद्यत्कृतं कर्म पुरा महर्षिणा।
दधीचि पुत्रेण सुरप्रसाधिना सर्वं श्रुतं त्वत्र मया समाधिना ॥ १ ॥

पुनः पुनर्वै विबुधैः समानं यद्वृत्तमासीत्किमपि प्रधानम्।
कार्यं हि तत्सर्वमनुक्रमेण विज्ञातुमिच्छामि कुतूहलेन ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच—

उक्तो यदासौ विबुधैः समस्तैरापः पुरा त्वं भुवि भक्षयस्व।
यतोऽमराणां प्रथमं हि जाता आपोऽग्रजाः सर्वसुरासुरेभ्यः ॥ ३ ॥

तेनैवमुक्तस्तु महात्मना तदा प्रदर्शयध्वं मम ता यतः स्थिताः।
पीत्वा सुराः सर्वमहं पुरस्तात् कृत्यं करिष्ये सुरभक्षणं हि ॥ ४ ॥

सरस्वती का नदी रूप से अवतार

[स्कन्दपुराण में कथित]

देवी बोली—पूर्व काल में पिता के वध को न सहन करने से उत्पन्न हो गया है क्रोध जिसको ऐसे देवसिद्धि से युक्त महर्षि दधीचि के पुत्र पिप्पलाद मुनि ने जो २ कार्य किया वह सब मैंने चित को समाधान करके श्रवण किया ।।१।।

पुनः निश्चय पूर्वक उस का देवताओं के साथ जो कुछ भी विशेष वृतान्त हुआ हो। उस सब कार्य को पुनः क्रम के अनुसार उत्सुकता से जानने की इच्छा करती हूं ।।२।।

ईश्वर बोले— जब सब देवताओं ने उस वाडव से ऐसा कहा कि तुम प्रथम भूमि में जल को भक्षण करो। जिससे कि वह जल सब देवताओं के प्रथम पैदा हुआ। इस लिए सब देवता तथा असुरों से आगे जन्म लेने से वही बड़ा है ।।३।।

तब उस महात्मा वाडव ने ऐसा कहा कि आप मेरे प्रति उसको दिखाओ। जहां वह स्थित है। हे सुरो ! मैं पूर्व उस संपूर्ण जल को पीकर पश्चात् देवताओं का भक्षण रूप कार्य करूंगा ।।४।।

तत्रापि नेतुं यदि मां समर्था यत्रासते वारिचयाः समेताः ॥ ५ ॥

आहोक्ते पुण्डरीकाक्ष औवं हि वाडवं तदा। त्वां प्रापयिष्ये यत्रापः केन यानेन वाडव ॥६॥

वाडव उवाच—

नाहं हयादिभिर्यानैर्गन्तुं तत्र समुत्सहे । कुमारीकरसंपर्कमेकं मुक्त्वा मतं हि मे ॥७॥

विष्णुरुवाच—

एतत्ते सुलभं यानं तां कन्यामानयाम्यहम्। या त्वां नेतुं समर्था स्यादपां स्थानं सुनिश्चितम् ॥८॥

ईश्वर उवाच—

सुरभीशापसन्तप्ता प्रागुपात्तदशाफला । सरस्वती यानभूता तस्य सा विष्णुना कृता ॥९॥

ततोऽब्रवीद्विभुर्गंगां पार्श्वतः समुपस्थिताम्, एनं वह्निं महाभागे वेगान्नय महोदधिम् ।

नान्या शक्ता समानेतुं त्वां विना लोकपावनि ॥१०॥

गंगोवाच—

नास्ति मे भगवच्छक्तिरौर्वं वोढुं जगत्पते। रौद्ररूपो महानेष दहत्येवानलो भृशम् ॥११॥

जहां पर जल का समूह एकत्रित है वहां पर मुझे ले जाने के लिए भी यदि आप समर्थ हैं तो बताओ ॥५॥

उसके ऐसा कहने पर पुनः तब कमलनेत्र श्री भगवान् विष्णु ने उस औवंनाम वडवा जन्य अग्नि को कहा। हे वाडव ! बताओ जहां पर जल समूह है। वहां किस यान (सवारी) से तुमको मैं पहुंचा सकूंगा ॥६॥

वाडव बोला—वहां जाने के लिए एक कुमारी कन्या के हस्त सम्बन्ध को त्याग (छोड़) कर किसी घोड़े आदि की सवारी के द्वारा मेरी इच्छा नहीं ऐसा मेरा मत है ॥७॥

भगवान् विष्णु ने कहा—यह यान (सवारी) तुम्हारे लिए सुलभ (आसान) है। उस कन्या को मैं लाता हूं जो तुम को जलों के सुनिश्चित स्थान को ले जाने के लिए समर्थ हो ॥८॥

ईश्वर बोले—अपने पूर्व कर्म दशा के फलस्वरूप से प्राप्त जो सुरभी (कामधेनु) का शाप उससे संतप्त उस सरस्वती को भगवान् विष्णु ने उस वाडव का यान (सवारी) रूप बनाया। परन्तु भगवान् ने प्रथम अपने पार्श्व (बगल) में उपस्थित गंगा से कहा कि हे महाभागे ! इस वडवा अग्नि को वेग से समुद्र को ले जाओ ॥९॥

हे लोकों को पवित्र करने वाली ! तेरे बिना सम्यक् प्रकार से ले जाने के लिए और नदी समर्थ नहीं ॥१०॥

गंगा बोली—हे भगवन् ! हे जगत्पते ! इस और्व को ले जाने की शक्ति मुझ में नहीं है। यह तो रुद्र के समान रूप वाला महाभयंकर अग्नि मेरे को अति ही जलाए देता है ॥११॥

ततस्तु यमुनां प्राह सिन्धुं तस्या ह्यनन्तरम्। अन्या नद्यश्च विविधाः पृथक् पृथगुदारधीः ॥१२॥
अशक्तास्ताः समानेतुं पृष्टाश्च सुरसत्तमैः। ततः सरस्वतीं प्राह देवदेवो जनार्दनः ॥१३॥
त्वमेव व्रज कल्याणि प्रतीच्यां भयोज्झिता। अन्यथा वाडवेनैते दह्यन्ते स्वेन तेजसा ॥१४॥
तस्मात्त्वं रक्ष विबुधानेतस्मात्तुमुलाद् भयात्। मातेव भव सुश्रोणि सुराणामभयप्रदा ॥१५॥
एवमुक्ता हि सा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना। आह नाहं स्वतन्त्रास्मि पिता मे ध्रियते चिरात् ॥१६॥
तस्याहं कारिणी नित्यं कुमारी च धृतव्रता। कालत्रयेऽप्यस्वतन्त्रा श्रूयते विबुधैः सुता ॥१७॥
पित्रादेशं विना नाहं पदमेकमपि क्वचित्। गच्छामि तस्मात्कोऽप्यन्य उपायश्चिन्त्यतां हरे ॥१८॥

पुनः भगवान् ने यमुना से कहा। उसके अनन्तर सिन्धु नदी को कहा। इस प्रकार उदार बुद्धि भगवान् ने भिन्न भिन्न अन्य नाना प्रकार की नदियों को भी कहा ॥१२॥

परन्तु देवश्रेष्ठों के द्वारा पूछने पर भी वे सब ले जाने के लिए समर्थ नहीं हुईं। पश्चात् देवों के देव जनार्दन भगवान् ने सरस्वती को कहा। हे कल्याणि! पश्चिम दिशा में जो लवण (खारा) समुद्र है उसमें भय को त्याग कर तुम ही ले जाओ ॥१३॥

ऐसा करने पर सब देवता भय रहित हो जाएंगे। नहीं तो यह सब वाडव के अपने तेज से जले जाते हैं। उस कारण तुम ही इस भयानक भय से सब देवताओं की रक्षा करो ॥१४॥

हे सुश्रोणि (शोभन कटिवाली)! माता के समान देवताओं को अभय प्रदान करने वाली बनो ॥१५॥

उन सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु के द्वारा इस प्रकार कहा जाने पर उसने कहा—मैं स्वतन्त्र नहीं हूं। मेरे पिता मुझे चिरकाल से धारण करते हैं अर्थात् मेरी रक्षा करते हैं ॥१६॥

मैं भी उनकी नित्य आज्ञा को पालन करने और ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाली कुमारी हूं। यथा कुमार अवस्था में स्त्री की पिता रक्षा करे। यह नीति शास्त्र की आज्ञा है। ऐसा विद्वानों या बुद्धिमानों से सुना है कि पुत्री तीन काल में भी स्वतन्त्र नहीं ॥१७॥

हे हरे! पिता की आज्ञा बिना मैं एक पद भी कहीं नहीं जाती हूं। इस कारण कोई दूसरा उपाय चिन्तन करो ॥१८॥

---

१. पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ (मनु ९-३)

तत्स्वरूपं विदित्वैवं समभ्येत्य पितामहम्। तमब्रवीत् वासुदेवो देवकार्यमिदं कुरु ॥१९॥
नान्यथा शक्यते नेतुं वाडवोऽग्निर्महाबलः। अदृष्टदोषां मुक्त्वेमां कुमारीं तनयां तदा।
शिरस्याघ्राय सस्नेहमुवाच प्रपितामहः ॥२१॥
याहि देवि सुरान् सर्वान् रक्ष त्वं भयमागतान्। विनिक्षिपत्वं नीत्वैनं वाडवं लवणाम्भसि।
पितुर्वाक्यं हि सा श्रुत्वा प्रोवाच श्रुतिलक्षणा ॥२२॥

सरस्वत्युवाच—

एषास्मि प्रस्थिता तात तव वाक्यादसंशयम्।
रौद्रोऽयं वाडवो वह्निस्तनुं मे भक्षयिष्यति ॥२३॥
प्राप्तं कलियुगं रौद्रं सांप्रतं पृथिवीतले। लोकः पापसमाचारः स्पर्शयिष्यति मां प्रभो ॥२४॥
ततो दुःखतरं किं स्याद्यत्पापैः सह संगमः ॥२५॥

ब्रह्मोवाच—

यदि पापजनाकीर्णं न वाञ्छसि धरातलम्। पातालतलसंस्था त्वं नय वह्निं महोदधौ ॥२६॥

उसके स्वरूप (भाव) को इस प्रकार जानकर भगवान् वासुदेव ने पितामह ब्रह्मा जी के समीप जाकर उनके प्रति कहा कि आप इस देवकार्य को करो ॥१९॥

महा बलवान् यह वाडव नामक अग्नि को तुम्हारी इस निर्दोष कुमारी कन्या को छोड़ कर अन्य (दूसरे) उपाय से नहीं ले जाया जा सकता ॥२०॥

भगवान् विष्णु के कहे हुए उस वाक्य को सुनकर पितामह ब्रह्मा जी ने अपनी कुमारी कन्या सरस्वती के शिर को सूंघ कर स्नेह पूर्वक कहा ॥२१॥

हे देवी ! तुम जाओ भय को प्राप्त हुए सब देवताओं की रक्षा करो। इस वाडव (वडवानल) को तू ले जाकर लवण समुद्र में फेंक दे। पिता के वचन को सुनकर वह सरस्वती बोली ॥२२॥

सरस्वती देवी ने कहा। हे तात ! आपके वचन से संशय को त्याग कर मैं अभीप्रस्थान करती हूं। परन्तु यह वाडव नामक भयंकर अग्नि मेरे शरीर को भक्षण कर जायेगा ॥२३॥

हे प्रभो ! इस समय पृथिवी पर भयंकर वा घोर कलियुग आया हुआ है। उसके कारण से संपूर्ण लोक पापियों के समान आचरण (वर्ताव) करने वाला मुझ को स्पर्श करेगा ॥२४॥

पापियों के साथ जो समागम है उससे अधिक दुःख और क्या है ॥२५॥

ब्रह्मा जी बोले यदि पापी जनों से भरे हुए भूमि तल को तू नहीं चाहती है। तब पाताल तल (भूमि के अन्दर) में स्थित रह कर ही तुम इस अग्नि को समुद्र में ले जाओ ॥२६॥

यदातिश्रमसंयुक्ता वह्निना दह्यसे भृशम् । तदा विभिद्य वसुधां प्रत्यक्षा भव पुत्रिके ॥२७॥
कृत्वा वक्रं विशालाक्षि प्राची भव सुमध्यमे । ततो यास्यन्ति तीर्थानि त्वां श्रान्तां चारुहासिनीम् ।२८।
तानि सर्वाणि चागत्य साहाय्यं ते वरानने । करिष्यन्ति त्रयस्त्रिंशत्कोट्यो वै मम शासनात् ॥२९॥
गच्छ पुत्रि न सन्तापस्त्वया कार्यः कथंचन । अरिष्टं व्रज पन्थानं मा सन्तु परिपान्थिनः ॥३०॥
ईश्वर उवाच—

एवमुक्ता तदा तेन ब्रह्मणाथ सरस्वती । त्यक्त्वा भयं हृष्टमना प्रयातुं समुपस्थिता ॥३१॥
तस्याः प्रयाणसमये शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः । मंगलानां च निर्घोषैर्जगदापूरितं शुभैः ॥३२॥
सिताम्बरधरा देवी सितचन्दनगुंठिता । शारदाम्बुदसंकाशा तारहारविभूषिता ॥३३॥
संपूर्णचन्द्रवदना पद्मपत्रायतेक्षणा । कीर्तिर्यथा महेन्द्रस्य पूरयन्ती दिशो दश ॥३४॥
स्वतेजसा द्योतयन्ती सर्वमाभासयज्जगत् । ततो विसृज्य तां देवी नदी भूत्वा सरस्वती ॥४०॥
हिमवन्तं गिरिं प्राप्य प्लक्षात्तत्र विनिर्गता । अवतीर्णा धरा पृष्ठे मत्स्यकच्छपसंकुला ॥४१॥

जब अति थकावट हो तथा वह्नि से अति जलनता हो। हे पुत्री ! तब वसुधा (भूमि) को भेदन करके प्रत्यक्ष हो जाओ ॥२७॥

हे विशाल नेत्र वाली ! हे सुमध्यमे तथा अपना वक्र (टेडा) रूप बनाकर पूर्व वाहिनी हो जाओ। उससे जहां तुम सुन्दर हांसी वाली थक जाओगी तब मेरी आज्ञा से सब तेतीस क्रोड तीर्थ तुम्हारे समीप अर्थात् तट पर जायेंगे और आकर तुम्हारी सहायता करेंगे ॥२८-२९॥

हे पुत्री ! जाओ तुमको किसी प्रकार का संताप (चिन्ता) नहीं करनी चाहिए। तथा शुभ मार्ग से जाओ तुम्हारे मार्ग को रोकने वाला कोई न हो ॥३०॥

ईश्वर बोले—उन ब्रह्मा जी के इस प्रकार कहने के अनन्तर सरस्वती भय को त्याग कर प्रसन्न मन से जाने के लिए उपस्थित हुई ॥३१॥

उसके जाने के समय शंख और दुंदुभि (नगारे) की ध्वनियों से तथा शुभ मंगल कारक स्वरों से जगत् सब ओर से पूर्ण हो गया ॥३३॥

श्वेत वस्त्र धारण करने वाली तथा श्वेत चन्दन से लिप्त और शरद् ऋतु के मेघों की सी कान्ति वाली रजत (चांदी) के हार से विभूषित पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली और कमलपत्र के आकार वाले नेत्रों से युक्त महेन्द्र पर्वत व देवराज के समान कीर्ति से दसों दिशाओं को पूर्ण करती हुई ॥३४॥

अपने तेज से प्रकाशित होती हुई उसने संपूर्ण जगत् को प्रकाशित कर दिया। उसके अनन्तर उस गंगादेवी को त्याग कर स्वयं नदी रूप धारण कर सरस्वती हिमालय पर्वत पर पहुंच कर वहां प्लक्ष (पाकर) से प्रकट हुई ॥४०-४१॥

ग्राहडिंडिमसंपूर्णा तिमिनक्रगणैर्युता । हसती च महादेवी फेनोघैः सर्वतो दिशम् ॥४२॥
पुण्यतोयवहा देवी स्तूयमाना द्विजातिभिः । वाडवं वह्निमादाय हयवेगेन निःसृता ॥४३॥

अथ सरस्वत्या उद्गमस्थानम्

[अथ वामनपुराणम्]

ऋषय ऊचुः—

कथमेषा समुत्पन्ना नदीनामुत्तमा नदी । सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रयायिनी ॥१॥
कथं च सर आसाद्य कृत्वा तीर्थानि पार्श्वतः । प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिशुभा ।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि तीर्थं ब्रह्मविदांवर ॥२॥

लोमहर्षण उवाच—

प्लक्षवृक्षात्समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी । सर्वपापक्षयकरी स्मरणादपि नित्यशः ॥३॥
सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी । प्रविष्टा पुण्यतोयैषा वनं द्वैतमिति श्रुतम् ॥४॥

पृथिवी तल पर उतर कर मच्छ कच्छप से भरी हुई तथा ग्रहरूपी डिंडिम (डुग्गी) से पूर्ण तिमि (मत्स्य) नक्र (घड़ियाल) इनके समूह से युक्त वह महादेवी (नदी) अपने फेन समूह से सब ओर से दिशा को हंसती हुई पवित्र जल को वहाने वाली देवी सरस्वती तथा द्विजातियों के द्वारा स्तुत (पूजित) वाडव नामक अग्नि को लेकर अश्व (घोड़े) के समान वेग से निकली ॥४२-४३॥

अब सरस्वती नदी के उद्गम स्थान का वर्णन किया जाता है

[श्रीवामनपुराण]

ऋषि बोले—यह कुरुक्षेत्र में जाने वाली तथा नदियों में उत्तम नदी महाभाग्यशालिनी सरस्वती कैसे (अथवा कहां से) उत्पन्न हुई ॥१॥

हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ यह दृश्यादृश्यगति वाली शुभ नदी अपने पार्श्वभाग (दोनों तटों) में तीर्थों को प्रकट करके कैसे सन्निहित सर व ब्रह्मसर में आकर पश्चिम दिशा को गई। इस तीर्थ को विस्तार पूर्वक कहो ॥२॥

लोमहर्षण वोले—सरिताओं में श्रेष्ठ तथा सनातनी नदी प्लक्षवृक्ष से (पाकर से) प्रकट हुई तथा स्मरण मात्र से भी नित्य ही सब पापों को क्षय (नाश) करने वाली है ॥३॥

वही यह महानदी सहस्रों (हजारों) पर्वतों को विदीर्ण करके यह पवित्र जल वाली द्वैतवन में प्रविष्ट हुई। ऐसा हमने सुना है ॥४॥

तास्मिन् प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः । प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम् ॥५॥
(स्तोत्रमन्यत्रैव द्रष्टव्यम्)

एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती । प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्डेयं महामुनिम् ।
यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्यतन्द्रिता ॥२३॥

मार्कण्डेय उवाच—

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो नागह्रदं स्मृतम्, कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम् ।
तस्य मध्येन वै याहि पुण्यापुण्यजलावहा ॥२४॥

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सरस्वतीस्तोत्रं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

श्रीबृहन्नारदीयपुराणम्—

मार्कण्डेयेन मुनिना संतप्तं परमं तपः ॥१७॥

यत्र तत्र समायाता प्लक्षजाता सरस्वती, सा सभाज्य स्तुता तेन मुनिना धार्मिकेण ह ।
सरः संनिहितं-प्लाव्य पश्चिमां प्रस्थिता दिशम् ॥१८॥

उस समय महामुनि मार्कण्डेय ने उस प्लक्ष (पिलखन) वृक्ष में स्थित सरस्वती को देखकर मस्तक से प्रणाम करके स्तुति की ॥५॥ (स्तोत्र ग्रंथ के आदि में ही लिखा हुआ है वहां देख लें)।

जब इस प्रकार स्तुति की तब उस भगवान् विष्णु की जिह्वा रूपी सरस्वती देवी ने महात्मा महामुनि मार्कण्डेय को उत्तर दिया। हे विप्र! जहां तुम मेरे को ले जाओगे वहां मैं आलस्य को त्याग कर जाऊंगी ॥२३॥

मार्कण्डेय ने कहा—आदि काल में जिसका पवित्र ब्रह्मसरोवर नाम था। उसके पश्चात् नागह्रद हुआ। जिस दिन से कुरु राजा ने कर्षण किया। उस काल से कुरुक्षेत्र नाम हुआ। पवित्र और अपवित्र जल को वहाने वाली तुम उस के मध्य से चली जाओ ॥२४॥

इस प्रकार वामन पुराण के सरोवर माहात्म्य में सरस्वती स्तोत्र नाम
३२ अध्याय समाप्त हुआ।

श्रीबृहन्नारदीयपुराण

जहां पर मार्कण्डेय मुनि ने परम तप किया ॥१७॥

वहां पर प्लक्ष से उत्पन्न होने वाली सरस्वती आई।

उस धार्मिक मुनि के द्वारा निश्चय स्तुति की हुई स्वयं उसने भी मुनि का सम्मान करके और संनिहित सर को प्लावित (पूर्ण) करके पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया ॥१८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने उत्तरभागे वसुमोहनीसंवादे कुरुक्षेत्रमाहात्म्ये क्षेत्रपरिमाणादिनिरूपणं नामचतुषष्टितमोऽध्यायः ।

श्रीमार्कण्डेयपुराणम्—

दिव्यं सारस्वतं पुण्यमाश्रमाणामनुत्तमम् । भावानां ब्रह्मसद्भावो गुणानां विनयं यथा ॥

श्रीमहाभारतम्—

सौगन्धिकवनं राजन् ततो गच्छेत् मानवः ॥४॥

तद्वनं प्रविशन्नेव सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततश्चापि सरिच्छ्रेष्ठा नदीनामुत्तमा नदी ॥६॥

प्लक्षाद्देवी स्रुता राजन् महापुण्या सरस्वती । तत्राभिषेकं कुर्वीत वल्मीकान्निःसृते जले ॥७॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि पुलस्तीर्थयात्रायां चतुरशीतितमोध्यायः ॥८४॥

(एवं श्री पा० पु० स्व० खं० अ० २, श्लोक ६,७)

इति मार्कण्डेयस्याश्रमात् सरस्वत्या निर्गमनात्तस्या एव मार्कण्डेया इति नाम लोकैः कल्पितम् । अतो मार्कण्डैव सरस्वती । इत्यैतैः प्रमाणैः सिद्धम् । यथा कालिन्दी ।

इस प्रकार बृहन्नारदीय पुराण के उत्तर भाग में क्षेत्र परिमाण आदि निरूपण नाम चौसठवें अध्याय में वर्णन किया है ।

श्रीमार्कण्डेयपुराण

जिस प्रकार गुणों में विनय गुण तथा भावों में ब्रह्म की सत्ता का भाव सब से उत्तम है । ऐसे ही मार्कण्डेय मुनि का आश्रम भी सब आश्रमों से उत्तम पवित्र तथा दिव्य (अलौकिक) सारस्वत (सरस्वती से संबन्ध वाला) कहा गया है । अर्थात् सरस्वती का उद्गम स्थान है ।

श्रीमहाभारत

हे राजन् ! वहां से मानव सौगन्धक वन को जाए ॥४॥

उस वन में प्रवेश होते ही सब पापों से मुक्त हो जाता है । हे राजन् ! उस वन में श्रेष्ठ सरिता और सब नदियों में उत्तम तथा महापवित्र सरस्वती देवी प्लक्ष से टपकती है वहां पर वल्मीक (वरमी) से निकलने वाले जल में स्नान करे ॥६-७॥

इस प्रकार महाभारत के वन पर्व में तीर्थ यात्रा पर्व में ८४ अध्याय में कहा है । ऐसे मार्कण्डेय मुनि के आश्रम से सरस्वती नदी के निकलने से लोगों ने उसका ही मार्कण्डा यह नाम रखा । इस कारण मार्कण्डा ही सरस्वती है । यही इन प्रमाणों से सिद्ध होता है । जैसे कालिन्दी ।

कलिन्दाख्यपर्वते तत्संनिहितदेशे वा जाता। कलिन्दात् निःसृता वा तत्र भवा। यमुना नदी। इति शब्दकल्पद्रुमे।

दधीचि ऋषिणा सरस्वत्यै वरप्रदानम्

सरस्वत्यै वरं प्रादात् प्रीयमाणो महामुनिः।

पुण्याभ्यश्च सरिद्भ्यस्त्वं सदा पुण्यतमा शुभे। भविष्यसि महाभागे मत्प्रसादात् सरस्वती॥२३॥

सरस्वती पश्चिम-वाहनी

प्रत्यङ्मुखी खलु सरस्वती प्रवहति. ताण्ड्य ब्रा. २५ अ.। खं १२ सूत्र १९।

सरस्वती युता नद्यो नर्मदा पश्चिमानुगा। इति हारीते प्रथमे स्थाने सप्तमाध्याये।

कलिन्द नाम पर्वत में अथवा उसके समीप पर्वत देश में उत्पन्न हुई। अथवा कलिन्द (पर्वत) से निकली "उसमें हुई" यमुना नदी। इस प्रकार शब्दकल्पद्रुम नामक कोश में लिखा है।

दधीचि ऋषि का सरस्वती नदी को वरदान

महामुनि दधीचि ने प्रसन्न हो कर सरस्वती को वरदान दिया कि हे कल्याणि सरस्वती महाभाग्यवाली! तू संपूर्ण पुण्य नदियों में पुण्यतमा (श्रेष्ठ) होगी।

सरस्वती पश्चिम वाहिनी है

ताण्डय ब्राह्मण। निश्चय ही सरस्वती पश्चिम मुख अर्थात् पश्चिम की ओर मुख करके बहती है। सरस्वती और नर्मदा से युक्त ये सब नदियां पश्चिम वाहिनीं हैं। इस प्रकार शब्द कल्पद्रुम में कहा है।



स्वाश्रम में प्रादुर्भाव हुई सरस्वती को देख कर मार्कण्डेय मुनि के द्वारा उनका स्वागत और स्तवन ।

सरस्वत्या वाडवं नीत्वा पश्चिमसमुद्रे क्षेपणम्

भित्वा वेगाद्धरापृष्ठं प्रविष्टाथ महीतलम्, यदा यदाभवच्छ्रांता दह्यते वाडवाग्निना।
तदा तदा मर्त्यलोके याति प्रत्यक्षतां नदी ॥४४॥

ततस्तु जायते प्राची संतप्ता वाडवेन तु। ततो वै यानि तीर्थानि कीर्तितानि पुरातनैः ॥४५॥

दिव्यांतरिक्षभौमानि सांनिध्यं यान्ति भामिनि, ततश्चाश्वासिता तैः सा सरस्वती पुनर्नदी।
पातालतलमासाद्य जगाम मकरालयम् ॥४६॥ इति अध्याय ३३ समाप्तः।

इति वृत्तं पुरा देवि चाक्षुषस्यांतरेऽभवत् ॥३४॥

दधीच्यन्वयजातस्य वाडवस्य महात्मनः। अस्मिन् पुनर्महादेवि प्राप्ते वैवस्वतेऽतरे।
और्वस्तु भार्गवे वंशे समुत्पन्नो महाद्विजः ॥३५॥

संक्षिप्तोऽसौ सरस्वत्या देवमात्रामहाप्रभः। तावत्स्थास्यत्यपां गर्भे यावन्मन्वंतरावधिः ॥३६॥

इति ते कथितं देवि सरस्वत्याः समुद्भवम्। श्रुतं पापहरं नृणां कीर्तिदं पुण्यवर्धनम् ॥३७॥

सरस्वती नदी का वडवा अग्नि को ले जाकर समुद्र में फैंकना

इसके अनन्तर पृथिवी की पीठ को वेग से भेदन करके भूमितल में प्रवेश कर गई। जब जब थकावट होती है तथा वाडव अग्नि के द्वारा जलने लगती है तब तब मनुष्य लोक में सरस्वती नदी प्रत्यक्ष हो जाती है ॥४४॥

पुनः वह वाडव के द्वारा तपाई हुई प्राची (पूर्ववाहनी) संज्ञा को प्राप्त होती है। इस लिए ही पुरातन (वृद्ध) पुरुषों ने जितने भूमि अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में तीर्थ कथन किए हैं ॥४५॥

हे भामिनि (कामिनी) वे सब उसके समीप अर्थात् तट पर वास करते हैं। पुनः वे सब उस सरस्वती को आश्वासन (धीरज) देते हैं। इस प्रकार धीरज पाकर वह सरस्वती नदी भूमि के भीतर से होकर समुद्र को चली गई ॥४६॥ यह ३३ वां अध्याय समाप्त।

हे देवी! दधीचि वंश में उत्पन्न हुए महात्मा वाडव का यह वृतांत पूर्व चाक्षुष मन्वन्तर में हुआ था ॥३४॥

हे महादेवी! पुनः इस वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर भृगु वंश में महान् द्विज और्व उत्पन्न हुआ ॥३५॥

देव माता सरस्वती के द्वारा तेजस्वी वह भी जल समूह (समुद्र) के बीच में फेंका हुआ तब तक वहां रहेगा जब तक मन्वन्तर की अवधि है ॥३६॥

हे देवी! इस प्रकार सरस्वती नदी कि उत्पत्ति तुम्हारे प्रति कथन की। जिसका श्रवण पुरुषों के पापों को हरने तथा कीर्ति और पुण्य को बढ़ाने वाला है ॥३७॥

इति श्री स्कान्दे महापुराणे एकाशींति—साहस्र्यां संहितायां सप्तमे प्रभासखंडे प्रथमे । प्रभासक्षेत्रमहात्म्ये संक्षिप्तसरस्वत्या महिमावर्णनं नाम संक्षिप्तं चतुस्त्रिंशेऽध्याये । ३४

अथ दृश्यादृश्यगतिवर्णनम्

[स्कन्दपुराणान्तर्गतम्]

देव्युवाच—

भगवन्भार्गवे वंशे यस्त्वौर्वः कथितस्त्वया । वैवस्वतेमन्वन्तरे चास्मिंस्तस्योत्पत्तिं वद प्रभो ।।१।।

ईश्वर उवाच—

ब्राह्मणा निहता ये तु क्षत्रियैर्वित्तकारणात् । क्षयं नीतास्ते सर्वे सपुत्राश्च सगर्भतः ।।२।।

म्रियमाणेषु सर्वेषु एका स्त्री समतिष्ठत् । तया तु रक्षितो गर्भ उरुदेशे निधाय च ।।३।।

अन्यासां चैव नारीणां सर्वासामपि भामिनि । गर्भा निपातितास्तैस्तु द्रव्यार्थं क्षत्रियाधमैः ।।४।।

कालान्तरे ततो भित्वा उरुदेशं महाप्रभः, निर्गतोत्तंभितशिरा ज्वलदास्योऽतिभीषणः ।।५।।

इस प्रकार स्कन्दपुराण के सातवें प्रभास खंड में सरस्वती के अवतार की महिमा नामक ३४ वें अध्याय का संक्षेप रूप है ।

अथ दृश्यगति और अदृश्यगति का संक्षेप से वर्णन किया जाता है ।

[जैसे स्कन्दपुराण में वर्णित है]

देवी बोली—हे भगवन् आपने जिस भृगुवंशी और्व का कथन किया है । हे प्रभो ! अब इस वैवस्वत मन्वन्तर में जिस प्रकार उसकी उत्पत्ति हुई सो कहो ।।१।।

ईश्वर बोले—क्षत्रियों ने धन के लोभ से जिन ब्राह्मणों का नाश किया । वे सब पुत्रों के सहित तथा गर्भों सहित क्षय को प्राप्त हुए । अर्थात् समाप्त हो गए ।।२।।

सब के मर जाने पर एक ही स्त्री स्थित (जीवित) रही । उसने अपने गर्भ को ऊरुदेश (जंघा) में स्थापित (छिपाकर) करके रक्षा की ।।३।।

हे भामिनि (कामिनी) उन अधम क्षत्रियों ने द्रव्य के कारण अन्य सब ब्राह्मण स्त्रियों के गर्भपात कर दिए ।।४।।

उसके पश्चात् (पीछे) गर्भ समय के अन्तर (अन्दर) ही वे महातेजस्वी जलते हुए मुख वाला और अति भयंकर तथा उन्नमित शिर से युक्त उरुदेश (माता की जंघा) को भेदन करके निकला ।।५।।

तद्वैरं हृदि चाधाय ददाह वसुधातलम् । उत्पाद्य वह्निं तपसा रौद्रमौर्वं जलाशनम् ॥६॥
तमिन्द्रः प्लावयामास वृष्ट्यौघैर्वरवर्णिनि । न शशाक यदा नेतुं तदा तूष्णीमवस्थितः ॥७॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः ब्रह्माणं शरणं गताः । अभवन्भयसन्त्रस्ताः सर्वे प्रांजलयः स्थिताः ॥८॥

देवा ऊचुः—

भगवन्भार्गवे वंशे जातः कोऽपि महाद्युतिः । अग्निरूपेण सर्वं ददाह स वसुधातलम् ॥९॥
कृतो यत्नः पुराऽस्माभिस्तद्विनाशाय सत्तम । जलेन वृद्धिमायाति ततो नो भयमागतम् ॥१०॥
विनष्टे भूतले देव अग्निष्टोमादिकाः क्रियाः । उच्छिद्यन्ते ततोऽस्माकं नाशो नूनं भविष्यति ॥११॥
तस्माद्यत्नं कुरु विभो त्रैलोक्यहितकाम्यया ॥१२॥
ततो ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं भार्गवैश्च महर्षिभिः । आगत्य चाब्रवीत् और्वं किमर्थं दहसि क्षितिम् ॥१३॥
विरामः क्रियतां सद्यो ममार्थं च द्विजोत्तम ॥१४॥

उन क्षत्रियों के बैर को हृदय के अन्तर धारणा करके तप के द्वारा उग्र तथा जल को भक्षण करने वाले और्व नामक अग्नि को उत्पन्न करके पृथिवी तल को जलाने लगा ॥६॥

हे वरवर्णिनि (दुर्गे) उसको इन्द्र ने वर्षा के समूह (बाढ़) से प्लावित कर दिया। तद्यपि शान्त करने में जब समर्थ न हुआ। तब वह मौन होकर स्थित हो गया अर्थात् वर्षा समाप्त कर दी ॥७॥

तत्पश्चात् गन्धर्वों के सहित सब देवता ब्रह्मा जी की शरण में गए। वे सब भय से अतित्रस्त थे। इस कारण अंजलियां बांध (हाथ जोड़ कर) कर स्थित हो गए ॥८॥

देवताओं ने कहा—हे भगवन् ! भार्गव वंश में कोई महातेजस्वी उत्पन्न हुआ है। वह अग्निरूप से संपूर्ण वसुधातल (पृथिवी तल) को जला रहा है ॥९॥

हे श्रेष्ठतम ! उसके नाश अर्थ हम ने पूर्व ही यत्न किया। परन्तु वह तो जल से बढ़ता जाता है। इस कारण उससे हम को भय उपस्थित हो गया है ॥१०॥

हे देव ! भूतल (भूमि) के नाश होने पर अग्निष्टोम (यज्ञ विशेष) आदि क्रियाएं उच्छेद हो जाएंगी। उससे हमारा भी निश्चय ही नाश हो जाएगा ॥११॥

हे विभो ! उस उपर्युक्त हेतु से त्रिलोक संबन्धी हित की इच्छा से यत्न करो ॥१२॥

इस वाक्य को सुनकर ब्रह्मा जी ने देवताओं तथा भार्गव महाऋषियों के साथ आकर और्व के प्रति कहा किस कारण से भूमि को जलाते हो ॥१३॥

हे द्विजों में उत्तम ! मेरे कारण शीघ्र विराम करो (रुको) ॥१४॥

और्व उवाच—

एष एव निवृत्तोऽहं तव वाक्येन सत्तम। एष वह्निर्मयोत्सृष्टः स विभो तव शासनात् ॥१५॥

यथा गच्छेत्समुद्रान्तं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥१६॥

समाहूय ततो देवीं स्वां सुतां पद्मसंभवः, उवाच पुत्रि गच्छ त्वं गृहीत्वाग्निं महोदधिम्।
मद्वाक्यं नान्यथा कार्यं गच्छ शीघ्रं महाप्रभे ॥१७॥

सरस्वत्युवाच—

एषास्मि प्रस्थिता देव तव वाक्यादसंशयम्। इत्युक्ते साधु साध्वीति ब्रह्मणा समुदाहृता ॥१८॥

ततोऽभिमन्त्रितं वह्निं क्षिप्त्वा कुंभे हिरण्मये, प्रायच्छत सरस्वत्यैः स्वयं ब्रह्मा पितामहः।
आशिषो विविधा दत्वा प्रोवाचेदं पुनः पुनः ॥१९॥

गच्छ पुत्रि न संतापस्त्वया कार्यः कथंचन। अरिष्टं व्रज पन्थानं मा सन्तु परिपन्थिनः ॥२०॥

ईश्वर उवाच—

एवमुक्ता तदा तेन ब्रह्मणा च सरस्वती। हिमवंतं गिरिं प्राप्य भार्गवादाश्रमात्तदा ॥२१॥

उद्भूता सा तदा देवी अधस्ताद्वृक्षमूलतः। तत्कोटरकुटी कोटीप्रविष्टानां द्विजन्मनाम् ॥२२॥

और्व ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आपके वचन से मैं अभी निवृत्त हुआ ॥१५॥

हे विभो ! तुम्हारी आज्ञा से सो यह अग्नि मैंने त्यागा। जिस प्रकार से समुद्र तक चला जाए। वैसा उपाय आप करो ॥१६॥

उसके पश्चात् ब्रह्मा जी ने अपनी पुत्री सरस्वती देवी को बुला कर कहा। हे पुत्रि ! इस अग्नि को ग्रहण करके तुम महासागर को चली जाओ। हे महाप्रभे ! मेरा वाक्य अन्यथा (उल्लंघन) करने योग्य नहीं शीघ्र जाओ ॥१७॥

सरस्वती बोली—हे देव आप के वाक्य से (आज्ञा से) मैं अभी संशय रहित होकर प्रस्थान करती हूं। उसके ऐसा कहने पर ब्रह्मा जी ने साधु वाद (ठीक-ठीक) का उच्चारण किया ॥१८॥

उसके अनन्तर अग्नि को मन्त्र से अभिमंत्रित कर तथा स्वर्णमय कुम्भ में स्थापित करके स्वयं पितामह ब्रह्मा जी ने सरस्वती को प्रदान किया और पुनः पुनः (बारम्बार) अनेक प्रकार आशीर्वाद देकर यह कहा ॥१९॥

हे पुत्रि ! जाओ, तुम्हें किसी प्रकार का संताप (चिन्ता) नहीं करनी चाहिए। निरापद वा शुभमार्ग से जाओ तथा तुम्हारे मार्ग का रोधक (शत्रु) कोई न हो ॥२०॥

ईश्वर बोले—उन ब्रह्मा जी के द्वारा जब ऐसी आज्ञा दी गई। तब वह सरस्वती उस भार्गव आश्रम से हिमालय पर्वत पर पहुंच कर वह देवी उस काल में वृक्ष मूल के नीचे से प्रादुर्भूत हुई ॥२१-२२॥

श्रूयन्ते वेदनिर्घोषा सरसारक्तचेतसाम्। विष्णुरास्ते तत्र देवो देवानां प्रवरो गुरुः ॥२३॥

तस्मात्स्थानात्ततो देवी प्रतीच्यमभिमुखं ययौ ॥२४॥

तेनाग्निना करस्थेन दह्यमाना सरस्वती ॥२५॥

भूमिं विदार्य तस्याधः प्रविष्टा गजगामिनी। तदन्तर्धानमार्गेण प्रवृत्ता पश्चिमामुखी ॥२६॥

श्रीकण्ठदेशं विख्यातं गता सर्वौषधियुतम् ॥३१॥

तस्मात्पुण्यतमाद्देशाच्छ्रीकण्ठात्सा मनस्विनी। संप्राप्ता वह्निना सार्द्धं कुरुक्षेत्रं सरस्वती ॥३२॥

पुनस्तस्मात्कुरुक्षेत्राद्विराटनगरस्य सा। समुद्भूता समीपस्था अन्तर्धानान्मनोरमा।
गोपायनो गिरिर्यत्र तत्र सा पुनरुद्गता ॥३३॥

गोपायता केशवेन यत्र ते पाण्डुनन्दना। कुर्वन्तः स्वानि कर्माणि न कैश्चिदुपलक्षिताः ॥३४॥

पुनर्गोपायनाद्देवी क्षेत्रं प्राप्तातिशोभनम् ॥३५॥

उस वृक्ष के कोटर (मध्य में खोखला भाग) रूप कुटी में प्रविष्ट हुए तथा प्रेम से रंगा हुआ चित्त जिनका ऐसे कोड़ संख्यिक द्विजों की वेदध्वनियां सुनी जाती हैं। वहीं पर देवताओं के मुख्य शासक भगवान् विष्णु देव विराजते हैं अर्थात् उनका स्थान है ॥२३॥

उस स्थान से वह देवी पश्चिम दिशा को मुख करके चली गई ॥२४॥

उस हाथ पर रखे हुए औौर्वरूपी अग्नि के द्वारा जलने वाली तथा हस्ति (हाथी) के समान गमन करने वाली सरस्वती (भूमि) को विदारण करके उसके नीचे प्रविष्ट हुई। वहां से अन्तर्धान मार्ग से पश्चिम की ओर मुख से प्रवृत्त हुई ॥२५-२६॥

और सम्पूर्ण औषधियों से युक्त तथा प्रसिद्ध श्रीकण्ठ देश को गई ॥३१॥

वह मनस्विनी सरस्वती उस पुण्यतम श्रीकण्ठ देश से उस और्व नामक अग्नि के सहित कुरुक्षेत्र पहुंची ॥३२॥

पुनः वह मनोरमा (सुन्दरी) अन्तर्धान मार्ग से विराट नगर के समीप प्रकट हुई। यहां पर गोपायन पर्वत है वहां पर पुनः प्रकट हुई ॥३३॥

यहां पर केशव भगवान् ने वे पाण्डुपुत्र छुपाए थे। वहां पर वे सब पाण्डव अपने २ कर्मों को करते हुए किसी को भी ज्ञात न हुए ॥३४॥

पुनः उस गोपायन से वह देवी सरस्वती अतिशोभन (मंगल कारक) क्षेत्र (पुष्कर) में पहुंची ॥३५॥

खर्जूरीवनमापन्ना नन्दानाम्नीति तत्र सा। सरस्वती पुनस्तस्माद्वनात्खर्जूरसंज्ञितात् ॥३६॥

सरस्वती पुनस्तस्मादर्बुदारण्यमाश्रिता ॥३८॥

तपस्तप्तं पुरा यत्र वसिष्ठेन समाश्रितात्। तस्माद्वटवनात्पुण्यादुदुम्बरवनं गता ॥३९॥

उदुम्बरवनात्तस्मात्पुनर्देवी सरस्वती। अन्तर्द्धानेन शिखरमन्यत्प्राप्ता महानदी ॥४०॥

स्थानं मनोरमं तस्मादुद्गता सा सुमध्यमा। वंशस्तम्बात्सुविपुला प्रवृत्ता दक्षिणामुखी ॥४२॥

तत्रोद्गमवटस्तस्यास्तत्समाख्यो व्यवस्थितः। ततः प्रभृति सा देवी सुप्रभं प्रकटा स्थिता ॥४३॥

अन्तर्द्धानं परित्यज्य प्राणिनामनुकम्पया। तस्यास्तटेषु रम्येषु सन्ति तीर्थानि कोटिशः ॥४४॥

ततस्तस्मान्महादेवि शम्भुकुण्डेश्वरं स्मृतम्। तीर्थे सरस्वती तीरे तस्मिन्सिद्धेश्वरं स्मृतम् ॥५१॥

सिद्धेश्वरात्पुनस्तस्मात्प्रवृत्ता पश्चिमामुखी ॥५२॥

खजूरी वन में जाने पर वहां नन्दा, इस नाम से विख्यात हुई। पुनः वह सरस्वती महानदी उस खजूरी संज्ञा वाले वन से चल कर पुनः उसने अर्बुदारण्य (आबुपर्वत) में पदार्पण किया ॥३६-३८॥

पुनः वह सरस्वती जहां पर वसिष्ठ मुनि ने तप किया था। उस मुनि के आश्रम भूत पवित्र वटवन से उदुम्बर वन को गई ॥३९॥

पुनः उस उदुम्बर वन से वह सरस्वती देवी अन्तर्धान मार्ग से अर्थात् अन्तर्धान होकर वह महानदी अन्य शिखर (पर्वत) को प्राप्त हुई ॥४०॥

उस शिखर से वह सुमध्यमा (विवाह योग्य) अवस्था वाली मनोरम नामक स्थान में प्रकट हुई ॥४१॥

पुनः वह महानदी वंश स्तम्बनामक स्थान से दक्षिणमुखी होकर वहने लगी ॥४२॥

वहां पर उसके समान ख्याति वाला उस सरस्वती का उद्गम स्थानीय वट सजाए हुए के समान स्थित था ॥४३॥

वहां से आदि लेकर वह देवी सुप्रभ नामक स्थान में प्राणियों पर अनुकम्पा की इच्छा से अदृश्य रूप को त्याग कर प्रकट हुई। वहां उस सरस्वती महानदी के रमणीक तटों पर करोड़ों तीर्थ हैं ॥४४॥

हे महादेवी ! पुनः उस स्थान से आगे चलकर शम्भु कुण्डेश्वर तीर्थ कहा है। पुनः सरस्वती के उसी तीर पर स्थित तीर्थ में सिद्धेश्वर नामक तीर्थ भी कहा है ॥५१॥

पुनः उस सिद्धेश्वर से पश्चिममुखी होकर प्रवृत्त हुई अर्थात् वहने लगी ॥५२॥

तस्मादन्यत्सरस्वत्यां तीर्थं द्वारवती स्मृतम् । तीर्थानां प्रवरं देवि यत्र संनिहितो हरिः ।
रुल्लं प्राप्य पुनर्देवि समुद्भूता मनोरमा । रुल्लं नाम परं यत्र सृष्टं देवेन शंभुना ॥८१ ॥
कोलादेवी स्थिता तत्र सर्वपापभयापहा । अन्तर्द्धानेन तां कोल्लां संप्राप्तां सा महानदी ॥८७॥
ततोऽप्यन्तर्हिता भूत्वा संप्राप्ता तु मनोरमम् । सानुमदनसंज्ञं तु क्षेत्रं सिद्धनिषेवितम् ॥८८॥
ततोऽप्यन्तर्हिता भूत्वा पुनः प्राप्ता हिमाचलम् । खदिरामोदनामानं सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलम् ॥८९॥
तत्रारुह्य विलोक्याथ ददर्श सुमनोहरम् । क्षारोदं पश्चिमाशास्थं घनवृन्दमिवोन्नतम् ॥९०॥
एवं विधं च तं तत्र सा विलोक्य महाप्रभा, हर्षात्पंचानना भूत्वा देवकार्यार्थमुद्यता ॥९१॥
हरिणी वज्रिणी न्यंकु कपिला च सरस्वती । पंचस्रोता स्थिता तत्र मुनिनोक्ता सरस्वती ॥९२॥
श्रमापनोदं कुर्वाणा मुनिना यत्र संस्थिता । सर्वेषां पातकानां च शोधनं तद्वरानने ॥९३॥

पुनः सरस्वती के तट पर उससे भिन्न दूसरा द्वारावती (द्वारकापुरी) तीर्थ कहा है। हे देवी ! वह तीर्थों के मध्य में अतिश्रेष्ठ तीर्थ है। यहां पर हरि भगवान् रहते हैं ॥८५॥

हे देवी ! पुनः वह सुन्दरी रुल्लनामक तीर्थ पर जाकर प्रकट हुई। यहां पर महादेव शम्भु भगवान् ने अपने परम रुल्ल नाम की रचना की थी ॥८१॥

वहीं सब पाप और भय को नाश करने वाली कोलादेवी स्थित है। वह महानदी अन्तर्धान मार्ग से उस कोलादेवी में पहुंची ॥८७॥

पुनः वहां से भी अन्तर्धीन होकर वह अनुमदन संज्ञा युक्त तथा मनोहर और सिद्धों से सेवित क्षेत्र को प्राप्त हुई ॥८८॥

पुनः वहां से भी अन्तर्धीन होकर सब ऋतुओं के पुष्पों से सुशोभित खदिरामोद नाम वाले हिमाचल (पश्चिमी हिमालय गिरनार) पर्वत को प्राप्त हुई। अति शीतल होने से हिमाचल संज्ञा हुई ॥८९॥

उस पर चढ़ कर तथा विलोक कर मेघवृन्द (समुदाय) के समान उन्नत पश्चिम दिशा में स्थित अति मनोहर क्षार समुद्र को देखा ॥९०॥

इस विधि से वहां पर उस क्षार समुद्र को देखकर वह महाप्रभा (कान्तिमयी) हर्ष से पंचमुखी हो कर देव कार्य के लिए उद्यत हुई। उन पंच धाराओं के हारिणी, वज्रिणी, न्यंकु, कपिला तथा सरस्वती नाम हुए। वहां पर मुनि के कथन से वह सरस्वती नदी पंच धारा बन कर स्थित हुई ॥९१॥

हे वरानने (श्रेष्ठ मुखवाली) यहां पर मुनियों के श्रम को निवृत्त करती हुई स्थित हुई। वह तीर्थ स्थान सब पातकों को शोधन करने वाला है ॥९३॥

खदिरामोदमासाद्य तत्रस्था वीक्ष्य सागरम्। गन्तुं प्रवृत्ता तं वह्निमादाय सुरसुन्दरी ॥९४॥
दग्ध्वा कृतस्मरं देवी पुनरादाय वाडवम्। समुद्रस्य समीपस्था स्थिता हृष्टतनूरुहा ॥९५॥
ततः प्रविष्टा सा देवी अगाधे लवणाम्भसि। वाडवं वह्निमादाय जलमध्ये व्यसर्जयत् ॥९६॥
एवमेषा महादेवि प्रभासे तु सरस्वती। गृहीत्वा वाडवं प्राप्ता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणाम् ॥१०१॥
सा विश्रान्ता कुरुक्षेत्रे भद्रावर्ते च भामिनि। पुष्करे श्रीस्थले देवि प्रभासे च महानदी ॥१०२॥
देवमातेति सा तत्र संस्थिता लवणोदधौ। अस्मिन्मन्वतरे देवि आदौ त्रेतायुगे पुरा ॥१०३॥
इति वृत्तं सरस्वत्या वाडवाग्नेस्तथाभवत् ॥१०४॥

इति स्कान्दे महापुराणे एकाशीति साहस्र्यां संहितायां सप्तमे प्रभासखण्डे प्रथमे प्रभासक्षेत्र-माहात्म्ये सरस्वत्यब्धिसमागमाग्नितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।

इति संक्षेपेन दृश्यादृश्यगतिः सरस्वत्याः वर्णिता।

पुनः हे सुन्दरि! खदिरामोद पर्वत के निकट आकर वहां स्थित हुई और सागर को देख कर उस अग्नि को लेकर गमन करना आरम्भ किया ॥९४॥

कृतस्मर नामक अन्य पर्वत को उस अग्नि से दग्ध करके पुनः वाडव (और्व) को लेकर समुद्र के समीप में वह रोमांचित शरीर युक्त देवी स्थित हुई ॥९५॥

तत्पश्चात् (पीछे) उस देवी सरस्वती ने वाडव अग्नि को लेकर अगाध (अथाह) लवण समुद्र में प्रवेश किया और उसको जल के मध्य में विसर्जन कर दिया ॥९६॥

हे महादेवी! इस प्रकार सरस्वती महानदी वाडव नामक अग्नि को ग्रहण करके मनीषी (विद्वान् व विचारशील) पुरुषों की प्रसन्नता के लिए प्रभास क्षेत्र में पहुंची ॥१०१॥

हे भामिनि (सुन्दरी) वह महान् नदी कुरुक्षेत्र और भद्रा वर्त (ब्रह्मावर्त) पुष्कर, श्रीस्थल तथा प्रभास क्षेत्र इन पवित्र स्थानों में विश्राम करती हुई गई ॥१०२॥

हे देवी! ऐसे इस वैवस्वत मन्वन्तर के पूर्व आदि त्रेतायुग में देवमाता उस लवण समुद्र में सम्यक् स्थित हुई ॥१०३॥

इस प्रकार सरस्वती महानदी तथा वाडव अग्नि का वृत्तान्त हुआ ॥१०४॥

इस प्रकार श्री स्कन्दपुराण के सप्तम प्रभास खण्ड में सरस्वती सागर संगम तथा अग्नितीर्थ माहात्म्य वर्णन नाम संक्षिप्त ३५वां अध्याय समाप्त हुआ।

यह सरस्वती महानदी की दृश्य तथा अदृश्य गति का संक्षेप से वर्णन है विशेष रूप से वहीं देखने योग्य है।

सरस्वतीमहिमा

[भविष्यपुराणे]

द्विसहस्रे कलौ प्राप्ते म्लेच्छवंशविवर्धिता । भूमिर्म्लेच्छमयी सर्वा नानापन्थविवर्धिता ।।२९।।

ब्रह्मावर्तमृते तत्र सरस्वत्यास्तटं शुभम् । इति भविष्य पु० प्र० पञ्चमेऽध्याये ।

शौनक उवाच—

ब्रह्मावर्ते कथं म्लेच्छा न प्राप्ताः कारणं वद । सूतः प्राह शृणुष्वेदं सरस्वत्याः प्रभावतः ।।१।।

म्लेच्छाः प्राप्ता न तत्स्थाने.... । इति भविष्य पु० प्र० स० प० षष्ठेऽध्याये ।

पाण्डवाः पञ्च निर्गत्य सरस्वत्यास्तटेऽवसन्....। ३ खण्ड० १ अ० १० श्लोके ।

शक्राज्ञया च संप्राप्तौ दम्पती शारदातटे, सरस्वतीं नदीरूपां कुरुक्षेत्रनिवासिनीम् ।

चतुर्वेदमयैः स्तोत्रैः कण्वस्तुष्टाव नम्रधीः ।

इति श्रीभविष्यपुराणे चतुर्युगखण्डे कृष्णचैतन्यचरि० व० नामैकविंशाध्याये ।।

भविष्यपुराण में कथित सरस्वती महानदी की महिमा ।

कलियुग में दो हजार वर्ष बीतने पर म्लेच्छ जाति वृद्धि को प्राप्त हुई । सारी भूमि म्लेच्छमयी अर्थात् म्लेच्छों से पूर्ण हो गई तथा पंथ भी नाना प्रकार के हो गए ।।२९।।

उस सरस्वती नदी के शुभ (पवित्र) तट ब्रह्मावर्त के विना सर्वत्र म्लेच्छ फैल गए । शौनक जी बोले । ब्रह्मावर्त में म्लेच्छ किस लिए नहीं आए । इसका कारण कहो । सूत जी ने कहा, सुनो । यहाँ सरस्वती के प्रभाव से म्लेच्छ उस स्थान ब्रह्मावर्त में नहीं आ सके ।।१।।

इस प्रकार भविष्यपुराण प्र० स० प० छठे अध्याय में कहा है ।।

पाँचों पाण्डव शिविर से निकल कर सरस्वती के तट पर वसे (निवास किया) । तथा देवराज इन्द्र की आज्ञा से अपनी पत्नी के साथ कण्व ऋषि शारदा जो सरस्वती नदी है उसके तीर पर आए और उसने नम्र भाव से कुरुक्षेत्र की भूमि के भीतर वहने वाली नदीरूपा सरस्वती की चारों वेदों के मन्त्र रूप स्तोत्रों के द्वारा स्तुति की।

भविष्यपुराण में सरस्वतीमहिमा समाप्त ।।

ब्रह्मवैवर्तपुराणेऽप्युक्तम्—

नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नाति मुण्डयेन्नरः। न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः।

इति ब्रह्मवै० पु० प्रकृ० खण्डे ६१तमे अध्याये ८६ श्लोके ॥

श्रीनारदीय-महापुराणे—

तत्र यो वै वसेद्धीरः सरस्वत्यास्तटे स्थितः। तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयं भविष्यति न संशयः ॥८॥
(नार० पु० उ० भा० अ० ६४, वा० पु० ३३ अध्या० ११ श्लोके)

श्रीशिवमहापुराणे—

सरस्वती नदी पुण्या प्रोक्ता षष्टिमुखा तथा। तत्तीरे वसेत्प्राज्ञः क्रमाद् ब्रह्मपदं लभेत् ॥९॥

इति श्रीशिवपुराणे विद्येश्वरसंहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥

श्रीकूर्मपुराणे—

तीर्थेभ्यः परमं तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम्। ब्रह्माणमर्चयित्वाऽत्र ब्रह्मलोके महीयते।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी कहा है।

जो नर नित्य ही सरस्वती के जल से स्नान करता है तथा मुण्डन करावे। वह मानव पुनः गर्भ में वास नहीं करता अर्थात् जन्म नहीं लेता। इस प्रकार ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है।

वहाँ जो धीर पुरुष सरस्वती के तट पर स्थित हुआ वास करे उसको ब्रह्मात्मक ज्ञान अवश्य होगा इसमें सन्देह नहीं।

ऐसा नारदीयपुराण में कहा है ॥

श्रीशिवपुराण में

तथा (तैसे) पवित्र सरस्वती नदी साठ (६०) मुख वाली कही गई है उसके तीर में जो विद्वान् वास करे तो वह क्रम से उस ब्रह्म पद को प्राप्त हो अर्थात् क्रममुक्ति लाभ करे।

इस प्रकार शिवपुराण के १२वें अध्याय में कहा है ॥

श्रीकूर्मपुराण में

तीर्थों से भी परमतीर्थ ब्रह्मसरोवर तीर्थ है ऐसा सुना है। यहाँ पर ब्रह्मा जी का पूजन करके ब्रह्मलोक में पूजित होता है तथा सरस्वती के विनशन तीर्थ और प्लक्ष

सरस्वत्या विनशनं प्लक्षं प्रस्रवणं शुभम् ॥ कूर्मपु० ३६ अ० २७ श्लोके ॥

इदानीं तत्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः शुभम् । पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥
(३८ अ० ७ श्लोके)

सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर । समं स्नानं च दानं च यथा मे शंकरोऽब्रवीत् ॥
(कूर्मपु० ३८ अ० ३१ श्लोके)

अग्निपुराणे—

तत्र विष्ण्वादयो देवास्तत्र वासाद्धरिं व्रजेत् ।
सरस्वत्यां सन्निहित्यां स्नानकृद् ब्रह्मलोकभाक् ।
गङ्गासरस्वतीसङ्गं ब्रह्मावर्तमघापहम् ॥१५-१७॥

वामनपुराणे—

यदा सूर्यस्य ग्रहणं कालेन भविता क्वचित् । सरस्वत्यां तदा स्नात्वा पूता स्वर्गं गमिष्यसि ॥
(३४ अ० ५ श्लोके)

प्रस्रवण नामक शुभतीर्थ का सेवन करके भी ब्रह्मलोक में जाता है।

ऐसा कूर्मपुराण में कहा है ॥

अब मैं शुभ तीर्थ का कथन करूंगा, एकाग्र मन करके सुनो—जैसे कनखल में गंगा पुण्यदायक या पवित्र है। वैसे ही कुरुक्षेत्र में सरस्वती पवित्र है।

हे युधिष्ठिर ! जैसे मेरे प्रति शंकर जी ने कहा था सो सुनो कि सरस्वती नदी में और गंगा में तथा नर्मदा में स्नान और दान का फल समान है ।।३१।।

जहां पर सरस्वती नदी है। वहीं विष्णु आदि देवता हैं और वहां पर वास करने से हरि को प्राप्त होता है। सन्निहित सरस्वती में स्नान कर्त्ता ब्रह्मलोक का भागी होता है। मन्दाकिनी गंगा और सरस्वती का संगम ब्रह्मावर्त पापों को नाश करने वाला है ।।१५-१७।।

इस प्रकार अग्निपुराण में कहा है ॥

वामनपुराण में

जब कभी काल के द्वारा कुरुक्षेत्र में सूर्य का ग्रहण होगा। तब सरस्वती नदी में स्नान करके पवित्र होकर स्वर्ग को जाओगी।

ऐसा वामनपुराण के अध्याय ३४ श्लोक ५ में कहा है ॥

---

१. सरस्वतीसमुद्रसंगमः प्रभासः सरस्वतीविनशनम् इति याज्ञिकाः। यत्र सरस्वती अन्तर्भवति तद् विनशनम् इति अग्निस्वामी (लाश्रौ १०,१५,१)। यत्र सरस्वती भूम्यन्तर्निमग्ना प्रवहति तद्विनशनमिति माधवाचार्याः (विद्याधरः काश्रौ २५,५,३०)।

श्रीब्रह्माण्डपुराणे —

सरस्वत्यां विनशने प्लक्षप्रस्रवणे तथा । व्यासतीर्थे दृषद्वत्यां त्रिप्लक्षे च विशेषतः ॥

इति ब्र० पु० श्राद्धकल्पे पुण्यदेशानुकीर्तननामत्रयोदशाऽध्याये ६९ श्लोके ॥

प्रतीची (सामान्या) सरस्वतीमाहात्म्यम्

[स्कन्दपुराणे]

देव्युवाच—

भगवन् देवदेवेश संसारार्णवतारक । सरस्वत्याश्च माहात्म्यं विस्तारात्कथयस्व मे ॥१॥

यत्रागतानां देवेश पुरुषाणां जितात्मनाम् । मुखद्वारे तु किं पुण्यं स्नानदाने च शंकर ॥२॥

अवगाहनेन चाऽन्यत्र फलं किं स्विल्प्रजायते ॥३॥

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि दानश्राद्धविधिक्रमम् । सरस्वत्याश्च माहात्म्यं कीर्त्यमानं निबोध मे ॥४-५॥

श्रीब्रह्माण्डपुराण में

सरस्वती में और विनशन तथा प्लक्षप्रस्रवण में और व्यासतीर्थ दृषद्वती और त्रिप्लक्ष इनमें विशेष करके स्नान आदि का माहात्म्य है। इस प्रकार ब्र० पु० के श्राद्धकल्प के १३ अध्याय ६९ श्लोक में कहा है।

पुनः स्कन्दपुराण में कथित प्रतीची (सामान्या) सरस्वती का माहात्म्य कहा जाता है।

देवी बोली—हे भगवन् ! हे देवों के देव ! हे ईश्वर ! हे संसार सागर से पार करने वाले ! मेरे प्रति सरस्वती नदी का माहात्म्य (प्रभाव) विस्तार से कहो ॥१॥

तथा जहाँ मुखद्वार (गंगाद्वार के समान पर्वतों से बाहर आने के स्थान) में आने वाले जितात्मा पुरुषों को स्नान तथा दान करने का क्या पुण्य है ॥२॥

अन्य स्थानों में निमज्जन (डुबकी) करने से क्या फल प्राप्त होता है ॥३॥

ईश्वर बोले—हे देवी ! सुनो, मैं दान तथा श्राद्ध की विधि का क्रम वर्णन करूंगा। तथा मेरे द्वारा कथन किया हुआ सरस्वती का माहात्म्य (महिमा) भी जान लो ॥४-५॥

---

१. एत्य च दृषद्वतीतीरेणाऽवभृथमभ्यवयन्ति यमुनां त्रिप्लक्षावहरणं प्रति (काश्रौ २४,६,३६)। तत्र विद्याधरः—दृषद्वत्या नद्या दक्षिणेन तीरेण तस्या नद्या उत्पत्तिस्थानमागत्य त्रिप्लक्षावतरणदेशस्थां यमुनां प्राप्याऽवभृथं कुर्यात्।

पुण्यं सारस्वतं तोयं यत्र तत्रावगाह्यते । सागरेण तु संमिश्रं देवानामपि दुर्लभम् ॥६॥

सरस्वती सर्वनदीषु पुण्या सरस्वती लोकसुखावगाह्या ।

सरस्वतीं प्राप्य न दुःखिता नराः सदा न शोचन्ति परत्र चेह च ॥७॥

पुण्यं सारस्वतं तोयं पुण्यकृल्लभते नरः । दुर्लभं त्रिषु लोकेषु वैशाख्यां सोमपर्वणि ॥८॥

अमासोमेन संयुक्ता यदि तत्रैव लभ्यते । तत्र किं क्रियते देवि पर्वकोटिशतैरपि ॥९॥

चान्द्रायणानि कृच्छ्राणि महासंतापमानि च । प्रायश्चित्तानि दीयन्ते यत्र नास्ति सरस्वती ॥१०॥

यावदस्थिशरीरस्य तिष्ठेत्सारस्वते जले । तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके वसेन्नरः ।

जात्यन्धैस्ते समाज्ञेया मृतैः पंगुभिरेव च ॥११॥

समर्था ये न पश्यन्ति प्रभासंस्थां सरस्वतीम् । ते देशास्तानि तीर्थानि आश्रमास्ते च पर्वताः ॥१२॥

वैसे तो सरस्वती नदी का सर्वत्र ही अर्थात् जहां तहाँ भी स्नान किया जाए पवित्र है । परन्तु समुद्र के साथ सम्यक् मिला हुआ वही जल देवताओं को भी दुर्लभ है ॥६॥

सरस्वती सब नदियों में अधिक पुण्यदायक वा पवित्र है । सरस्वती लोक में सुख-पूर्वक स्नान करने योग्य है और सरस्वती को प्राप्त करके मनुष्य दुःखी नहीं होते तथा लोक वा उस लोक में कभी शोक नहीं करते हैं ॥७॥

संसार में सरस्वती के पवित्र जल को पुण्यशील पुरुष ही उपलब्ध करता है । पुनः वैशाख मास में सोमपर्व (सोमावती अमावस) होने पर तीनों लोकों में भी दुर्लभ है ॥८॥

यदि अन्य मासों में भी सोमवार से युक्त अमावस वहां सरस्वती नदी में उपलब्ध हो तो हे देवी ! क्रोड़ अन्य पर्वों से भी उसकी समता कौन कर सकता है ॥९॥

जहां पर सरस्वती नदी नहीं है वहीं पर चान्द्रायण तप्तकृच्छ्र महासांतपन आदि व्रत रूप प्रायश्चित दिए व कराए जाते हैं ॥१०॥

जब तक (जितने वर्ष) शरीर की अस्थि (हडडी) सरस्वती के जल में स्थित रहती है । वह मनुष्य उतने हजार वर्ष पर्यन्त विष्णु लोक (वैकुण्ठ) में वास करता है ।

जो मनुष्य समर्थ होने पर भी प्रभास क्षेत्र में स्थित सरस्वती नदी का दर्शन नहीं करते वे जन्म के अन्धों मुरदों तथा पंगुओं के समान निष्फल जन्म वाले हैं ॥११॥

वे देश वे तीर्थस्थान तथा वे आश्रम और पर्वत धन्य हैं ॥१२॥

येषां सरस्वती देवी मध्ये याति सरिद्वरा। त्रैलोक्यपावनीं पुण्यां संश्रितां ये सरस्वतीम्।
संसारकर्दमामोदमाजिघ्रन्ति न ते पुनः ॥१३॥

शब्दविद्येव विस्तीर्णा मतेव जगतः प्रिया। सतां मतिरिव स्वच्छा रमणीया सरस्वती ॥१४॥

त्रैलोक्यशोभितां देवीं दिव्यतोयां सुनिर्मलाम्। स नीचो यः पुमानेतां न वन्देत सरस्वतीम् ॥

स्वर्गनिश्रेणिसंभूता प्राभासे तु सरस्वती। नापुण्यवद्भिः संप्राप्तुं पुंभिः शक्या महानदी ॥१६॥

चन्द्रभागा च गंगा च तथा यत्र सरस्वती। देवास्ते न मनुष्यास्ते तिस्रो नद्यः पिबन्ति ये ॥१७॥

सत्यमेव मया देवी जाह्नवी शिरसा धृता। याः काश्चित् सरितो लोके तासां पुण्या सरस्वती ॥१८॥

दर्शनेन सरस्वत्या राजसूयो न राजते। गंडूषश्चाश्वमेधाद्धि सर्वक्रतुवरं पयः ॥१९॥

भस्मास्थिचर्मतोयानि नखकेशादिकानि च। वातैरपि हृतान्येव तथा सारस्वते जले ॥२०॥

नदियों में श्रेष्ठ सरस्वती देवी (दिव्य नदी) जिनके मध्य में होकर जाती है।

तीनों लोकों को पवित्र करने वाली व तीनों लोकों में पवित्र तथा पुण्यदायक सरस्वती का जिन्होंने आश्रय लिया है वे पुरुष संसार रूपी कीचड़ की सम्मुख दुर्गन्ध को भी पुनः नहीं सूंघते ॥१३॥

जैसे जगत् की प्यारी सरस्वती शब्द विद्या (व्याकरण) विस्तार वाली मानी है। वैसे सरस्वती भी सत्पुरुषों की मति के समान ही शुद्ध और रमणीक भी है ॥१४॥

जो पुरुष इस त्रिलोक की शोभा दिव्य जल वाली शोभन निर्मल सरस्वती को प्रणाम नहीं करता तो वह नीच (अपवित्र) है ॥१५।

पुनः प्रभास क्षेत्र में स्वर्ग की सीढ़ी—भूत महान् नदी सरस्वती को प्राप्त करने के लिए पुण्य हीन पुरुषों की शक्ति नहीं ॥१६॥

जहाँ पर चन्द्रभागा और गंगा तथा सरस्वती ये तीनों बहती हैं। जो लोग इन तीनों का जल पान करते हैं। वे देवता हैं। मनुष्य नहीं ॥१७॥

हे देवी! यद्यपि यह बात सत्य है कि मैंने जाह्नवी गंगा को शिर पर धारण किया है तद्यपि जो कोई नदी संसार में है। उन सब में सरस्वती ही अधिक पवित्र है ॥१८॥

सरस्वती के दर्शन के तुल्य राजसूय यज्ञ का फल भी शोभा नहीं पाता। सरस्वती के जल का एक कवल मात्र भी अश्वमेघ से श्रेष्ठ है। उसका जल सब यज्ञों से बढ़ कर है। जिन लोगों के चिता भस्म अस्थि और चर्म तथा अश्रुजल और नख केश (शिर के बाल) आदि वायु के द्वारा उड़ाए हुए भी यदि सरस्वती के जल में गिर गए हैं तथा काल के द्वारा बहते हैं वे पुरुष पुनः काल के वश नहीं होते अर्थात् काल चक्र में नहीं आते ॥१९-२०॥

वहन्ति येषां कालेन ते न कालवशा नराः। देवि किं बहुनोक्तेन वर्णितेन पुनः पुनः।
सरस्वत्याः परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥२१॥
तत्रैव दुर्लभं स्नानं यत्र सागरसंगमः, तत्र स्नानेन दानेन कोटियज्ञफलं लभेत् ॥२२॥
यत्र सारस्वतं तोयं सागरोर्मिसमाकुलम्। तत्र स्नास्यन्ति ये मर्त्या भाग्यवन्तो युगे युगे ॥२३॥
ते धन्यास्ते नमस्कार्यास्तेषां स्फीततरं यशः। येषां कलेवरं नृणां सिक्तं सारस्वतैः जलैः ॥२४॥

इति श्रीस्कन्दमहापुराणे सप्तमे प्रभासखण्डे प्रथमे प्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये सरस्वतीसिन्धु-संगममाहात्म्यवर्णनं नाम चतुरुत्तरद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

हे देवा! बार बार वर्णन करने तथा बहुत कहने से क्या है। सरस्वती से पर (श्रेष्ठ) तीर्थं न हुआ और न होगा ॥२१॥

जहां सरस्वती का सागर से संगम होता है। वहां पर तो स्नान दुर्लभ है। वहां पर स्नान तथा दान करने से कोड़ यज्ञ का फल उपलब्ध होता है ॥२२॥

यहां पर सरस्वती नदी का जल समुद्र की तरंगों से पीड़ित होता है। वहाँ पर जो प्राणी युग युग में स्नान करेंगे। वे भाग्यवान् होंगे ॥२३॥

जिन मनुष्यों का शरीर सरस्वती के जलों (जलतरंगों) से सिंचित हो गया है वे धन्य हैं और वे ही नमस्कार करने योग्य हैं। उनका यश भी अधिक फैल जाता है ॥२४॥

इस प्रकार यह श्रीस्कन्दपुराण के सातवें प्रभास खण्ड के प्रथम प्रभास क्षेत्र माहात्म्य में सरस्वती सिन्धु संगम का माहात्म्य वर्णन नाम २०४वां अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्री प्राची सरस्वती माहात्म्यम्

[स्कन्दपुराण]

देव्युवाच—

यदेतद्भवता प्रोक्तं प्राची सर्वत्र दुर्लभा। विशेषेण कुरुक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा ॥१॥

माहात्म्यमखिलं तस्याः प्राच्याः पातकनाशनम्। कथयस्व महेशान् यद्यहं ते प्रिया विभो ॥२॥

ईश्वर उवाच —

साधु प्रोक्तं त्वया भद्रे प्राचीने सर्वत्र दुर्लभा। नापुण्यो वेद देवेशि कर्म निर्मूलनक्षमाम् ॥४॥

ये पिबन्ति नराः पुण्यां प्राचीं देवीं सरस्वतीम्। न ते मनुष्या विज्ञेयाः सत्यं सत्यं वरानने ॥५॥

धन्यास्ते मुनयस्ते च पुण्यास्ते च तपस्विनः। ये च सारस्वतं तोयं पिबन्ति अहरअहः सदा ॥६॥

भुक्त्वा वा यदि वाऽभुक्त्वा दिवा वा यदि वा निशि। न कालनियमस्तत्र यत्र प्राची सरस्वती ॥७॥

श्री पूर्ववाहिनी सरस्वती का माहात्म्य कहा जाता है।

[स्कन्दपुराण]

देवी पार्वती बोली—हे महेशान ! जो आपने कहा कि प्राची (पूर्वाभिमुख बहने वाली) सरस्वती यद्यपि सब स्थानों में दुर्लभ है तो भी कुरुक्षेत्र और प्रभास क्षेत्र तथा पुष्कर राज में विशेष करके दुर्लभ है ॥१॥

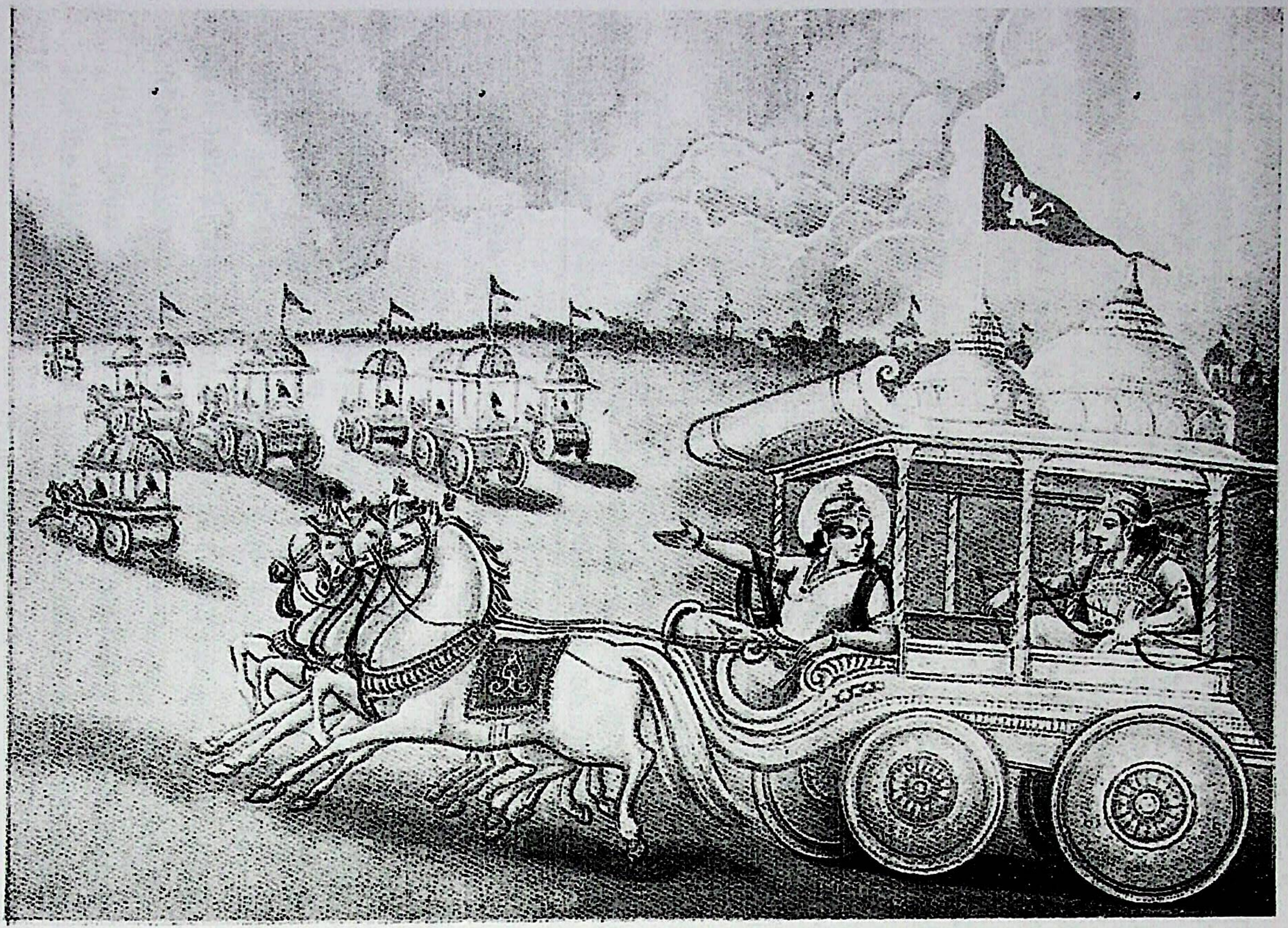
हे विभो ! यदि मैं आपकी प्रिय हूं तो पापों का नाश करने वाली उस प्राची सरस्वती का संपूर्ण माहात्म्य कथन करो ॥२॥

ईश्वर बोले—हे कल्याणी तुम ने नेक कहा कि प्राची सब स्थान में दुर्लभ है, हे देवेशि, कर्मों का मूल सहित नाश करने में समर्थ उस पूर्ववाहिनी को पुण्य-हीन नर नहीं जानता है ॥४॥

हे वरानने (श्रेष्ठ मुख वाली) जो पुरुष उस पवित्र प्राची सरस्वती देवी का जल पान करते हैं वे मनुष्य नहीं जानने चाहिए किन्तु देवता है यह मैं सत्य कहता हूं सत्य कहता हूं ॥५॥

वे मुनि लोग धन्य हैं तथा वे तपस्वी तथा पुण्य आत्मा हैं। जो प्रति दिन सरस्वती के जल को सदा पान करते हैं ॥६॥

यहां पूर्ववाहिनी सरस्वती बहती है। वहां भोजन करके अथवा भोजन से पूर्व दिन में या रात्री में पान करे इसमें काल का कोई नियम नहीं ॥८॥



मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन-सङ्ग प्राचीन ''प्रस्तक'' तीर्थको जा रहे हैं

प्राचीं सरस्वतीं ये तु पिवन्ति सततं मृगाः। तेऽपि स्वर्गं गमिष्यन्ति यज्ञैर्द्विजवरा यथा ॥९॥
सर्वकामप्रपूर्त्यर्थं नृणां तत्क्षेत्रमुत्तमम्। चिन्तामणि समादेवी यत्र प्राची सरस्वती ॥१०॥
यथा कामदुघा गावः सर्वकामफलप्रदाः। तथा स्वर्गापवर्गाभ्यां प्राची देवी सरस्वती ॥११॥
अष्टाशीति सहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्। यत्र स्थितानि सन्यांसं तस्माद्किमधिकं स्मृतम् ॥१२॥
यत्र मंकणकः सिद्धः प्राचीने नियतात्मवान्। ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णं मया यत्र वरानने ॥१३॥
वृषतीर्थे महापुण्ये प्राची कूलसमाश्रिते। निवृत्ते भारते युद्धे तस्मिंस्तीर्थे किरीटिना ॥१४॥
प्रायश्चित्तं पुराचीर्णं विष्णुना प्रेरितात्मना। त्रैलोक्ये सर्वतीर्थानां तत्तीर्थं प्रवरं स्मृतम्।
पापघ्नं पुण्यजननं प्राणिनां पुण्यकीर्तिदम् ॥१५॥

सूत उवाच—

आहैवमुक्ते सा देवी शंकरं लोकशंकरम्। प्रायश्चितं कथं प्राप्तः पार्थः परपुरंजयः
ज्ञातिक्षयोद्भवं पापं कथं नाशमगात्प्रभो ॥१६॥

पुनः जो मृग भी उस प्राची सरस्वती का जल निरन्तर पीते हैं। वह भी स्वर्ग में वैसे ही जाएंगे जैसे यज्ञ करने वाले श्रेष्ठ द्विज लोग जाते हैं ॥९॥

जहां पर चिन्तामणि के समान पूर्ववाहिनी सरस्वती देवी (दिव्य) नदी है। वह क्षेत्र मनुष्यों की सब कामनाओं को परिपूर्ण करने के लिए उत्तम है ॥१०॥

जैसे कामधेनु गऊएं सब कामनाओं का फल प्रदान करने वाली हैं। तैसे ही पूर्व, वाहिनी सरस्वती देवी (दिव्य) नदी भी स्वर्ग और मोक्ष दोनों पदार्थ देने वाली हैं ॥११॥

जहां पर ऊर्ध्वरेता अठासी हजार मुनियों की संख्या क्षेत्र—संन्यास को विधान करके अर्थात् इस परम तीर्थ से अन्य तीर्थों में नहीं जाएंगे। ऐसा संकल्प करके स्थित हैं। क्योंकि उससे अधिक कौन है ॥१२॥

जिस प्राचीन तीर्थ (पूर्व वाहिनी के तट पर होने से प्राचीसंज्ञा हुई) पर संयत्तचित्त वाले मंकणक मुनि सिद्धि को प्राप्त हुए। हे सुन्दर मुख वाली तथा (तैसे) मैंने भी जहां ब्रह्महत्या की निवृत्ति के लिए व्रत किया था ॥१३॥

महाभारत युद्ध के समाप्त हो जाने पर उसी महापवित्र तथा प्राची सरस्वती (प्राङ्मुखी) के तीर पर सम्यक् स्थित सर्वश्रेष्ठ तीर्थ में विष्णु (कृष्ण) भगवान् द्वारा प्रेरित चित्त वाले किरीटि (अर्जुन) ने पूर्व प्रायश्चित किया था ॥१४॥

वह तीर्थ त्रिलोकी के सब तीर्थों से अधिक श्रेष्ठ कहा गया है और प्राणियों के पापों का नाशक पुण्य जनक तथा पवित्र कीर्ति देने वाला कहा है ॥१५॥

सूत जी वोले—ऐसा कहने पर उस देवी पार्वती ने संसार का मंगल करने वाले भगवान् शंकर को कहा कि शत्रुओं के पुर को जीतने वाले पार्थ अर्जुन ने प्रायश्चित्त कैसे प्राप्त किया। हे प्रभो ! सम्बन्धियों के क्षय (नाश) से उत्पन्न पाप उसका कैसे नाश हुआ ॥१६॥

---

१. क्षेत्रसंन्यासं विधाय इति शेषः।

एवमुक्तः पुनः प्राह विश्वेशो नीललोहितः ॥१७॥

ईश्वर उवाच—

शृणुष्वावहिता भद्रे कथां पातकनाशनीम्। यां श्रुत्वा मानवो भक्त्या पवित्रात्मा प्रजायते ॥१८॥

योऽसौ देवि समाख्यातः किरीटी श्वेतवाहनः। स जित्वा कौरवान् सर्वान् संहृत्य हयकुञ्जरान् ॥१९॥

पश्चात् सुयोधनं हत्वा भीमेन प्रययौ गृहान्। नारायणेन सहितो नरोऽसौ प्रस्थितो रणात् ॥२०॥

द्रष्टुं धर्मसुतं हृष्टः प्रणतः प्राञ्जलिः स्थितः। स विज्ञाय तदाऽऽयन्तौ नरनारायणावुभौ ॥२१॥

राजा युधिष्ठिरः प्राह द्वारस्थान् द्वारपालकान्। भवद्भिरेतावायान्तौ निषेध्यौ द्वारसंस्थितौ ॥२२॥

नरनारायणौ क्रूरौ पापपंकानुलेपिनौ। एवमेतदिति प्रोक्तौ तौ तदा द्वारमागतौ ॥२३॥

भवन्तौ नेच्छति द्रष्टुं राजा दुर्नयकारिणौ। तत्रस्थः पृष्टवान्भूयः प्रतिहारं नरः स्वयम् ॥२४॥

आवां किं कारणं राजा नेक्षते वशवर्तिनौ। प्रोवाच प्रणतो राजा ततो द्वाःस्थं पुरः स्थितम् ॥

इस प्रकार कहे हुए विश्व (जगत्) के स्वामी भगवान् शंकर ने पुनः उत्तर दिया ॥१७॥

ईश्वर बोले—हे भद्रे (हे कल्याणि)! एकाग्र चित्त होकर पातकों को नाश करने वाली कथा को सुनो। जिसको भक्ति से सुन कर मानव पवित्र आत्मा हो जाता है ॥१८॥

हे देवी! जो यह श्वेत वाहन (सफेद घोड़ों वाला) अर्जुन भली भान्ति विख्यात है। वह सब कौरवों को जीत कर उनके घोड़े और हाथियों को मार कर पश्चात् (पीछे) दुर्योधन को भीम के द्वारा मार कर घर को चले गए।

उस नर रूप अर्जुन ने नारायण रूप भगवान् कृष्ण के सहित रण (युद्ध भूमि) से प्रस्थान किया ॥१९-२०॥

वह धर्म पुत्र युधिष्टर दर्शन के लिए हर्ष पूर्वक सिर झुकाए हुए अञ्जलि बांध कर खड़े हो गये। तब उन दोनों नर और नारायण को आते हुए जान कर उस राजा युधिष्टर ने द्वार पर स्थित द्वारपालों को कहा कि आप लोकों ने आने वाले इन दोनों को द्वार पर स्थित ही रोक देना ॥२१-२२॥

क्रूर कर्म करने वाले होने से नर नारायण दोनों पाप रूपी पंक (कीचड़) से लिप्त हैं। इस लिए निषेध करने योग्य हैं। तब द्वार पर आए हुए उन दोनों के प्रति यह बात ऐसी है इस प्रकार कह दिया ॥२३॥

कि आप दोनों दुष्ट नीति करने वाले हैं। अतः राजा आपको देखने की इच्छा नहीं करता है पुनः वहीं पर स्थित नर (अर्जुन) ने स्वयं द्वारपाल से पूछा ॥२४॥

क्या कारण है कि आज्ञा में चलने वाले हम दोनों को राजा देखना नहीं चाहते तब पूर्वस्थित अर्थात् सम्मुख स्थित द्वारपाल को राजा ने नम्रता से कहा ॥२५॥

नारायणेन सहितं नरं नरकनिर्भयम् । दुर्योधनेन सहिता बांधवास्ते यतो हताः ।
पितृतुल्याश्च राजानस्तेन वै पाप भाजनम् ॥२६॥
एवमुक्ते तु तेनाथ मुखमालोकितं हरेः । तेन प्रोक्तमिदं तथ्यं यत्ते राज्ञा प्रभाषितम् ॥२७॥
एवमुक्ते नरः प्राह पुनरेव जनार्दनम् । कथयस्व कथं पापात्कृष्ण शुद्धयामहे वयम् ॥२८॥
तीर्थस्नानेन मे शुद्धिर्यथा स्यात्तद्वदस्फुटम् । तच्च गंगादिकं कृष्ण यथाऽस्याघस्य नाशनम् ॥२९॥

कृष्ण उवाच—

मा गयां गच्छ कौन्तेय मा गंगां मा च पुष्करम् । तत्र गच्छ कुरुश्रेष्ठ यत्र प्राची सरस्वती ॥३०॥
ब्रह्मघ्नाश्च सुरापाश्च ये चान्ये पापकारिणः । तत्र स्नात्वा विमुच्यन्ते यत्र प्राची सरस्वती ॥३१॥
नारायणेन प्रोक्तोऽसौ नरस्तद्वचनाद्द्रुतम् । सहितस्तेन संप्राप्तः प्राचीनं तीर्थमुत्तमम् ॥३२॥
त्रिरात्रोपोषितः स्नातस्त्रिकालं नियतात्मवान् । तेन तस्माद्विनिर्मुक्तः पातकात्पूर्वसंचितात् ॥३३॥

तत्पश्चात् पूर्व ही द्वार पर स्थित नारायण के सहित नरक से निर्भय नर के प्रति राजा ने नम्रता से कहा। जिससे तुमने दुर्योधन के सहित उन सब बन्धुओं और पिता के तुल्य (समान) राजाओं को हनन किया है। इसी कारण से निश्चय तुम पाप के भागी हो ॥२६॥

उसके ऐसा कहने पर तदनन्तर उस नर (अर्जुन) ने हरि (कृष्ण) भगवान् के मुख को देखा। तब भगवान् ने कहा कि राजा ने तुम्हारे लिए जो भली प्रकार कहा है। यह सब सत्य है ॥२७॥

भगवान् के ऐसा कहने पर नर ने पुनः (फिर) भी जनार्दन के प्रति कहा। हे कृष्ण! कहिए हम पाप से कैसे शुद्ध हों ॥२८॥

तीर्थ स्थान से जैसे मेरी शुद्धि हो। वह स्पष्ट रूप से कहो। हे कृष्ण! वह गंगा आदिक तीर्थ जैसे इस पाप को नाश करने वाले हों ॥२९॥

श्री कृष्ण भगवान् बोले। हे कुन्तिपुत्र! मत गया मत गंगा मत पुष्कर जाओ हे कुरुकुल में श्रेष्ठ! वहां जाओ जहां पर प्राङ्मुखी सरस्वती है ॥३०॥

जहां पर पूर्ववाहिनी सरस्वती है। वहां पर ब्रह्म हत्यारे और मदिरा पान करने वाले और अन्य (दूसरे) भी जो पाप करने वाले हैं। वह भी स्नान करके उन से भली प्रकार मुक्त हो जाते हैं ॥३१॥

नारायण के द्वारा कहा हुआ वह नर उन के कहने से शीघ्र उन्हीं नारायण के सहित प्राचीन नाम उत्तम तीर्थ को सम्यक् प्राप्त हुए। अर्थात् जा पहुंचे ॥३२॥

वह संयत मन वाला तीन काल स्नान किए हुए तीन रात व्रती रहा। अर्थात् उपवास किया। उस प्रायश्चित के द्वारा उस बन्धु वध-जन्य पाप से तथा पूर्वजन्म संचित पाप से विशेष रूप से मुक्त हो गया अथवा उस पूर्व-संचित पातक से मुक्त हुआ। इस कथन से मर्यादा का पालन कराया गया। वास्तव में पाप नहीं लगा ॥३३॥

विज्ञाय शुद्धमेनं तु राजा धर्मसुतो द्रुतम् । भ्रातृभिः सहितः प्राप्तस्तं द्रष्टुं नरपुङ्गवम् ॥३४॥
ततस्तं प्रणतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः पुरः स्थितम् । आलिलिंग प्रहृष्टात्मा पृष्टवांश्चाप्यनामयम् ॥३५॥
भीमादिभि र्भ्रातृभिश्च तदा गुरुगणैर्वृतः । आलिङ्गितः प्रहृष्टैस्तु नरो गुणगुणैर्वृतः ॥३६॥
एतद्धि तन्महातीर्थं प्राचीनेति शब्दितम् ॥३७॥
सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्ततुम् । प्राचीने तु वरारोहे न चेहागच्छते पुनः ॥४०॥

श्री पाद्मं पुराणम्—

गंगोवाच—

अहं चोदङ्मुखी पुण्या त्वं तु प्राची सरस्वती । तत्र क्रतुशतुं पुण्यं स्नानदानेन सुव्रते ॥८३॥
श्राद्धदाने तथा नित्यं पितृणां दत्तमक्षयम् । ये करिष्यन्ति मनुजा विमुक्तास्त ऋणैस्त्रिभिः
मोक्षमार्गं गमिष्यन्ति विचारो नात्र विद्यते ॥१८५॥

पुनः धर्मपुत्र राजा युधिष्ठर ने इस को शुद्ध हुआ जान कर शीघ्र भ्राताओं के सहित नर श्रेष्ठ को देखने के लिए वहां पहुंचे ॥३४॥

तदनन्तर प्रणाम करते हुए अथवा नम्र भाव से झुककर सन्मुख खड़े उस नर रूप अर्जुन को देखकर धर्म पुत्र ने आलिंगन किया और प्रसन्न मन युक्त कुशल भी पूछा ॥३५॥

तब वह तथा भीम आदि के सहित परम हर्षित गुरु (वृद्ध) जनों के समुदाय से घिरा हुआ और गुण समूह से व्याप्त वह नर (अर्जुन) आलिंगत हुआ । अर्थात् उन के द्वारा भी आलिंगन किया गया ॥३६॥

यह वही प्राचीन इस नाम से कथित महातीर्थ है ॥३७॥

सरस्वती के उत्तरी तीर पर विद्यमान प्राचीन नाम तीर्थ में जो पुरुष अपने शरीर को त्यागे । हे पार्वती ! वह पुनः इस संसार में नही आता है ॥४०॥

श्री पाद्‌ममहापुराण में

गंगा बोली— हे सुव्रते (सुन्दर व्रत वाली) मैं तो उतरमुखी (उतर वाहिनी) होने पर अधिक पुण्या (पवित्र) हूं और तुम पूर्ववाहिनी होने पर विशेष पुण्या (पवित्र) हो वहां पर स्नान दान करने से सौ यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है ।

तथा पितरों के निमित्त नित्य दिया हुआ दान अक्षय होता है इस प्रकार जानकर ये मनुष्य श्राद्ध और दान वहां करेंगें वे देव पितृ तथा ऋषियों के इन तीनों ऋणों से मुक्त हो जाएगे और मोक्ष के मार्ग को प्राप्त होंगे इसमें विचार की आवश्यकता नहीं है ॥१८५॥

---

१. शुद्ध कामाय इति पाठः । २. च इति पाठः ।

३. जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः ॥
तैत्तिरीय संहितायां (कृष्ण यजुर्वेदे) षष्ठे काण्डे तृतीये प्रपाठके दशमेऽनुवाके पञ्चमे खण्डे ।

ततो विसृज्य तान् देवान्नदीभूता सरस्वती ॥१८८॥

अधस्तात्प्लक्षवृक्षस्य अवरोप्य च तां तनुम्। अवतीर्णा महाभागा देवानां पश्यतां तदा ॥१८९॥

विष्णुरूपस्तरुः सोऽत्र सर्वदेवैस्तु वन्दितः। संसेव्यश्च द्विजैर्नित्यं फलहेतोर्महोदयः ॥१९०॥

अनेकशाखाविततश्चतुर्मुख इवापरः ॥१९१॥

नदी सरस्वती पुण्या सुलभा जगति स्थिता। दुर्लभा सा कुरुक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा ॥२३६॥

ततस्तु सा धर्मफलप्रदाभवज्जन्मादिदुःखार्दितचेतसां नृणाम्।

सर्वात्मना पुण्यफला सरस्वती सेव्या प्रयत्नात्पुरुषैर्महानदी ॥४७६॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे नन्दा प्राची माहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥

गरुड़पुराणम्—

प्राची सरस्वती पुण्या सप्त सारस्वतम् परम्।

इति गारुड़े महापुराणे सर्वतीर्थमहात्म्यं नामैकाशीतितमोऽध्यायः।

उसके अनन्तर उन देवताओं को त्याग कर सरस्वती देवी नदी भाव को प्राप्त हो गई ॥१८८॥

उस काल में महाभागा सरस्वती देवताओं के देखते हुए ही अपने देव शरीर को भूमि में घुसा कर पुनः पाकर वृक्ष के नीचे से प्रकट हुई।

इसी स्थान पर साक्षात् विष्णु रूप वह वृक्ष सब देवताओं द्वारा वन्दित (पूजित) तथा द्विजों के द्वारा नित्य ही सेवा करने योग्य और फल के कारण अति उन्नति पर है या प्रभावशाली है ॥१९१॥

अनेक शाखाओं के द्वारा फैला हुआ चतुर्मुख दूसरे ब्रह्मा जी के समान है। पवित्र सरस्वती नदी जगत् में स्थित होने से जैसे सुलभ हैं। वैसे वह कुरुक्षेत्र प्रभास क्षेत्र तथा पुष्कर में दुर्लभ भी हैं ॥२३६॥

तस्मात् (इस करके) जन्म मरण जरा आदि दुःखों से पीड़ित चित वाले मनुष्यों को वह धर्म का फल प्रदान करने वाली होवे। इससे वह पुण्य रूप फल देने वाली सरस्वती महानदी सत्पुरुषों के द्वारा सब प्रकार करके प्रयत्न से सेवन करने योग्य है ॥४२६॥

इस प्रकार पद्मपुराण के प्रथम सृष्टि खंड में नन्दा प्राची माहात्म्य में अठारवें अध्याय में कहा है।

गरुड़पुराण में।

सब तीर्थों में प्राची (पूर्ववाहिनी) सरस्वती पवित्र है। सप्त सारस्वत तीर्थ भी परम श्रेष्ठ है।

इस प्रकार गरुड़पुराण में सब तीर्थों का महात्म्य नाम इक्यासीवें अध्याय में कहा है।

इयं पश्चिमवाहनी सरस्वत्येव वक्रगत्या गच्छन्ती यत्र स्थाने प्राङ्मुखी भवति। तत्रास्याः प्राचीति संज्ञा जायते। न तु काचिदन्या। यथा चोक्तम्।

वामनपुराणम्---

तस्यैव मध्ये वहुपुण्ययुक्तं पृथूदकं पापहरं शिवं च।
पुण्या नदी प्राङ्मुखतां प्रयाता जलौघयुक्तस्य सुता जलाढ्या।
पूर्वंनदीयं प्रपितामहेन सृष्टा समं भूतगणैः समस्तैः॥
(वामनपुराणे द्वाविंशाध्याये ४४,४५ श्लोके)

प्राची संज्ञा उत्तरवाहनी गङ्गावदस्ति यथा—

पद्मपुराणे—

गङ्गोवाच—

अहं चोदङ्मुखी पुण्या त्वं तु प्राची सरस्वती। (पद्म पुराण सृ० खं० अ० १८,१८ श्लोके)

अनेन प्रमाणेन कुरुक्षेत्रान्तर्गता सरस्वत्येव मुख्यास्ति। नान्या कदाचन। ननु केचिल्लोकास्तां प्रयागे मन्यन्ते। तन्न यथार्थम्। यथा नारदीयपुराणे महाभारते च प्रयागमाहात्म्ये कथितम्।

यह पश्चिम वाहिनी सरस्वती ही वक्रगति (तिरछीगति) से गमन करती हुई जिस स्थान पर घूमकर पूर्ववाहिनी होती है। वहां पर इसकी प्राची यह संज्ञा (नाम) हो जाता है। नकि प्राची (पूर्ववाहिनी) सरस्वती कोई अन्य (दूसरी) है। जैसे वामनपुराण में कहा है।

वामनपुराण में।

उस कुरुक्षेत्र के ही मध्य में बहुत पुण्य (शुभ अदृष्ट) युक्त पृथूदक (पेहोवा) पापों को हरने तथा कल्याण करने वाला है। पवित्र सरस्वती नदी यहां पर पूर्वाभिमुख हुई। जो जल समूह युक्त ब्रह्म सरोवर की पुत्री तथा जल से भरी हुई है। पूर्वकाल में प्रपितामह ब्रह्मा जी ने यह नदी समस्त भूत गणों के साथ ही रची थी ॥४४।४५॥

पद्मपुराण में।

प्राची संज्ञा उत्तर वाहिनी गङ्गा के समान है जैसे पद्म पुराण में स्पष्ट कहा है। श्री गङ्गा जी बोली - मैं उत्तरमुखी (उत्तर वाहिनी) अधिक पवित्र हूं। तू सरस्वती प्राङ्मुखी (पूर्व वाहिनी) अधिक पवित्र है। यह पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड के अठारहवें अध्याय में लिखा है।

ऐसे इस प्रमाण से कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत बहने वाली सरस्वती ही मुख्य है। अन्य (दूसरी) कदाचित् नहीं। कई लोग उसको प्रयाग में मानते हैं। सो यथार्थ (ठीक) नहीं। वह कैसे। जैसे नारदीय पुराण के कुरुक्षेत्र माहात्म्य में कहा है।

और महाभारत के प्रमाण

पापरूपपशूनां हि ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ।
सितासिता तु या धारा सरस्वत्या विदर्भिता ॥२३॥

अत्र समासे प्रथमाया विभक्त्या एकवचनेन गंगायमुनयोः संमिश्रिता धारैव सूचिता । न हि तु द्विवचनं भवितुमर्हति यथा, अग्रे।

सितासिते तु यो मज्जेदपि पापशतावृतः ॥६०॥

उपस्पृशति यो माघे मकरार्के सितासिते ॥६३॥

यमुनागंगया सार्धं संगता लोकपावनी ॥५१॥
गंगायमुनयोर्मध्ये पृथिव्यां यत्परं स्मृतम् ।

महाभारतेऽपि—

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता । यमुना गङ्गया सार्धं संगता लोकपावनी ॥७४॥
(इति महा भा० व० प० अ० ८५ श्लोक ७४)

केवलं लोकपावनी यमुनैव गंगया सह संगतेति दर्शिता । अत्र पूर्वोक्तश्लोके

सिता (गंगा) अरु असिता (यमुना) की जो धारा है। वह सरस्वती के गुणों से ग्रंथित है। उसको पूर्व काल में ब्रह्मा जी ने पापरूपी पशुओं के नाश के लिए ही निर्माण किया था ॥२३॥

यहां समास में प्रथमा विभक्ति के एक वचन से गंगा अरु यमुना की संमिलित धार ही सूचित होती है। नहीं तो द्विवचन होने योग्य है। जैसे आगे। जो पुरुष शत (सौ) पापों से लिप्त होने पर भी सिता (गंगा) अरु असिता (यमुना) के मध्य में मज्जन (स्नान) करे तो मुक्त हो।

यो पुरुष माघमास में सूर्य के मकरराशि में आने पर सिता (गंगा) अरु असिता (यमुना) को आचमन रूप से सम्यक् स्पर्श करता है ॥६०-६३॥

लोकपावनी (लोकों को पवित्र करने वाली) यमुना ही गंगा के साथ यहां पर संगम को प्राप्त हुई है पृथिवी पर गंगा अरु यमुना के मध्य में जो परंश्रेष्ठ तीर्थ कहा गया है म० भा० में भी सूर्य भगवान् की पुत्री तीनों लोकों में विख्यात लोक को पवित्र करने वाली

---

१. गुणैः ग्रन्थिता ।

यथा शब्दकल्पद्रुमे, स्वादुत्वम्, पूतत्वम्, सर्वरुजापहत्वम्, रुच्यत्वम्,
दीपनत्वम्, पथ्यत्वम्, देहकान्तिकरत्वम्, लघुत्वम्, इति राजनिघण्टुः ।

यथा (जैसे) शब्दकल्पद्रुम कोश में कहे हैं। स्वादिष्ट पवित्र, सब रोगों को हरने वाला रुचि वर्धक या मनोहर। अग्नि को दीपन करने वाला, रोगी के लिए हितकर, देह कान्ति उत्पन्न कर्ता, पचन में लघु— इन धर्मों वाला है। इति राज निघण्टु ।

सरस्वत्या वर्णनं नास्ति । अतः स प्रयागे नेति प्रमाणैः सिद्धम् । प्रयागे गङ्गा यमुनयो-र्मिश्रित धारायां केवलं सरस्वत्याः सदृशं गुणाख्य प्रादुर्भवन्ति । अत एवोपमाऽलङ्कारेण तस्याः सरस्वती नामास्ति । यथा चन्द्रमुखी । सिंहोऽयं पुरुषः । वस्तुतः कुरुक्षेत्रे ह्येव मुख्यः सरस्वती चास्तीति युक्त्यापि सिद्धम् ।

ननु प्रयागस्य यत् त्रिवेणी नामास्ति तत्कथम् । इति चेत् । तदित्थम् ।
गंगा तु प्रथमा वेणी द्वितीया यमुना स्मृता । तृतीया संगमे विद्यान्मिश्रितैव सरस्वती ।

यथा शिवस्वरोदये क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः ।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया यस्य नाडी द्वयं वहेत् ॥१२४॥

न तु सुषुम्नामुख्या नासिकायामस्ति । यथा—

कठश्रुतौ—

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वङ्न्या उत्क्रमणे भवन्ति । इति (क० उ० २,३,१६)

यमुना देवी जहां गंगा के साथ संगम को प्राप्त हुई वह प्रयाग है जहां केवल लोकपावनी यमुना ही गंगा के साथ संगम को प्राप्त हुई। यह दिखाया गया है। यहां उपर्युक्त श्लोकों में सरस्वती का कोई वर्णन नहीं है। अतः (इस लिए) वह प्रयाग में नहीं है। यह सिद्ध हुआ। प्रयाग में केवल गंगा यमुना की मिश्रित धारा में सरस्वती के सदृश गुण ही प्रादुभाव होते हैं इसी लिए उपमा अलङ्कार से उसका सरस्वती नाम है। जैसे चन्द्रमुखी (चन्द्रमा के समान आह्लाद जनक मुख वाली) और वह पुरुष सिंह है (सिंह के समान निर्भय या वीर है) वास्तव में मुख्य सरस्वती कुरुक्षेत्र में ही है यह बात युक्ति से भी सिद्ध है।

शंका—प्रयाग का जो त्रिवेणी नाम है सो कैसे है। यदि ऐसा भाव है तब उसका समाधान ऐसे है गंगा ही प्रथम वेणी (जलधार) है। दूसरी वेणी (जल की धार वा प्रवाह) यमुना है। तीसरी वेणी (धार वा प्रवाह) संगम में मिली हुई जो धारा है। वही मिश्र-धारा या सरस्वती जानने योग्य है। जैसे शिवस्वरोदय में कहा है। क्षणमात्र वाम नासिका से तथा क्षणमात्र दक्षिण नासिका (दाहिनी नासिका) से जब प्राण वहता है। अर्थात् जिसकी दो नाड़ियां (इडा पिंगला मिल कर वहती है) वही सुषुम्ना जानने योग्य है ॥१२४॥

न कि मुख्य सुषुम्ना नासिका में है। जैसे कठ उपनिषद् में कहा है। एक सौ एक नाड़ी हृदय देश से निकलती हैं। उन में से मूर्धा (ब्रह्मरन्ध्र) तक जाने वाली एक ही है। उसके द्वारा गमन करने वाले योगी ही अमर होते हैं। शेषों से गए हुए सब पुनरागमन को प्राप्त होते हैं।

एवं प्रयागराजे मुख्या सरस्वती नदी नास्ति

ननु लोकाचारं जनश्रुतिं चाश्रित्य प्रयागराजे गङ्गायमुनयोः सार्धं तृतीया वेणी अन्यत्राऽदृश्यापि त्रिवेणीसंगमे साक्षात् सरस्वती नदी विद्यत इति भारते वर्षे प्रायोवादः। अत्र च श्रद्धालवो नारदीयपुराणे प्रयागमाहात्म्ये वर्णितं श्लोकार्धं प्रमाणमुदाहरन्ति यथा—

सितासिता तु या धारा सरस्वत्या विदर्भिता ॥

सिताधारा गङ्गा नद्याः सा च असितया कृष्णवर्णया यमुनानद्या धारया संगता सितासितात्वं संपद्यते। सा च सितासिता गङ्गायमुनयोर्धारा सरस्वत्या नद्या विदर्भिता ग्रथिता सती प्रयागराजे त्रिवेणीत्वं उपपद्यते। तस्मात् प्रयागराजे सरस्वतीनद्या अस्तित्वं प्रमाणसिद्धमिति। अत एव तत्रैव—

गङ्गा तु प्रथमा वेणी द्वितीया यमुना स्मृता।
तृतीया संगमे विद्यान्मिश्रितैव सरस्वती ॥

इदं प्रत्यक्षं प्रमाणं प्रयागराजे सरस्वतीनद्या अस्तित्वमस्ति। यत्र तत्र प्राची सरस्वती माहात्म्यदर्शनादपि प्राच्यां दिशि प्रयागराजे सरस्वत्या नद्या अस्तित्वं प्रमाणसिद्धमिति

ऐसे प्रयागराज में मुख्य सरस्वती नदी नहीं है।

शंका—लोकाचार जनश्रुति (कहावत) को आश्रय करके गङ्गा यमुना के साथ तीसरी वेणी और स्थान में अदृश्य होती हुई भी त्रिवेणी संगम में साक्षात् सरस्वती नदी विद्यमान है। इस प्रकार भारतवर्ष में प्रायः वर्णन किया जाता है और इसमें श्रद्धालु लोक नारदीय पुराण के प्रयाग माहात्म्य में वर्णित पूर्वोक्त आधे श्लोक का प्रमाण उद्धृत करते हैं। जैसे "सितासिता की जो धारा है। वह सरस्वती से ग्रन्थित है। अर्थात्—जो सिता धारा (श्वेत धारा) गङ्गा नदी की है। वह असिता कृष्णवर्णा यमुना नदी की धारा के साथ संगम को प्राप्त हो कर सितासिता संज्ञा को प्राप्त होती है और वह सितासिता नाम गङ्गा यमुना की धारा सरस्वती नदी के साथ विदर्भित (ग्रन्थित) हुई प्रयागराज में त्रिवेणीत्व को प्राप्त होती है। इसी से प्रयागराज में सरस्वती नदी का अस्तित्व (सत्ता) प्रमाणसिद्ध है। ऐसा कहते हैं। इस से ही वहां पर—

गङ्गा ही प्रथमा वेणी (धारा) दूसरी वेणी यमुना कही है। तीसरी वेणी संगम में मिश्रित (मिली हुई) धारा ही सरस्वती जानें अर्थात् जानने योग है। यह प्रयागराज में सरस्वती नदी की सत्ता का प्रत्यक्षप्र माण है।

जहां तहां प्राची सरस्वती माहात्म्य के दर्शन (देखने) से भी पूर्व दिशा में स्थित प्रयाग राज में सरस्वती नदी का अस्तित्व (सत्ता) प्रमाण सिद्ध है। ऐसा यदि मानें तो—

चेत्। अत्र वयं ब्रूमः। सरस्वत्या नद्याः स्वोद्गमस्थानात् प्लक्षप्रस्रवणाद् निर्गत्य दृषद्वत्या घर्घरा नाम्ना प्रसिद्धया नद्या संगमे ब्रह्मावर्त (कुरुक्षेत्र) प्रदेशे प्रवहन्त्याः राजस्थानीय-पुष्करतीर्थं चाऽर्बुदतीर्थं (आबू) च दृश्यादृश्यगतितया पावयन्त्याः पश्चिमसमुद्रे प्रभास-क्षेत्रसमीपेऽन्तर्भवन्त्या यथार्थज्ञानाऽभावादेव जनश्रुतिमात्रश्रद्धोपनतानां तथाविध-विश्वासोपपत्ते ।

'प्रत्यङ्मुखी खलु सरस्वतीप्रवहति' (ताण्डय ब्राह्मणे (२५,१०,१२)।

'सरस्वतीयुता नद्यो नर्मदापश्चिमानुगाः' (हा १,७), 'प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभा' (वामनपुराणे ३२,२), 'सरः संनिहितं प्लाव्य पश्चिमां प्रस्थिता दिशम्' (नारदीयपुराणे उ० भा० ६४,१९) इत्येतैः प्रमाणैः, 'सरस्वती नदी निर्णयः' इत्याख्येऽस्मिन् ग्रन्थे प्रस्तुतैरनेकैः प्रमाणैश्चान्यैः सरस्वत्या नद्याः पश्चिमदेशगामित्वस्यैव प्रसिद्धेः पूर्वदेशगामित्वाऽप्रसिद्धेश्च तथा प्राची सरस्वती माहात्म्ये दर्शितापि सरस्वती नदी पूर्वोक्त-प्राच्यर्थ-प्रभावेसा प्राग्देशे प्रयागराजे न प्रवहति तथा च स्कान्दे महापुराणे सप्तमे प्रभासखण्डे दृश्यादृश्यगतिवर्णने प्लक्षप्रस्रवणादारभ्य प्रभासक्षेत्रं पर्यन्तं यावन्ति तीर्थानि वर्णितानि सन्ति। तेषु प्रयागराजस्य नामाभावश्च

समाधान, इसमें हम कहते हैं। सरस्वती नदी का अपने उद्गम स्थान प्लक्ष प्रस्रवण से निकल कर दृषद्वती जो घघर नाम से विख्यात नदी है। उसके संगम ब्रह्मावर्त (कुरुक्षेत्र) प्रदेश में विशेष रूप से बहती हुई राजस्थान के पुष्करतीर्थ और आबुतीर्थ को दृश्य और अदृश्य गति से पवित्र करती हुई पश्चिमी समुद्र प्रभास क्षेत्र के समीप में अन्तर्भाव (संगम) को प्राप्त हुई। उसके यथार्थज्ञान के अभाव से ही जनश्रुति (लोकाफवाह) मात्र में श्रद्धा रखने वाले पुरुषों को भी तैसे ही विश्वास की प्राप्ति से अर्थात् प्राप्ति होती है।

"सरस्वती निश्चय ही पश्चिम वाहिनी है"। ऐसा ताण्डयब्राह्मण में कहा है (२५,१०,१२)।

"सरस्वती से युक्त नर्मदा आदि नदियां पश्चिम वाहिनी हैं। यह हारीत में लिखा है (१,७)," "शुभ सरस्वती नदी दृश्य और अदृश्य गति वाली पश्चिम दिशा को गई। ऐसा वामन पु० (अ० ३२,२) में कहा है। "संनिहित सर को प्लावन (भर) करके पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया। ऐसे नारदीय पुराण के उत्तर भाग में कहा है (६४,१९) इस प्रकार इन प्रमाणों से "सरस्वती नदी निर्णयः" इस नाम से प्रसिद्ध इस ग्रन्थ में प्रस्तुत (उपस्थित) और भी अनेक प्रमाणों के द्वारा सरस्वती नदी के पश्चिम देश में गमन (जाने) की प्रकर्षसिद्धि से और पूर्व देश में गमन (जाने) की प्रकर्ष असिद्धि से तथा (तैसे) प्राची सरस्वती माहात्म्य में दिखाई गई भी सरस्वती नदी पूर्वोक्त प्राची शब्द के अर्थ प्रभाव द्वारा पूर्व देशस्थ प्रयागराज में नहीं बहती और तैसे ही स्कन्द महापुराण के सप्तम प्रभास खण्ड में दृश्य और अदृश्य गति वर्णन में प्लक्ष प्रस्रवण से आरंभ कर के जितना प्रभास क्षेत्र है। उतने पर्यन्त जितने भी तीर्थ वर्णित हैं। उन में प्रयागराज का नाम नहीं है और

महाभारते वलरामतीर्थयात्राप्रसंगे सप्तसारस्वततीर्थमाहात्म्ये वर्णिता या मुख्या सरस्वती नदी यज्ञकर्तृभिः समर्थैर्यजमानैर्यत्र यत्र समाहूता। सा तत्र तत्र गता। तेषां तीर्थस्थानानां नामानि तस्मिन् महाभारते शल्यपर्वणि वर्णितानि सन्ति। परन्तु तेष्वपि प्रयागराजस्य नामाभावः। इत्येतैर्वहुभिर्हेतुभिः प्रयागराजे सरस्वत्या महानद्या गमनाभावात्तत्र प्रयागे सा मुख्या सरस्वती नदी नास्तीति सिद्धं विशेषेण।

विश्वामित्रेण सरस्वत्यै शापदानम्

सूत उवाच—

ततः प्रभृतिच्छिद्राणि विश्वामित्रो निरीक्षयन्। वसिष्ठस्य वधार्थाय संस्थितो द्विजसत्तमाः ॥१॥

आत्मशक्तिप्रभावेण मशकस्य यथा गजः। अन्यस्मिन्नहनि प्राप्ते विश्वमित्रेण सा नदी ॥२॥

समाहूता समायाता द्रुतं सा स्त्री स्वरूपिणी। अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा आदेशो दीयतां मम।
ब्रह्मर्षे येन कार्येण समाहूतास्मि सांप्रतम् ॥३॥

विश्वामित्र उवाच—

यदा निमज्जनं कुर्यात्तव तोये महानदि। परमं वेगमास्थाय तदा नय ममांतिकम् ॥४॥

महाभारत के वलरामतीर्थ यात्रा के प्रसंग में सप्त सारस्वत तीर्थ के माहात्म्य में वर्णन की गई जो मुख्य सरस्वती नदी है। वह यज्ञ कर्ता समर्थ यजमानों के द्वारा जहां जहां सम्यक् आवाहन की गई थी। वहां वहां गई। उन तीर्थ स्थानों के नाम उसी महाभारत के शल्य-पर्व में वर्णित हैं। परन्तु उनमें भी प्रयागराज के नाम का अभाव है। इस प्रकार इन वहुत से कारणों के द्वारा प्रयागराज में सरस्वती महानदी के गमन का अभाव होने से अर्थात् वहां न जाने से उस प्रयागराज में वह मुख्य सरस्वती नदी नहीं हैं। यह विशेपरूप से सिद्ध हुआ।

विश्वामित्र के द्वारा सरस्वती के लिये शाप देना

सूत जी वोले— हे ऋषियो! तव से विश्वामित्र मुनि अपनी शक्ति के प्रभाव से वसिष्ठ मुनि का वध करने के लिए अवकाश देखते हुए ऐसे स्थित रहे जैसे हस्ति (हाथी) मशक (मच्छर) का वध करने की इच्छा से अवकाश देखता हो अन्य (दूसरे) दिन के आने पर विश्वामित्र मुनि ने उस नदी का आवाहन किया ॥१-२॥

तव वह स्त्री स्वरूप धारण किये हुए शीघ्र वहां आई। अर्थात् प्रादुर्भाव हुई। और अञ्जली वांध कर वोली हे ब्रह्मऋषि! इस समय आपने जिस कार्य के निमित्त मेरा आवाहन किया है। सो मेरे प्रति आज्ञा दीजिये ॥३॥

विश्वामित्र मुनि वोले— हे महानदी जिस काल में मुनि वसिष्ठ तुम्हारे जल में डुवकी लगावें। उस समय परम वेग को धारण करके उसे वहा कर मेरे समीप ले आओ ॥४॥

पूर्णश्रोत्रं जलेनैव व्याकुलांगं व्यवस्थितम् । निहन्मि येन शीघ्रं च नान्यच्छिद्रं प्रलक्षये ॥५॥

एवमुक्ता तदा तेन विश्वामित्रेण सा नदी । वित्रस्ता भयसंयुक्ता शापाद्वाक्यमुवाच सा ॥६॥

नाहं द्रोहं करिष्यामि वसिष्ठस्य महात्मनः । ब्रह्मर्षे न च ते युक्तं कर्तुं वै ब्रह्मणो वधम् ॥७॥

यदि त्वं ब्रह्मणा प्रोक्तो ब्रह्मर्षिः स्वयमेव तु । कामान्नायं वसिष्ठस्तु तस्मात्कोपं परित्यज ॥८॥

मनसापि वधं यस्तु ब्राह्मणस्य विचिन्तयेत् । तप्तंकृच्छ्रेण मुच्येत मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥९॥

वाचया प्रवदेद्यस्तु ब्राह्मणस्य वधं नरः । चांद्रायणेन शुद्धिः स्यात्तस्य देवोऽब्रवीदिदम् ॥१०॥

तस्मान्नाहं करिष्यामि तव वाक्यं कथंचन । वसिष्ठार्थं तु यत्प्रोक्तं कुरु यत्तव रोचते ॥११॥

तच्छ्रुत्वा कुपितस्तस्या विश्वामित्रो द्विजोत्तमः । शशाप तां नदीं श्रेष्ठां यत्तद् वक्ष्यामि श्रूयताम् ॥

यस्मात्पापे वचो मह्यं न कृतं कुनदि त्वया । तस्माद्रक्तप्रवाहस्ते जलजोऽयं भविष्यति ॥१३॥

जल से जिसके कान भर गए हों तथा व्याकुल शरीर (शीत से कांपते हुए) खड़े हों। जिस प्रकार मैं उसे शीघ्र मार दूं और अवकाश मैं नहीं देखता हूं ॥५॥

जिस समय विश्वामित्र ने ऐसा कहा। तब वह नदी शाप के भय-संयुक्त डरी हुई बोली। हे ब्रह्मऋषि ! मैं महात्मा वसिष्ठ के साथ द्रोह नहीं करूंगी और तुम्हारे लिए भी ब्राह्मण का वध करने योग्य नहीं है ॥६-७॥

यदि तुम को ब्रह्मा जी ने स्वयं ही ब्रह्मऋषि कह दिया और वसिष्ठ जी ने स्वेच्छा या हठ से नहीं कहा तो पुनः वसिष्ठ जी से यह कामना किस लिए करते हो। इस कारण कोप (क्रोध) को परित्याग करो ॥८॥

स्वायंभुव मनु जी ने भी कहा है कि यदि कोई मनुष्य मन से भी ब्राह्मण को मारने का चिन्तन करे तो तप्तकृच्छ्र व्रत के द्वारा मुक्त होवे ॥९॥

और जो पुरुष वाणी से ब्राह्मण के वध करने को कहे तो चान्द्रायन व्रत करने से उसकी शुद्धि हो। यह बात देव (परमात्मा या ब्रह्मा) ने कही है ॥१०॥

उन पूर्वोक्त कारण से तुम्हारे कथन को जो वसिष्ठ मुनि को वहा कर लाने के लिए कहा था उसको मैं किसी प्रकार नहीं करूंगी। अब तुम्हारी जो रुचि हो सो करो ॥११॥

हे ऋषियो ! उस सरस्वती के उस वचन को सुनकर कुपित हुए विश्वामित्र ने उस श्रेष्ठ नदी को शाप दिया। उसको मैं कहूंगा। सुनो ॥१२॥

हे कुत्सित-नदी, हे पापिनी ! जिस कारण से तुमने मेरे वचन का पालन नहीं किया। उसी से यह तेरा जल प्रवाह रक्तभाव को प्राप्त हो जाएगा ॥१३॥

एवमुक्त्वा करात्तोयं सप्तकृत्वाराभिमंत्रितम् । चिक्षेपाथ जले तस्याः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥१४॥
ततश्च तत्क्षणाज्जातं तत्तोयं रुधिरं द्विजाः । सारस्वतं सुपुण्यं च यदासीच्छंखसंनिभम् ॥१५॥
एतस्मिनन्नन्तरे प्राप्ता भूतप्रेतनिशाचराः । पीत्वा पीत्वा प्रनृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च ॥१६॥
ये तत्र तापसाः केचित्तटे तस्या व्यवस्थिताः । ते सर्वेऽपि च तां त्यक्त्वा दूरदेशं समाश्रिताः ॥१७॥
वसिष्ठोऽपि मुनिश्रेष्ठो जगामार्बुदपर्वतम् । विश्वामित्रस्तु विप्रर्षिश्चमत्कारपुरं गतः ॥१९॥
एतद्वः सर्वमाख्यातं यथा सारस्वतं जलम् । रुधिरत्वमनुप्राप्तं विश्वामित्रस्य शापतः ॥२०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे एकाशीतिसाहस्रयां सं० षष्ठेना० खं० हाटकक्षेत्रमाहात्म्ये सरस्वत्यै शापो नाम १७२ द्विसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।

मुनिना वसिष्ठेन तन्निवृत्तिः

ऋषय ऊचुः—

अहो बत महाश्चर्यं विश्वामित्रस्य सन्मुनेः । मन्त्रप्रभावतो येन तत्तोयं रुधिरीकृतम् ॥१॥

ऐसे कहकर क्रोध से लाल नेत्र करके और हाथ में जल लेकर उसको सात बार मंत्र से अभिमंत्रित करके पुनः उसी नदी के जल प्रवाह में फेंक दिया ॥१४॥

हे द्विजो ! उसके अनन्तर उसका जल उसी क्षण में रुधिर (खून) हो गया। उसके शाप से पूर्व जो सरस्वती नदी का जल अधिक पवित्र तथा शंख के समान स्वच्छ था इसी समय के भीतर वहां पर रात्री में विचरने वाले भूत प्रेत आदि आ गए और उस रक्त भूत जल को पी पी कर नाचने गाने तथा हंसने लगे ॥१५-१६॥

और वहां उसके तीर पर जो कोई तपस्वी वास करते थे। उन सब ने ही उस नदी को त्याग कर दूरदेश को आश्रय बनाया ॥१७॥

मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी भी आबुपर्वत पर चले गए। पुनः विश्वामित्र ब्रह्मऋषि भी चत्मकार पुर को चले गए ॥१९॥

जैसे सरस्वती नदी का जल विश्वामित्र के शाप से रक्तभाव को प्राप्त हुआ। यह सब मैंने आपके प्रति कथन कर दिया ॥२०॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण में इक्यासी हजारवी संहिता के छेवें नागर खंड में हाटक क्षेत्र के माहात्म्य में सरस्वती नदी के लिए शाप नाम १७२ अध्याय समाप्त हुआ ॥

वसिष्ठ मुनि के द्वारा उस शाप की निवृत्ति

ऋषि बोले—अहो विश्वामित्र श्रेष्ठमुनि के प्रति महान् आश्चर्य है, जिसने मन्त्र के प्रभाव से उस नदी का जल रुधिर (रक्त) कर दिया ॥१॥

पूर्णश्रौत्रं जलेनैव व्याकुलांगं व्यवस्थितम् । निहन्मि येन शीघ्रं च नान्यच्छिद्रं प्रलक्षये ॥५॥
एवमुक्ता तदा तेन विश्वामित्रेण सा नदी । वित्रस्ता भयसंयुक्ता शापाद्वाक्यमुवाच सा ॥६॥
नाहं द्रोहं करिष्यामि वसिष्ठस्य महात्मनः । ब्रह्मर्षे न च ते युक्तं कर्तुं वै ब्रह्मणो वधम् ॥७॥
यदि त्वं ब्रह्मणा प्रोक्तो ब्रह्मर्षिः स्वयमेव तु । कामान्नायं वसिष्ठस्तु तस्मात्कोपं परित्यज ॥८॥
मनसापि वधं यस्तु ब्राह्मणस्य विचिन्तयेत् । तप्तकृच्छ्रेण मुच्येत मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥९॥
वाचया प्रवदेद्यस्तु ब्राह्मणस्य वधं नरः । चांद्रायणेन शुद्धिः स्यात्तस्य देवोऽब्रवीदिदम् ॥१०॥
तस्मान्नाहं करिष्यामि तव वाक्यं कथंचन । वसिष्ठार्थं तु यत्प्रोक्तं कुरु यत्तव रोचते ॥११॥
तच्छ्रुत्वा कुपितस्तस्या विश्वामित्रो द्विजोत्तमः । शशाप तां नदीं श्रेष्ठां यत्तद् वक्ष्यामि श्रूयताम् ॥
यस्मात्पापे वचो मह्यं न कृतं कुनदि त्वया । तस्माद्रक्तप्रवाहस्ते जलजोऽयं भविष्यति ॥१३॥

जल से जिसके कान भर गए हों तथा व्याकुल शरीर (शीत से कांपते हुए) खड़े हों। जिस प्रकार मैं उसे शीघ्र मार दूं और अवकाश मैं नहीं देखता हूं ॥५॥

जिस समय विश्वामित्र ने ऐसा कहा। तब वह नदी शाप के भय-संयुक्त डरी हुई बोली। हे ब्रह्मऋषि ! मैं महात्मा वसिष्ठ के साथ द्रोह नहीं करूंगी और तुम्हारे लिए भी ब्राह्मण का वध करने योग्य नहीं है ॥६-७॥

यदि तुम को ब्रह्मा जी ने स्वयं ही ब्रह्मऋषि कह दिया और वसिष्ठ जी ने स्वेच्छा या हठ से नहीं कहा तो पुनः वसिष्ठ जी से यह कामना किस लिए करते हो। इस कारण कोप (क्रोध) को परित्याग करो ॥८॥

स्वायंभुव मनु जी ने भी कहा है कि यदि कोई मनुष्य मन से भी ब्राह्मण को मारने का चिन्तन करे तो तप्तकृच्छ्र व्रत के द्वारा मुक्त होवे ॥९॥

और जो पुरुष वाणी से ब्राह्मण के वध करने को कहे तो चान्द्रायन व्रत करने से उसकी शुद्धि हो। यह बात देव (परमात्मा या ब्रह्मा) ने कही है ॥१०॥

उस पूर्वोक्त कारण से तुम्हारे कथन को जो वसिष्ठ मुनि को बहा कर लाने के लिए कहा था उसको मैं किसी प्रकार नहीं करूंगी। अब तुम्हारी जो रुचि हो सो करो ॥११॥

हे ऋषियो ! उस सरस्वती के उस वचन को सुनकर कुपित हुए विश्वामित्र ने उस श्रेष्ठ नदी को शाप दिया। उसको मैं कहूंगा। सुनो ॥१२॥

हे कुत्सित नदी, हे पापिनी ! जिस कारण से तुमने मेरे वचन का पालन नहीं किया। इसी से यह तेरा जल प्रवाह रक्तभाव को प्राप्त हो जाएगा ॥१३॥

एवमुक्त्वा करात्तोयं सप्तकृत्वाभिमंत्रितम् । चिक्षेपाथ जले तस्याः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥१४॥
ततश्च तत्क्षणाज्जातं तत्तोयं रुधिरं द्विजाः । सारस्वतं सुपुण्यं च यदासीच्छंखसंनिभम् ॥१५॥
एतस्मिनन्तरे प्राप्ता भूतप्रेतनिशाचराः । पीत्वा पीत्वा प्रनृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च ॥१६॥
ये तत्र तापसाः केचित्तटे तस्या व्यवस्थिताः । ते सर्वेऽपि च तां त्यक्त्वा दूरदेशं समाश्रिताः ॥१७॥
वसिष्ठोऽपि मुनिश्रेष्ठो जगामार्बुदपर्वतम् । विश्वामित्रस्तु विप्रर्षिश्चमत्कारपुरं गतः ॥१९॥
एतद्वः सर्वमाख्यातं यथा सारस्वतं जलम् । रुधिरत्वमनुप्राप्तं विश्वामित्रस्य शापतः ॥२०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे एकाशीतिसाहस्रयां सं० षष्ठेना० खं० हाटकक्षेत्रमाहात्म्ये सरस्वत्यै शापो नाम १७२ द्विसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।

मुनिना वसिष्ठेन तन्निवृत्तिः

ऋषय ऊचुः—

अहो बत महाश्चर्यं विश्वामित्रस्य सन्मुनेः । मन्त्रप्रभावतो येन तत्तोयं रुधिरीकृतम् ॥१॥

ऐसे कहकर क्रोध से लाल नेत्र करके और हाथ में जल लेकर उसको सात बार मंत्र से अभिमंत्रित करके पुनः उसी नदी के जल प्रवाह में फेंक दिया ॥१४॥

हे द्विजो ! उसके अनन्तर उसका जल उसी क्षण में रुधिर (खून) हो गया। उसके शाप से पूर्व जो सरस्वती नदी का जल अधिक पवित्र तथा शंख के समान स्वच्छ था इसी समय के भीतर वहां पर रात्री में विचरने वाले भूत प्रेत आदि आ गए और उस रक्त भूत जल को पी पी कर नाचने गाने तथा हंसने लगे ॥१५-१६॥

और वहां उसके तीर पर जो कोई तपस्वी वास करते थे। उन सब ने ही उस नदी को त्याग कर दूरदेश को आश्रय बनाया ॥१७॥

मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी भी आबुपर्वत पर चले गए। पुनः विश्वामित्र ब्रह्मऋषि भी चत्मकार पुर को चले गए ॥१९॥

जैसे सरस्वती नदी का जल विश्वामित्र के शाप से रक्तभाव को प्राप्त हुआ। यह सब मैंने आपके प्रति कथन कर दिया ॥२०॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण में इक्यासी हजारवी संहिता के छेवें नागर खंड में हाटक क्षेत्र के माहात्म्य में सरस्वती नदी के लिए शाप नाम १७२ अध्याय समाप्त हुआ ॥

वसिष्ठ मुनि के द्वारा उस शाप की निवृत्ति

ऋषि बोले—अहो विश्वामित्र श्रेष्ठमुनि के प्रति महान् आश्चर्य है, जिसने मन्त्र के प्रभाव से उस नदी का जल रुधिर (रक्त) कर दिया ॥१॥

ततः प्रभृति संप्राप्तं कथं तोयं प्रकीर्तय। सरस्वत्या महाभाग सर्वं विस्तरतो वद ॥२॥

सूत उवाच—

बहुकालं प्रवाहः स सरस्वत्या द्विजोत्तमाः। महान् रक्तमयो जातो भूतराक्षससेवितः ॥३॥

कस्याचित्त्वथ कालस्य वसिष्ठो मुनिसत्तमः। अर्बुदस्थस्तया प्रोक्तो दीनया दुःखयुक्तया ॥४॥

तवार्थाय मुने शप्ता विश्वामित्रेण कोपतः। रुधिरौघवहा जाता तपस्विजनवर्जिता ॥५॥

तस्मात्कुरु प्रसादं मे यथा स्यात्सलिलं पुनः। प्रवाहे मम विप्रेन्द्र प्रयाति रुधिरं क्षयम् ॥६॥

त्रैलोक्यकरणे विप्र संक्षये वा स्थितौ हि वा। नाशक्तिर्विद्यते काचित्तव सर्वमुनीश्वर ॥७॥

वसिष्ठ उवाच—

तथा भद्रे करिष्यामि यथा स्यात् सलिलं पुनः। प्रवाहे तव निर्याति सर्वं रक्तं परिक्षयम् ॥८॥

एवमुक्त्वा स विप्रर्षिरवतीर्य धरातले। गतः प्लक्षतरुं यस्मादवतीर्णा सरस्वती ॥९॥

उस दिन से लेकर कहो कि पुनः सरस्वती के प्रवाह में जल कैसे हुआ। हे महाभाग! यह सब विस्तार से कहो ॥२॥

सूत बोले! हे द्विजोत्तम वह सरस्वती महानदी का प्रवाह बहुत काल पर्यन्त भूत तथा राक्षसों से सेवित महान् रक्तरूप को प्राप्त हुआ। यहां काल संख्या नहीं कही। इस लिए नीचे टिप्पणी में लिखी है ॥

पुनः किसी समय के अनन्तर आबु पर्वत पर विराजमान मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी से उस ने दुःखी होकर दीनता से कहा ॥४॥

हे मुनि! तुम्हारे निमित्त ही विश्वामित्र ने कुपित होकर शाप दिया। जिससे मैं रक्तसमूह को बहाने वाली हुई। तथा तपस्विजनों ने भी त्याग दिया ॥५॥

हे विप्रेन्द्र (ब्राह्मणों में श्रेष्ठ) जिस प्रकार पुनः जल हो जाए तथा मेरे प्रवाह में रक्त नाश को प्राप्त हो। ऐसी कृपा मुझ पर करो ॥६॥

हे विप्र हे मुनीश्वर! तीनों लोकों की रचना संहार तथा पालन करने की सब शक्ति तुम्हारे में विद्यमान है। ऐसी कोई नहीं जो न हो ॥७॥

वसिष्ठ जी बोले हे कल्याणि! मैं वैसे ही करूंगा जैसे पुनः जल हो। तुम्हारे प्रवाह में सब रक्त परम नाश हो जाय ॥८॥

ऐसा कहकर वह ब्रह्म ऋषि भूमि तल पर उतर कर उस प्लक्ष वृक्ष के पास गए ॥९॥

---

१. महाभारते। एवं सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता।

अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा। म० भा० श० अ० ४२ श्लोक ३९।

महाभारत में लिखा है। इस प्रकार जब बुद्धिमान विश्वामित्र के द्वारा सरस्वती को शाप दिया गया। तब उसने एक साल भर रक्त मिश्रित जल बहाया। इति महा० भा० श० प० ४२वें अध्याये में ३९वां श्लोक हैं।

समाधिं तत्र संधाय निविष्टो धरणीतले । संभ्रमं परमं गत्वा विश्वामित्रस्य चोपरि ॥१०॥
वारुणेन तु मन्त्रेण वीक्षयन् वसुधातलम् । ततो निर्भिद्य वसुधां भूरितोयं विनिर्गतम् ॥११॥
रन्ध्रद्वयेन विप्रेन्द्रा लोचनाभ्यां निरीक्षणात् । एकस्य सलिलं क्षिप्रं यत्र जाता सरस्वती ॥१२॥
प्लक्षमूले ततस्तस्य वेगेनापहृतं बलात् । तद्रक्तं तेन संपूर्णं ततस्तेन महानदी ॥१३॥
द्वितीयस्तु प्रवाहो यः संभ्रमात्तस्य निर्गतः । सा च सांभ्रमती नाम नदी जाता धरातले ॥१४॥
एवं प्रकृतिमापन्ना भूय एव सरस्वती । यत्पृष्ठोऽस्मि महाभागाः सरस्वत्याः कृते द्विजाः ॥१५॥
एतत्सारस्वतं नाम व्याख्यानमतिबुद्धिदम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि मतिस्तस्य विवर्धते ।
सरस्वत्याः प्रसादेन सत्यमेतन्मयोदितम् ॥१६॥

इति श्रीस्कन्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां षष्ठे नागरखंडे श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सरस्वत्युपाख्याने सरस्वतीशापमोचनसांभ्रमत्युत्पत्तिवृत्तांतवर्णनं नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

जिससे सरस्वती नदी का अवतार हुआ। वहां समाधि लगा कर विश्वामित्र के ऊपर परम संवेग (क्रोध करके) पृथ्वी के ऊपर बैठ गए ॥१०॥

पुनः वरुणदेवता संबधि मन्त्र के उच्चारण सहिततल को देखने लगे। उससे भूमि को भेदन कर बहुत जल निकला ॥११॥

हे विप्रेन्द्रों ! जैसे देखने काल में एक ही अन्तःकरण की वृति दोनों नेत्र गोलकों से दो रूप धार कर निकलती है। ऐसे ही यह प्लक्षमूल से प्रकट हुई सरस्वती वहां शीघ्र एक का ही जल दोनों छिद्रों के द्वारा निकला। उसके पश्चात् उसका वह रक्त उस दूसरी धारा के द्वारा संपूर्ण बलपूर्वक अपहरण कर लिया वा बहा दिया गया। उसके द्वारा महानदी शुद्ध हो गई ॥१३॥

पुनः जो दूसरा प्रवाह उसके संभ्रम (संवेग या भयपूर्वक त्वरा) से निकला। वह पृथिवी पर सांभ्रमती नदी नाम से विख्यात हुई ॥१४॥

इस प्रकार वह सरस्वती नदी पुनः अपने स्वभाव (शुद्धरूप) को प्राप्त हुई।

हे महाभाग द्विजो ! यही सरस्वती के निमित्त करके आप ने मुझ को पूछा है। यह सारस्वत नामक व्याख्यान अति बुद्धि देने वाला है ॥१५॥

जो इसको श्रद्धा से पाठ करे वा सुने तो सरस्वती के प्रसाद से उसकी बुद्धि बढ़ जाती है। यह मैंने सत्य कहा है ॥१६॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण वा इक्यासी सहस्र संहिता के छटे नागर खंड के अन्तर्गत श्रीहाटकेश्वर क्षेत्र माहात्म्य के सरस्वती उपाख्यान में सरस्वती शाप मोचन और सांभ्रमती की उत्पत्ति वृतांत वर्णन नामक एक सौ त्यहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥१७३॥

---

१. शब्दकल्पद्रुमे संभ्रमः पुं० भयादिजन्यत्वरा तत्पर्यायः। संवेगः।

भगवद्-बलरामकृत-सारस्वततीर्थयात्रा-वर्णनम्

[इदानीं बलरामस्य तीर्थयात्राप्रसंगेन सरस्वत्यास्तटवर्तिनां तीर्थानां विलोमेनानुक्रमेण प्रभासक्षेत्रात् सिन्धुसरस्वतीसंगमादारभ्य शारदाया उद्भवं यत् प्लक्षप्रस्रवणं नाम तीर्थं तत्पर्यन्तानि यानि तीर्थानि सन्ति तेषां वर्णनमारभ्यते संक्षेपेण]

वैशम्पायन उवाच—

ततो विभज्यमानेषु बलेषु बलिनां वरः। प्रोवाच भ्रातरं कृष्णं रौहिणेयो महामनाः ॥११॥

तेषामपि महाबाहो साहाय्यं मधुसूदन। क्रियतामिति तत्कृष्णो नास्य चक्रे वचस्तदा ॥१२॥

ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः। तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः ॥१३॥

पूर्वं महाराजयदुप्रवीर ऋत्विक् सुहृद्विप्रगणैश्च सार्धम्।
पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम यत्रोडुराड् यक्ष्मणा क्लिश्यमानः ॥४१॥
विमुक्तशापः पुनराप्य तेजः सर्वं जगद्भासयते नरेन्द्र। (?)
एवं तु तीर्थप्रवरं पृथिव्यां प्रभासनात्तस्य ततः प्रभासः ॥४२॥

"भगवान् बलराम के द्वारा की गई सरस्वती नदी के तीर्थों की यात्रा का वर्णन"

[अब बलराम जी की तीर्थ यात्रा के प्रसंग द्वारा सरस्वती महानदी के तटवर्ती तीर्थों का विलोम रूप अनुक्रम से प्रभास क्षेत्र में समुद्र सरस्वती संगम से आरंभ करके शारदा नदी का उद्गम प्लक्ष प्रस्रवण नाम तीर्थ पर्यन्त का वर्णन संक्षेप से आरम्भ किया जाता है]।

वैशम्पायन बोले—तदनन्तर सेना का विभाजन हो जाने पर बलवानों में श्रेष्ठ महामना रोहिणी पुत्र बलराम जी ने अपने भ्राता श्रीकृष्ण के प्रति कहा ॥११॥

हे महाबाहो ! हे मधुसूदन ! उन कौरवों की भी सहायता करो। तब भगवान् कृष्ण ने उनके वचन का पालन नहीं किया ॥१२॥

उससे क्रोध से व्याप्त चित्त यदुनन्दन महायशस्वी हलधर जी सरस्वती तटवर्ति तीर्थों की यात्रा को चले गए ॥१३॥

हे महाराज ! प्रथम यदुकुल के वीर ऋत्विक् (यज्ञ कराने वाले) सुहृद् तथा अन्य ब्राह्मणों के समूह सहित पवित्र प्रभास क्षेत्र में आए। हे नरेन्द्र ! यहां पर राजयक्ष्मा से पीड़ित नक्षत्रपति चन्द्रमा ने शाप मुक्त होकर पुनः तेज प्राप्त किया था जिससे संपूर्ण जगत् का प्रकाश करते हैं।

ऐसे पृथिवी में सब तीर्थों से श्रेष्ठ तथा उसको प्रकाश (तेज प्रदान) करने से उसका नाम प्रभास हुआ ॥४२॥ (१)

तंतस्तु चमसोद्भेदमच्युतस्त्वगमद् वली। चमसोद्भेद इत्येवं यं जना कथयन्त्युत ॥८७॥ (२)
उदपानमथागच्छत्त्वरावान् केशवाग्रजः। (३) आद्यं स्वस्त्ययनं चैव यत्रावाप्य महत्फलम् ॥८९॥
स्निग्धत्वादोषधीनां च भूमेश्च जनमेजय। जानन्ति सिद्धा राजेन्द्र नष्टामपि सरस्वतीम् ॥९०॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि वलदेवतीर्थयात्रायां प्रभासोत्पत्ति-
कथने संक्षिप्तपंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

ततो विनशनं राजन् जगामाथ हलायुधः । [४]
शूद्राभीरान् प्रतिद्वेषात् यत्र नष्टा सरस्वती ॥१॥

तत्राप्युपस्पृश्य वलः सरस्वत्यां महावलः। सुभूमिकं ततो गच्छत् सरस्वत्यास्तटे वरे ॥२॥ [५]
गन्धर्वाणां ततस्तीर्थमागच्छद् रोहिणीसुतः। विश्वावसुमुखास्तत्र गन्धर्वास्तपसान्विताः ॥१०॥ [६]

उस प्रभास क्षेत्र से अच्युत वलराम अव दूसरे तीर्थ चमसोद्भेद को गए।
चमसोद्भेद इस नाम से जिसको मनुष्य कथन करते है ॥८७॥

इसके अनन्तर वह केशव के वड़े भ्राता शीघ्रतावान् उदपानतीर्थ को गए ॥८८॥

जो समृद्धि प्राप्त करने का प्रधान साधन है और यहां पर महान् फल प्राप्त कर ॥८९॥

हे जनमेजय ! हे राजेन्द्र ! यहां पर भूमि की स्निग्धता (गीलापन) और औषधियों की स्निग्धता (हरियाली) से सिद्ध पुरुष लोप हुई सरस्वती नदी को जान लेते हैं ॥९०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत के शल्यपर्वान्तर्गत वलदेव की तीर्थयात्रा
प्रसंग में संक्षिप्त पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

सैन्तीसवां अध्याय प्रारम्भ।

वैशम्पायन वोले—हे राजन् तदनन्तर वहां से हल ही जिन का शस्त्र था वह वलराम जी विनशन नाम तीर्थ को गए। यहां पर सरस्वती नीच जातियों के प्रति द्वेष से नष्ट (अदृश्य) हुई थी ॥१॥

वहां पर भी महावलवान् वलराम जी ने सरस्वती में स्नानादि करके पुनः वहां से सरस्वती के उत्तम तीर में विद्यमान सुभूमिक नामक तीर्थ को गए ॥२॥

वहां से रोहिणी नन्दन गन्धर्वों के तीर्थ के समीप गए। वहां पर विश्वावसु है मुख्य जिनमें वे गन्धर्व तपस्या करते हैं ॥१०॥

तस्माद् गन्धर्वतीर्थाश्च महाबाहुररिन्दमः। गर्गस्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली ॥१३॥[७]

नीलवासास्तदागच्छच्छंखतीर्थं महायशाः ॥१९॥

सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली ॥२०॥ [८]

पुण्यं द्वैतवनं राजन्नाजगाम हलायुधः। तत्र गत्वा मुनीन् दृष्ट्वा नानावेषधरान् बलः [९]

आप्लुत्य सलिले चापि पूजयामास वै द्विजान् ॥२७॥

ततः प्रायाद् बलो राजन् दक्षिणेन सरस्वतीम्। गत्वा चैवं महाबाहु र्नातिदूरे महायशाः ॥२९॥

धर्मात्मा नागधन्वानं तीर्थमागमदच्युतः। यत्र पन्नगराजस्य वासुकेः संनिवेशनम् ॥३०॥[१०]

प्रायात्प्राचीं दिशं तत्र तत्र तीर्थान्यनेकशः। सहस्रशतसंख्यानि प्रथितानि पदेपदे ॥३४॥[११]

ततः कुंजान् बहून् कृत्वा संनिवृता सरस्वती। ऋषीणां पुण्यतपसां कारुण्याज्जनमेजय ॥५४॥

उस गन्धर्व तीर्थ से महाबाहु शत्रु दमन तथा एक कुण्डलवान् बलराम जी गर्गस्रोत नाम महातीर्थ को आए ॥१३॥

तदनन्तर नील वस्त्र धारी तथा ताल ध्वजा वाले महायशस्वी बलराम जी शंखतीर्थ को आए ॥१९॥

वह सरस्वती के तीर में शंख नाम नग (वृक्ष) उत्पन्न हुआ था ॥२०॥

हे राजन्! पुनः हलायुध राम पुण्यद्वैत वन को आ गए। वहां पर आकर बलराम ने नाना वेशधारी मुनियों के दर्शन तथा जल में स्नान करके पुनः उन ब्राह्मणों का पूजन भी किया ॥२७॥

हे राजन्! वहां से महाबाहु महायशस्वी बलराम जी सरस्वती को दक्षिण भाग करके आगे चले गए। इस प्रकार वह धर्मात्मा अच्युत बलराम वहां से अतिदूर न (थोड़ी दूर) गमन करके नागधन्वा नाम तीर्थ में आ पहुंचे ॥२९॥

यहां पन्नग (सर्प) राज वासुकि का निवास स्थान था ॥३०॥

पुनः वहां से प्राची दिशा (पूर्वदिशा) में आए। अथवा पूर्ववाहिनी को आए। वहां पर अनेकों ही तीर्थ थे अर्थात् वहां पर एक लक्ष संख्यक तीर्थ पद पद पर प्रकट थे ॥३४॥

वहां से सरस्वती बहुत सी कुंजेवनाकर हे जन्मेजय पुण्यशील और तपस्वी ऋषियों पर करुणा करके निवृत्त (लौटी) हुई है ॥५४॥

एवं स कुञ्जो राजन् वै नैमिषीय इति स्मृतः ।।५७।। [१२]

सप्त सारस्वतं तीर्थमाजगाम हलायुधः । यत्र मंकणकः सिद्धस्तपस्तेपे महामुनिः ।।६७।। [१३]

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदाप० । बलदेवतीर्थयात्रायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।३७।।

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच—

सप्तसारस्वतं कस्मात्.... .... ।

वैशम्पायन उवाच—

राजन् सप्त सरस्वत्यो याभिर्व्याप्तमिदं जगत् । आहूता बलवद्भिर्हि तत्र तत्र सरस्वती ।।३।।

सुप्रभा कांचनाक्षी च विशाला च मनोरमा । सरस्वती चौघवती सुरेणु विमलोदका ।।४।।

पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै । सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना तत्र सरस्वती ।।१३।।

नैमिषे कांचनाक्षी तु मुनीनां सत्रयाजिनाम् । आगता सरितां श्रेष्ठा तत्र भारत पुजिता ।।१९।।

हे राजन् ! ऐसे वह कुंज निश्चय ही नैमिषीय इस नाम से कहा है। पुनः वह हलायुध सप्त सारस्वत तीर्थ को आए। यहां पर महामुनि सिद्ध मंकणक ने तप किया था ।।

इस प्रकार श्री महाभारत के शल्यपर्व में बलदेव तीर्थ यात्रा नाम संक्षिप्त ३७वां अध्याय समाप्त हुआ ।।

अब अठतीसवें अध्याये का संक्षेप से वर्णन ।

जनमेजय बोले ! सप्त सारस्वत नाम किस कारण से हुआ । वैशम्पायन ने कहा— हे राजन् ! बलवानों के द्वारा आवाहन की हुई सरस्वती नदी वहां पर पधारी अर्थात् सप्त स्थानों में जाने से सप्त सरस्वती कही गई । जिनसे यह जगत् व्याप्त है ।।३।।

(१) सुप्रभा, (२) कांचनाक्षी, (३) विशाला और (४) मनोरमा और (५) सरस्वती ओघवती, (६) सुरेणु, (७) विमलोदका। यह सप्त नाम इसके हुए ।।४।।

हे राजेन्द्र पितामहा ब्रह्मा जी के त्रिपुष्करों में यज्ञ करते हुए सरस्वती को उसके नाम द्वारा आवाहन करने पर वहां उसका सुप्रभा नाम हुआ ।।१३।।

नैमिष्यारण्य में यज्ञकर्ता मुनियों के यज्ञ में आहूत (आवाहन को हुई) सरिताओं में श्रेष्ठ सरस्वती वहां आई और कांचनाक्षी नाम से पूजित हुई ।।१९।।

गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम् । आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती ।
विशालां तु गयस्याहुर्ऋषयः संशितव्रताः ॥२१॥
उत्तरे कोसलभागे पुण्ये राजन् महात्मना । उद्दालकेनर्यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती ॥२३॥
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात् । मनोरमेति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता ।२४-२५।
सुरेणुर्ऋषभे द्वीपे पुण्ये राजर्षिसेविते । कुरोश्च यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः ॥२६॥
आजगाम महाभागा सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती । ओघवत्यपि राजेन्द्र वसिष्ठेन महात्मना ॥२७॥
समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्यतोया सरस्वती । दक्षेण यजता चापि गंगाद्वारे सरस्वती ।२८॥
सुरेणुरिति विख्याता प्रस्रुता शीघ्रगामिनी विमलोदा भगवती ब्रह्मणा यजता पुनः ॥२९॥
समाहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ । एकीभूतास्ततस्तास्तु तस्मिंस्तीर्थे समागताः ॥३०॥
सप्त सारस्वतं तीर्थं ततस्तु प्रथितं भुवि । इति सप्तसरस्वत्यो नामतः परिकीर्तिताः ॥३१॥

गय नाम यजमान के देशों में भी होने वाले महाक्रतु (यज्ञ) प्रति आहूता सरिताओं में श्रेष्ठ सरस्वती गय के यज्ञ में प्रकट हुई और सम्यक् संपादित व्रत वाले ऋषि लोग गय की सरस्वती को विशाला कहते हैं ।।२१।।

हे राजन् ! पवित्र कोसल देश कें उत्तर भाग में यज्ञ करने वाले महात्मा उद्दालक द्वारा पूर्व (यज्ञ से प्रथम) ही ध्यान की हुई नदियों में श्रेष्ठ सरस्वती मुनि के प्रेम से उस, देश को आई और उनके द्वारा मन से प्रकट की हुई होने से वह मनोरमा इस नाम से वहां विख्यात हुई।

तथा यज्ञकर्ता महात्मा कुरुराज के श्रेष्ठ द्वीप पवित्र राजर्षियों से सेवित कुरुक्षेत्र (ब्रह्मावर्त) में महाभागशालिनी सरिताओं में श्रेष्ठ सरस्वती आई और सुरेणु नाम हुआ ।।२६।।

हे राजेन्द्र महात्मा वसिष्ठ द्वारा भी कुरुक्षेत्र में आवाहन की हुई दिव्य जल वाली सरस्वती आई और ओघवती नाम से प्रसिद्ध हुई ।।२७।।

और गंगा (हरि) द्वार में यज्ञकर्ता दक्ष प्रजापति के आवाहन करने पर शीघ्र गामिनी सरस्वती प्रकट होकर सुरेणु इस नाम से विख्यात हुई ।।२८।।

पुनः यजमान ब्रह्मा जी के द्वारा सम्यक् आवाहन की हुई वहां पवित्र हिमवान् पर्वत पर गई और विमलोदा नाम हुआ ।।२९।।

तत्पश्चात् वे सब एक रूप होकर मंकणक मुनि के आश्रम रूपी तीर्थ में आईं ॥३०॥

उस काल से भूमि में वह सप्त सारस्वत नाम से तीर्थ विख्यात हुआ, इस प्रकार सात नामों से युक्त सात सरस्वतियां वर्णन की गईं ।।३१।।

एताः सप्तसरस्वत्यः सुप्रभाद्या मुख्यायाःसरस्वत्याः त्वंशकला एव सन्ति। या प्रकरणप्राप्ता मुख्या सरस्वत्यस्ति तस्याः कुरुक्षेत्रे समन्तपचके राज्ञाकुरोः कालेऽपि तथा मुनिवसिष्ठकालेऽप्यभावो बभूव अर्थाद्दूरेऽवर्तत ततस्तु ताभ्यां तत्र कुरुक्षेत्रे पुनराहूता। यदि तत्राभविष्यत् तदा तस्या आवाहनं निष्फलमेवाभविष्यत्। अतो मार्कण्डानद्येव मुख्या सरस्वत्यस्ति या चेदानीं कुरुक्षेत्रे किंचिद्दूरमस्ति। तथा याः सप्त सरस्वत्या यत्र तत्र गतास्ता अपि पुनरत्रैव सप्तसारस्वते तीर्थे संप्राप्ताः। अत एताः सर्वा मुख्यायाः सरस्वत्या अंशकला एव सिद्धाः। यथा भागवते प्रथमस्कन्धे चतुर्विंशावतारवर्णने चोक्तम्। एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयमिति।

इति श्री म० भा० शल्य प० ती० या प० अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

उषित्वा तत्र रामस्तु संपूज्याश्रमवासिनः। ततस्त्वौशनसं तीर्थमाजगाम हलायुधः।

ये सुप्रभा आदि सात (सातों) सरस्वतियां मुख्य सरस्वती की अंश वा कला ही हैं, जो प्रकरण-प्राप्त मुख्य सरस्वती है उसका समन्त पंचक कुरुक्षेत्र में राजा कुरु तथा वशिष्ठ मुनि के समय में भी अभाव था अर्थात् दूर थी। इस कारण से ही तो उन दोनों के द्वारा वहां कुरुक्षेत्र में पुनः आवाहन किया गया, यदि वहां थी। तब उनका आवाहन करना निष्फल ही हुआ। इस हेतु से मार्कण्डा नदी ही मुख्य सरस्वती है। जो इस वर्तमान काल में भी किंचित् दूर पर विद्यमान है और किसी भी महानदी का कुरुक्षेत्र से सम्बन्ध संभव नहीं।

अरु जो सप्त (सात) सरस्वतियां यहां तहां गईं। वे भी पुनः इस सप्त सारस्वत तीर्थ अर्थात् मुख्य सरस्वती में ही आ गईं इस हेतु से ये सब सरस्वतियां उसकी अंश व कला ही सिद्ध होती हैं। यथा भागवत में कहा है यह सब अवतार परम पुरुष के अंश वा कला हैं किन्तु कृष्ण तो भगवान स्वयं हैं।

इस प्रकार महाभारत के शल्यपर्व का तीर्थ यात्रा नाम संक्षिप्त अठतीसवां अध्याय समाप्त हुआ॥

अब उन्तालीसवां अध्याय आरम्भ होता है।

बलराम ने वहां पर निवास कर और आश्रम वासियों की सम्यक् पूजा करके वह हलधर वहां से औशनस तीर्थ को आए।

कपालमोचनं नाम यत्र मुक्तो महामुनिः ॥४॥ (१४)

महता शिरसा राजन् ग्रस्तजंघो महोदरः। राक्षसस्य महाराज रामक्षिप्तस्य वै पुरा ॥५॥

तत्र दत्त्वा बहून् दायान् विप्रान् संपूज्य माधवः। जगाम वृष्णिप्रवरो रुषंगोराश्रमं तदा ।२४। (१५)

सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्। पृथूदके जप्यपरो नैनं श्वोमरणं तपेत् ॥३३॥ (१६)

ततो हलधरः श्रीमान् ब्राह्मणैः परिवारितः। जगाम तत्र राजेन्द्र रुषंगुस्तनुमत्यजत् ॥२७॥

ससर्ज यत्र भगवांल्लोकांल्लोकपितामहः ॥३५॥

यत्रार्ष्टिषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः। तपसा महता राजन् प्राप्तवानृषिसत्तमः ॥३६॥

सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः। ब्राह्मण्यं लब्धवान यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः ॥३७॥

महातपस्वी भगवानुग्रतेजा महायशाः। (ब्रह्मयोनिः १७)

तत्राजगाम बलवान् बलभद्रः प्रतापवान ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते शल्यप० गदाप० बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्यान एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

जिसका नाम कपालमोचन भी है। यहां पर महामुनि महोदर दुःख से मुक्त हुए ॥४॥

हे राजन्! हे महाराज! पूर्व काल में भगवान राम के अस्त्र से कटे हुए राक्षस के महान शिर से जिनकी जंघाग्रस्त थी ॥५॥

वहां पर माधव अर्थात् बलराम जी ने विप्रों की सम्यक् पूजा करके तथा बहुत से दान देकर वह वृष्णिवंश श्रेष्ठतम वहां से रुषंगु के आश्रम को चले गए ॥२४॥

जो पुरुष सरस्वती नदी के उत्तर तीर में विद्यमान पृथूदक (पेहोवा) में जप्य परायण हुआ अपने तनु (शरीर) को त्यागे उसको श्वमरण (पुनः पुनः मरण) न तपावे हे राजेन्द्र वहां से श्रीमान् हलधर ब्राह्मणों से घिरे हुए वहां गए। यहां पर रुषंगु ने तनु (शरीर) त्यागा था ॥२७॥

यहां पर लोक (संसार) के पितामह ब्रह्मा जी ने जगत् की रचना की थी ॥३५॥

तथा हे राजन् यहां पर ऋषि श्रेष्ठ सम्यक् संपादित व्रत तथा कुरु वंशीय ऋष्टिषेण ने महान तप से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥३६॥

और सिन्धुद्वीप तथा राजऋषि देवापि ने भी महातप किया था। तथा यहां पर विश्वामित्र मुनि ने ब्राह्मणत्व उपलब्ध किया ॥३७॥

जो महा तपस्वी तथा महायशस्वी उग्र तेज और सब सामर्थ्य वाला था। प्रतापवान्, बलवान् बलभद्र वहां आए। ब्रह्मयोनि (१७)।

इस प्रकार श्री महाभारत के शल्यपर्व अन्तर्गत बलदेवतीर्थ यात्रा में संक्षिप्त सारस्वतोपाख्यान नाम ३९वां अध्याय समाप्त हुआ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्राह्मयोनेरवाकीर्णं जगाम यदुनन्दनः। यत्र दाल्भ्यो वको राजन्नाश्रमस्थो महातपाः। (१८)

जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं वैचित्रवीर्यिणः। ययौ तीर्थमहावाहुर्यायातं पृथिवीपते ॥३८॥ (१९)

तत्र यज्ञे ययातेश्च महाराज सरस्वती। सर्पिः पयश्च सुस्राव नाहुषस्य महात्मनः ॥३९॥

ततस्तालकेतुर्महाधर्मकेतुर्महात्मा कृतात्मा महादाननित्यः। वसिष्ठापवाहं महाभीमवेगं धृतात्मा जितात्मा समभ्याजगाम ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शल्यप० गदाप० वलदेवतीर्थया० सारस्वतोपा० एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

वैश्वायन उवाच—

आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थेऽभवन्महान्। पूर्वतः पार्श्वतश्चासीद् विश्वामित्रस्य धीमतः ॥४॥

यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम्। स्थापयामास तत्तीर्थं स्थाणुतीर्थमिति प्रभो ॥६॥

अथ संक्षिप्त इकतालीसवां अध्याय आरम्भ है।

इस ब्रह्मयोनि तीर्थ से यदुनन्दन अवाकीर्ण नाम तीर्थ को गए। जहां पर आश्रम में स्थित महातपस्वी दाल्भ्य वक नाम मुनि ने विचित्र वीर्य नन्दन धृतराष्ट्र को नाश करने के निमित्त हवन किया था। हे पृथिवीपते! वहां से महावाहु बलराम यायात तीर्थ को गए। हे महाराज! वहां पर नहुष पुत्र महात्मा ययाति राजा के यज्ञ में सरस्वती महानदी ने घृत अरु दूध स्रवण किया था अर्थात् वहाया था। वहां से ताल ध्वजा वाले महाधर्म ध्वज महान् आत्मा शुद्ध मन से युक्त तथा नित्य महादानकर्ता दृढ़ मन (धैर्यवान संयत मन अथवा जितेन्द्रिय) बलराम महाभयंकर वेगयुक्त वसिष्ठ अपवाह नाम तीर्थ को सम्यक् प्रकार से आ गए ॥२०॥

इकतालीसवां संक्षिप्त अध्याय समाप्त हुआ ॥

बयालीसवां अध्याय।

वैशम्पायन मुनि वोले—निश्चय ही वसिष्ठ मुनि का महान् आश्रम स्थाणुतीर्थ के पूर्व में अरु विश्वामित्र महाबुद्धिमान् का पार्श्व (वगल अथवा पश्चिम) में था ॥४॥

यहां पर भगवान् स्थाणु ने यज्ञ करके तथा सरस्वती महानदी को पूजन कर के उस अपने नाम से युक्त तीर्थ को स्थापन किया था। हे प्रभो इस प्रकार स्थाणु तीर्थ हुआ ॥६॥

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम्। एवं वसिष्ठापवाहो लोके ख्यातो जनाधिप।४१।(२०)

इति श्रीमहाभारते शल्यप० बलरामती० या० द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

सरस्वत्यरुणायाश्च पुण्योऽयं संगमो महान् ॥४२॥(२१)

तत्राप्युपस्पृश्य बलो महात्मा दत्त्वा च दानानि पृथग्विधानि।
अवाप्यधर्मं परमार्थकर्मा जगाम सोमस्य महत्सुतीर्थम् ॥४६॥ (२२)
सैनापत्यं लब्धवान् देवतानां महासेनो यत्र दैत्यान्तकर्ता।
साक्षाच्चैवं न्यवसत् कार्तिकेयः सदा कुमारो यत्र प्लक्षराज ॥४९॥

इति महाभारते श० प० गदाप० बलरामती० या० सारस्वतोपाख्याननामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

तैजसं नाम तत्तीर्थं यत्र पूर्वमपां पतिः। अभिषिक्तः सुरगणैः वरुणो भरतर्षभ ॥१०५॥

इति श्रीमहाभा० श० प० ४६ अध्यायः ॥

हे जनाधिप (राजन्)! वहां से ऋषि श्रेष्ठ वसिष्ठ जी को अपवाहित (बहाया या हटाया) देख कर ऐसे लोक में वह स्थान वसिष्ठापवाह नाम से विख्यात हुआ।

इस प्रकार श्री महाभारत के शल्यपर्वान्तर्गत बलराम जी की तीर्थयात्रा प्रसंग में संक्षिप्त ब्यालीसवां अध्याय समाप्त हुआ॥

सरस्वती अरु अरुणा का यह जो पवित्र महान संगम है। वहां पर महात्मा बलराम ने स्नान आदि करके तथा अनेक प्रकार के दान देकर तथा धर्म को प्राप्त करके वह परमार्थ कर्मासोम के महाशुभ तीर्थ को चले गए।४६॥

यहां पर दैत्यों के नाशकर्ता महासेन ने देवताओं की सेना का आधिपत्य प्राप्त किया। तथा यहां प्लक्षराज (दूसरा प्लक्ष) है। ऐसे सदा कुमार अवस्था वाले स्वामिकार्त्तिकेय का वहां साक्षात् निवास है।

इस प्रकार श्री महाभारत के शल्यपर्वान्तर्गत बलराम तीर्थयात्रा प्रसंग में सारस्वतोपाख्यान नाम त्रयालीसवां संक्षिप्त अध्याय समाप्त हुआ॥

हे भरत श्रेष्ठ! यहां पर जलों के स्वामी वरुण का देवताओं के द्वारा अभिषेक (राजतिलक) हुआ। उस तीर्थ का नाम तैजस है।

इस प्रकार महाभारत के शल्यपर्व में ४६वां अध्याय समाप्त हुआ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

ततस्तत्राप्युपस्पृश्य दत्वा च विविधं वसु । अग्नितीर्थं महाप्राज्ञो जगामाथ प्रलम्बहा ॥१३॥ [२४]

तत्र स्नात्वा च दत्वा च वसूनि विविधानि च ॥२४॥

कौवेरं प्रययौ तीर्थं तत्र तप्त्वा महत्तपः। धनाधिपत्यं संप्राप्तो राजन्नैलविलः प्रभुः ॥२५॥ [२५]

जगाम त्वरितो रामस्तीर्थं श्वेतानुलेपनः ॥३२॥

निषेवितं सर्वसत्वै नाम्ना वदरपाचनम् । नानर्तुकवनोपेतं सदापुष्पफलं शुभम् ॥३३॥ [२६]

इति ४७वां अध्यायः ॥

एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

इन्द्रतीर्थं ततो गत्वा यदूनां प्रवरो वलः । विप्रेभ्यो धनरत्नानि ददौ स्नात्वा यथाविधि ॥१॥ [२७

अथ सैंतालीसवां अध्याय आरम्भ हुआ

वहां पर स्नान आदि करके तथा नाना प्रकार के धन दान करके वह महाबुद्धिमान् प्रलम्ब नाशक तदनन्तर अग्नितीर्थ को चले गए ॥१३॥

वहां भी स्नान करके तथा नाना प्रकार के धनों का दान करके कौवेर तीर्थ को चले गए ॥२४॥

हे राजन् ! वहां पर प्रभु (समर्थ) ऐलविल (कौवेर) ने महान तप करके धनाधिपत्य प्राप्त किया था ॥२५॥

वहां से श्वेतचन्दन के अनुलेप युक्त राम तुरन्त सर्व प्राणियों से सेवित वदर पाचन नाम तथा नाना ऋतु के वैभव युक्त वन तथा सदा पुष्प अरु फल से सुशोभित शुभतीर्थ को गए ॥३३॥

इस प्रकार श्री महाभारत के शल्यपर्व का यह संक्षिप्त सैंतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

उनचासवां अध्याय प्रारम्भ

वैशम्पायन बोले—यादवों में श्रेष्ठ बलराम ने वहां से इन्द्रतीर्थ में जाकर विधिपूर्वक स्नान करके विप्रों को धन अरु रत्न दान किए ॥१॥

शुभं तीर्थवरं तस्माद् रामतीर्थं जगाम ह । यत्र रामो महाभागो भार्गवः सुमहातपाः ॥७॥ [२८]
अयजद् वाजपेयेन सोऽश्वमेधशतेन च ॥९॥
पुण्ये तीर्थवरे तत्र देवब्रह्मर्षिसेविते । मुनिश्चैवाभिवाद्याथ यमुनातीर्थमागमत् ॥११॥ [२९]
यत्रानयामास तदा राजसूयं महीपते । पुत्रोऽदितेर्महाभागो वरुणो वै सितप्रभः ॥१२॥
वनमाली ततो हृष्टः स्तूयमानो महर्षिभिः । तस्मादादित्यतीर्थं च जगाम कमलेक्षणः ॥१७॥ [३०]
यत्रेष्ट्वा भगवान्ज्योतिर्भास्करो राजसत्तम । ज्योतिषामाधिपत्यं च प्रभावं चाभ्यपद्यत ॥१८॥
तस्या नद्यास्तु तीरे वै सर्वे देवाः सवासवाः । द्वैपायनः शुकश्चैव कृष्णश्च मधुसूदनः ॥१९॥
एते चान्ये च बहवो योगसिद्धाः सहस्रशः । तस्मिंस्तीर्थे सरस्वत्याः शिवे पुण्ये परंतप ॥२१॥
तत्र हत्वा पुरा विष्णुरसुरौ मधुकैटभौ । आप्लुत्य भरतश्रेष्ठ तीर्थप्रवरसत्तमे ॥२२॥
द्वैपायनश्च धर्मात्मा तत्रैवाप्लुत्य भारत । संप्राप्य परमं योगं सिद्धिं च परमां गतः ॥२३॥

उससे तीर्थश्रेष्ठ शुभ रामतीर्थ को चले गए। यहां पर महाभाग भृगुवंशी राम ने सुमहान तप किया था ॥७॥

अरु उसने वहां एक वाजपेय यज्ञ से तथा शत (सौ) अश्वमेध यज्ञों से यजन (पूजन) किया था ॥९॥

देव ऋषियों अरु ब्रह्म ऋषियों से सेवित उस पवित्र श्रेष्ठ तीर्थ में मुनियों को अभिवादन (प्रणाम) कर तदनन्तर यमुना तीर्थ चले आए ॥११॥

हे महीपते—यहां पर अदिति के पुत्र श्वेत कान्ति महाभाग वरुण ने निश्चय ही उस काल में राजसूय नाम यज्ञ किया था ॥१२॥

तत्पश्चात महाऋषियों द्वारा स्तुत (स्तुति किए गए) हर्ष पूर्वक बन मालाधारी कमलनेत्र बलराम वहां से आदित्यतीर्थ को चले गए ॥१७॥

हे राजश्रेष्ठ—यहां पर प्रकाश स्वरूप भगवान सूर्य ने यज्ञ करके सब ज्योतियों का आधिपत्य (राज्य अधिकार) अरु प्रभाव (तेज) प्राप्त किया था ॥१८॥

पुनः उसी सरस्वती नदी के तीर में इन्द्र के सहित सर्वदेवता, कृष्णद्वैपायन अरु शुकदेव मुनि तथा मधुसूदन भगवान श्रीकृष्ण ॥१९॥

इतने ये अरु अन्य बहुत से अर्थात् हजारों की संख्या में योग के द्वारा सिद्ध हुए। हे परंतप—(शत्रुओं को तपाने वाले) सरस्वती के उसी पवित्र कल्याण-कारी तीर्थ में पूर्व काल में भगवान विष्णु ने मधु अरु कैटभ दोनों असुरों को मारकर हे भरतश्रेष्ठ उस तीर्थों में प्रधान अरु उतमतीर्थ में स्नान किया ॥२२॥

हे भारत उसी में ही धर्मात्मा द्वैपायन (वेदव्यास) ने स्नान कर परम योग को सम्यक् प्रकार से प्राप्त कर परम सिद्धि को प्राप्त हुए। (अथवा परम गति को प्राप्त हुए) ॥२३॥

असितो देवलश्चैव तस्मिन्नेव महातपाः । परमं योगमास्थाय ऋर्षियोंगमवाप्तवान् ॥२४॥

इति श्री महाभारते शल्य० प० गदाप० तीर्थया० संक्षिप्त एकोनपंचाशततमोऽध्यायः ॥

एकपंचाशततमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

तत्राप्युपस्पृश्य वलो दत्त्वा दानानि चात्मवान् । सारस्वतस्य धर्मात्मा मुनेस्तीर्थं जगाम ह ॥ [२१]

तत्र द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजोत्तमान् । वेदानध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥२३॥

तत्रापि दत्त्वा वसु रौहिणेयो महाबलः केशवपूर्वजोऽथ ।
जगाम तीर्थं मुदितः क्रमेण ख्यातं महद् वृद्धकन्या स्म यत्र ॥५१॥ [३२]

इति श्री महाभा० श० प० वलदेवती० या० सारस्वतोपा० एकपंचाशतमोऽध्यायः ॥

उसी में ही महातपस्वी असित अरु देवल ऋषि भी परम योग का आश्रय कर योग को प्राप्त हो गए ॥२४॥

इस प्रकार श्री महा भारत के शल्यपर्व में वलदेवतीर्थ यात्रा पर्व में संक्षिप्त उनचासवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

संक्षिप्त इक्यावनवां अध्याय आरम्भ

वैशम्पायन ने कहा—वुद्धिमान वलराम वहां भी स्नान कर पुनः दान देकर धर्मात्मा मुनि सारस्वत के तीर्थ को चले गए ॥२॥

वहीं दधीचि ऋषि ने सरस्वती को वर दिया था । सो यह है । प्रसन्न हुए महामुनि ने सरस्वती के प्रति वर प्रदान किया कि हे महाभागे हे शुभे हे सरस्वति । मेरे प्रसाद (प्रसन्नता या अनुग्रह) से तुम सदा सब नदियों से अधिक पवित्र होवेगी ॥२३॥

वहां पर पूर्व काल में द्वादश (वारह) वर्ष की अनावृष्टि होने पर सारस्वत मुनि ने ब्रह्म ऋषियों को वेदों का अध्ययन कराया था । वहां भी रोहिणी पुत्र महावलवान् भगवान कृष्ण के वड़े भ्राता वलराम ने धन का दान करके प्रसन्नचित हो यहां पर वृद्धकन्या का विख्यात महातीर्थ था, क्रम से वहां गए ॥५१॥

इस प्रकार श्री महाभारत के शल्यपर्व में गदापर्व के वलदेव तीर्थ यात्रा पर्व में सारस्वतोपाख्यान नाम संक्षिप्त इक्यावनवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

द्विपंचाशततमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

तत्रस्थश्चापि शुश्राव हतं शल्यं हलायुधः। समन्तपंचकद्वारात् ततो निष्क्रम्य माधवः ॥३३॥ [३३]
पप्रच्छऋषिगणान् रामः कुरुक्षेत्रस्य यत् फलम् ॥२८॥
ते पृष्टा यदुसिंहेन कुरुक्षेत्रफलं विभो। समाचख्युर्महात्मानस्तस्मै सर्वं यथातथम् ॥२९॥
इति श्री महाभा० श० प० बलदेवती० या० सारस्वतोपाख्याने द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥

चतुष्पंचशततमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

कुरुक्षेत्रं ततो दृष्ट्वा दत्वा दायांश्च सात्वतः। आश्रमं सुमहद् दिव्यमगमज्जनमेजय ॥१॥ [३४]
मधूकाम्रवनोपेतं प्लक्षन्यग्रोधसंकुलम्। चिरबिल्वयुतं पुण्यं पनसार्जुनसंकुलम् ॥२॥
तं दृष्ट्वा यादवश्रेष्ठः प्रवरं पुण्यलक्षणम्। पप्रच्छ तान् ऋषीन् सर्वान् कस्याश्रमवरस्त्वयम् ॥३॥

बावनवां अध्याय आरम्भ हुआ

वैशम्पायन बोले—अरु वहां पर स्थित ही हल शस्त्र धारी बलराम ने शल्य राजा के मारे जाने की बातें सुन ली थी। अतः वहां समन्त पंचक द्वार से निकल कर माधव (मधुवंशी) राम ने कुरुक्षेत्र का जो फल है। उसके प्रति ऋषि समुदाय से प्रश्न किया ॥२८॥

हे विभो! कुरुक्षेत्र के फल प्रति यदुसिंह के द्वारा प्रश्न करने पर उन सब महात्माओं ने उससे यथातथं (ज्यों का त्यों) सम्यक रूप से कथन किया ॥२९॥

इस प्रकार श्री महाभारत के शल्यपर्व के अन्तर्गत गदापर्व में कथित बलदेवतीर्थ यात्रा में सारस्वतोपाख्यान में बावनवां अध्याय समाप्त हुआ ॥५२॥

चौवनवां अध्याय प्रारम्भ

वैशम्पायन बोले—बलराम जी कुरुक्षेत्र का दर्शन कर दान योग्य वस्तुओं का दान करके हे जनमेजय! एक महादिव्य आश्रम को चले गए ॥१॥

जो महुवा अरु आम के वन से युक्त तथा प्लक्ष (पिलखन) अरु वट के वृक्षों से पूर्ण चिरबिल्व (चिरबेल) से युक्त पवित्र अरु कटहल तथा अर्जुन के वृक्षों से सघन पुण्य लक्षण उत्तम ऐसे उस वन को देखकर यादवों में श्रेष्ट बलराम ने आश्रम वासी उन सब ऋषियों से प्रश्न किया कि यह श्रेष्ठ आश्रम किसका है ॥३॥

ते तु सर्वे महात्मानमूचू राजन् हलायुधम् ! शृणु विस्तरतो राम यस्यायं पूर्वमाश्रम ॥४॥
अत्र विष्णुः पुरा देवस्तप्तवांस्तप उत्तमम् । अत्रास्य विधिवद् यज्ञाः सर्वे वृत्ताः सनातना: ॥५॥
अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमारब्रह्मचारिणी । योगयुक्ता दिवं याता तपः सिद्धा तपस्विनी ॥६॥
श्रुत्वा ऋषीणां वचनमाश्रम तं जगाम ह । ऋषींस्तानभिवाद्याथ पार्श्वे हिमवतोऽच्युतः ॥७॥
संध्या कार्याणि सर्वाणि निर्वर्त्यारुरुहेऽचलम् । नातिदूरं ततो गत्वा नगं तालध्वजो बली ॥१०॥
पुण्यं तीर्थवरं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः । प्रभवं च सरस्वत्याः प्लक्षप्रस्रवणं बल ॥११॥ [३५]
संप्राप्तः कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम् । हलायुधस्तत्र चापि दत्वा दानं महाबलः ॥१२॥
आप्लुतः सलिले पुण्ये सुशीते विमले शुचौ । संतर्पयामास पितृन् देवांश्च रणदुर्मदः ॥१३॥
तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह । मित्रावरुणयो पुण्यं जगामाश्रममच्युतः ॥१४॥ [३६]
इन्द्रोऽग्निरर्यमा चैव यत्र प्राक् प्रीतिमवाप्नुवन् । तं देशं कारपवनाद् यमुनायां जगाम ह ॥१५॥

हे राजन् ! वे सब महात्मा हलधर से बोले - हे राम ! यह आश्रम पूर्व (प्रथम) जिसका था उसको विस्तार से सुनो ॥४॥

यहां पर पूर्वकाल में परम देव विष्णु भगवान ने उत्तम तप किया था। तथा यहां ही उनके सब यज्ञ विधिपूर्वक सनातन (चिर) काल तक होते रहे ॥५॥

यहां ही एक ब्राह्मणी सिद्ध, कुमार अवस्था ब्रह्मचारिणी तप से सिद्धि को प्राप्त तपस्वनी योग से युक्त हुई स्वर्ग को चली गई ॥६॥

ऋषियों के वचन को सुनकर वह अच्युत हलधर उस आश्रम में गए। जो हिमालय के पार्श्व भाग (बगल) में विद्यमान था। वहां ऋषियों को अभिवादन (प्रणाम) करके सब सन्ध्या कार्यों को निपटाकर तत्पश्चात् पर्वत पर चढ़े।

वह ताल वृक्ष के चिन्ह युक्त ध्वजा वाले बलवान राम (पर्वत पर अतिदूर न जाकर थोड़ी दूर) वहां से पवित्र श्रेष्ठ तीर्थ को देखकर परम विस्मय (आश्चर्य) को प्राप्त हुए। पुनः जो सरस्वती का उद्गम स्थान तीर्थों में उत्तम तथा कारपवन मुख्य प्लक्ष प्रस्रवण नाम तीर्थ को बलराम संप्राप्त हुए। अर्थात् वहां पहुंच गए।

वहां पर भी महाबलवान हल शस्त्र धारी राम ने सरस्वती के पवित्र सुशीत शुद्ध स्वच्छ जल में स्नान किए हुए दान देकर रण दुर्मद बलराम ने देवता अरु पित्रोंको तर्पण किया ॥१३॥

अरु यति (संन्यासी) तथा ब्राह्मणों के सहित अच्युत बलराम एक रात्री वहां पर निवास करके पुनः मित्र अरु वरुण दोनों ऋषियों के पवित्र आश्रम कोचले गए ॥१४॥

यहां पर पूर्व (पहले) इन्द्र, अग्नि अरु अर्यमा देवता प्रसन्नता को प्राप्त हो चुके थे। कारपवन से यमुना पट्टी में स्थित उस देश (स्थान) को गए ॥१५॥

स्नात्वा तत्र च धर्मात्मा परां प्रीतिमवाप्य च। ऋषिभिश्चैव सिद्धैश्च सहितो वै महाबलः ॥१६॥
उपविष्टः कथाः शुभ्राः शुश्राव यदुपुंगवः। तथा तु तिष्ठतां तेषां नारदो भगवानृषिः ॥१७॥
आजगामाथ तं देशं यत्र रामो व्यवस्थितः। जटा मण्डलसंवीतः स्वर्णचीरो महातपाः ॥१८॥
हेमदण्डधरो राजन् कमण्डलुधरस्तथा। कच्छपीं सुखशब्दां तां गृह्य वीणां मनोरमाम् ॥१९॥
प्रत्युत्थाय च तं सम्यक् पूजयित्वा यतव्रतम् ॥२१॥
देवर्षिं पर्यपृच्छत् स यथावृत्तं कुरुन् प्रति। ततोऽस्याकथयद् राजन् नारदः सर्वधर्मवित् ॥२२॥

नारद उवाच—

सर्वमेतद् यथावृत्तमतीव कुरुसंक्षयम्। दुर्योधनो हते शल्ये विद्रुतेषु कृपादिषु ॥३०॥
ह्रदं द्वैपायनं नाम विवेश भृशदुःखितः। शयानं धार्तराष्ट्रं तु सलिले स्तम्भिते तदा ॥३१॥
पाण्डवाः सह कृष्णेन वाग्भिरुग्राभिरार्दयन्। स तुद्यमानो बलवान् वाग्भी राम समन्ततः ॥३२॥
उत्थितः स ह्रदात् वीरः प्रगृह्य महतीं गदाम्। स चाप्युपगतो योद्धुं भीमेन सह सांप्रतम् ॥३३॥

वहां पर महाबलवान धर्मात्मा बलराम स्नान करके परम प्रीति को पाकर पुनः ऋषि और सिद्धों के सहित बैठे हुए यदु शिरोमणि सुन्दर कथाएं श्रवण कर रहे थे। तत्पश्चात् तिस प्रकार उनके बैठे हुए स्थान पर नारद ऋषि आ गए। यहां पर भगवान बलराम विशेष रूप से स्थित थे।

हे राजन्! जटा के मंडल से आच्छादित सुशोभित पीताम्बर धारी महातपस्वी स्वर्ण दण्डधारी तथा कमण्डलु हाथ में लिए हुए तथा सुरीली मनोहर रूपवाली उस कच्छपी वीणा को ग्रहण किए हुए थे ॥१९॥

उनके सन्मुख खड़े होकर तथा विधिपूर्वक पूजा करके कुरुओं के प्रति (साथवा विरुद्ध) जैसा वृतान्त हुआ। उसको बलराम ने संयमव्रत वाले देव ऋषि नारद से भली प्रकार पूछा। हे राजन् तदनन्तर सर्वधर्म के ज्ञाता नारद मुनि ने अति ही कुरु कुल का संहार रूप वृतान्त जैसे हुआ। यह सब उन बलराम के सन्मुख कथन किया ॥२२॥

नारद बोले—शल्य राजा के मारे जाने पर और कृपाचार्य, अश्वथामा, कृतवर्मा इन तीनों के पलायन कर जाने पर अत्यन्त संतप्त दुर्योधन ने द्वैपायन (व्यास) ह्रद (बड़े सरोवर) में प्रवेश किया ॥३१॥

तब उस माया मन्त्र से स्तम्भित जल में शयन करने वाले धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन को भगवान् श्री कृष्ण के सहित पाण्डवों ने निष्ठुर वचनों से पीडित किया। हे राम! वह बलवान वीर उग्र वाणी से पूर्ण पीडत हुआ एक महा गदा को ग्रहण कर ह्रद से उठा। अरु इस समय वह भी भीम के साथ युद्ध करने के लिए प्राप्त हुआ। वा समीप गया है ॥३३॥

भविष्यति तयोरद्य युद्धं राम सुदारुणम् । यदि कौतुहलं तेऽस्ति व्रजमाधव मा चिरम् ।
पश्य युद्धं महाघोरं शिष्योर्यदि मन्यसे ॥३४॥

वैशम्पायंन उवाच—

नारदस्य वचः श्रुत्वा तानभ्यर्च्य द्विजर्षभान् । सर्वान् विसर्जयामास ये तेनाभ्यागताः सह ॥३५॥

गम्यतां द्वारकां चेति सोऽन्वशादनुयायिनः । सोऽवतीर्याचलश्रेष्ठात् प्लक्षप्रस्रवणाच्छुभात् ॥३६॥

ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वा तीर्थफलं महत् । विप्राणां संनिधौ श्लोकमगायादिममच्युतः ॥३७॥

सरस्वतीवाससमा कुतो रतिः सरस्वतीवाससमाः कुतो गुणाः ।
सरस्वतीं प्राप्य दिवं गता जनाः सदा स्मरिष्यन्ति नदीं सरस्वतीम् ।
सरस्वती सर्वनदीषु पुण्या सरस्वती लोकशुभावहा सदा ।
सरस्वतीं प्राप्य जनाः सुदुष्कृतं सदा न शोचन्ति परत्र चेह च ॥३९॥

ततो मुहुर्मुहुः प्रीत्या प्रेक्षमाणः सरस्वतीम् । हयैर्युक्तं रथं शुभ्रमातिष्ठत परं तपः ॥४०॥

हे राम ! उन दोनों में आज भयानक युद्ध होगा । हे माधव ! यदि तुम्हारी अभिलाषा है । तब जाओ । चिर (देरी) मत करो । यदि मानते हो । तब (तो) अपने दोनों शिष्यों का घोर युद्ध देखो ॥३४॥

वैशम्पायन ने कहा—नारद के वचन को सुनकर उन द्विज श्रेष्ठों का पूजन करके जो उनके साथ आए थे । उन सबको विसर्जन कर दिया ॥३५॥

तथा उन्होंने भृत्यों को भी द्वारका को जाओ ऐसी आज्ञा दी । पुनः वह राम तीर्थों के महाफल को सुनकर प्रसन्न मन पूर्वक उस शुभ प्लक्ष प्रस्रवण नाम पर्वत श्रेष्ठ से उतर कर अच्युत ने विप्रों के समीप यह श्लोक गाया ॥३७॥

सरस्वती महानदी के तट पर वास करने के समान आनन्द और कहां है। तथा सरस्वती नदी के वास समान अन्यतर गुण भी कहां है। सरस्वती नदी को पाकर स्वर्ग में गए हुए मनुष्य सदा ही सरस्वती को स्मरण करेंगे। सरस्वती सब नदियों में पवित्र अरु सरस्वती सदा संसार के शुभ (कल्याण) अर्थ वहने वाली है। सरस्वती को प्राप्त कर मनुष्य इस लोक अरु प्रलोक में कभी शोक नहीं करते ॥३९॥

तत्पश्चात् पुनः पुनः प्रेम से सरस्वती को देखते हुए शत्रुओं को तपाने वाले राम घोड़ों से युक्त सुन्दर वा उज्ज्वल रथ पर बैठ गए ॥४०॥

स शीघ्रगामिना तेन रथेन यदुपुंगवः । दिदृक्षुरभिसंप्राप्तः शिष्ययुद्धमुपस्थितम् ॥४१॥

इति श्री महाभारते शल्यपर्वणि गदापर्व० बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने संक्षिप्तः चतुपंचाशततमोऽध्यायः ॥

विदुरकृतसारस्वततीर्थयात्रायाः संक्षेपेण वर्णनम्

[श्रीमद्भागवतमहापुराणोक्तम्]

इत्थं व्रजन् भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान् प्रभासम् ।
तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥

तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ।
संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन् सरस्वतीं प्रत्यगियाय तुष्णीम् ॥२१॥

तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ।
तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥

वह यदु वंश शिरोमणि शीघ्रगामी रथ के द्वारा उपस्थित (प्राप्त) शिष्य युद्ध को देखने की इच्छा से वहां जा पहुंचे ॥४१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत के शल्य पर्व के गदा पर्वान्तर्गत बलदेव तीर्थ यात्रा में सारस्वतोपाख्यान में संक्षिप्त चौवनवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

विदुर के द्वारा भी की गई सरस्वती के तटवर्ती तीर्थों की यात्रा का संक्षेप से वर्णन

[श्रीमद्भागवत महापुराण में कथित]

इस प्रकार भारतवर्ष में ही गमन करते हुए विदुर जितने समय में प्रभासक्षेत्र गए उतने काल में राजा युधिष्ठर भगवान कृष्ण की सहायता से एक ही सेना तथा एक ही छत्र वाली भूमि का शासन करने लग गए अर्थात् चक्रवर्ती राजा हो गए ॥२०॥

तदनन्तर उस प्रभासक्षेत्र में विदुर ने परस्पर की स्पर्धा (ईर्ष्या) से उत्पन्न क्रोध रूप अग्नि से सुहृदों का विनाश सुना। वह ऐसे है—जिस प्रकार बांसों के परस्पर संघर्ष से उत्पन्न वह्नि निज आश्रय भूत वन को दग्ध कर दे। पश्चात उसके अनुसार शोक करते हुए मौन होकर सरस्वती के विलोम (पश्चिम से पूर्वाभिमुख) होकर चले आए ॥२१॥

उस सरस्वती के तीर में त्रित मुनि, उशना (शुक्र) मनु, पृथु उसके अनन्तर अग्नि, वायु तथा सुदास, गउवों, स्वामी कार्तिकेय अरु श्राद्धदेव इन सब का जो जो तीर्थ था उन का सेवन (स्नान) आदि किया ॥२२॥

अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः।
प्रत्यंगमुख्यांकितमन्दिराणि यद्दर्शनात् कृष्णमनुस्मरन्ति।
ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान् कुरुजांगलांश्च।
कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥२४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे प्रथमाध्याये चोक्तम् ॥

पुरास्वायम्भुवमनुकृत सारस्वतानां तीर्थानां यात्रायाः संक्षेपेण वर्णनम्

[श्रीमद्भागवते]

श्री भगवानुवाच—

प्रजापतिसुत सम्राण्मनुर्विख्यातमंगलः। ब्रह्मावर्तं योऽधिवसंछास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥२५॥

अरु इस भूमि में अन्य (दूसरे) भी जो तीर्थ स्थान द्विजदेव (ऋषि) तथा देवताओं से रचित है। अरु अंग अंग प्रति होने से प्रत्यंग नाम आयुध (अस्त्र) उन में मुख्य जो चक्र है। उससे चिह्नित स्वर्ण कलश युक्त भगवान विष्णु के मन्दिर जिनमें हैं। ऐसे क्षेत्रों (तीर्थों) का भी सेवन (स्नान निवास आदि) किया जिनके दर्शन से पश्चात् श्री कृष्ण को लोक स्मरण करते हैं ॥२३॥

अरु उस प्रभास क्षेत्र से चलकर बहुत धान्ययुक्त सुराष्ट्र (काठियावाड़) सौवीर अरु मत्स्य देशों तथा कुरुक्षेत्र के जंगलों को पार कर जितने समय में यमुना तट पर पहुंचे, उतने ही काल में द्वारका से आए हुए उद्धव को जो भगवान श्रीकृष्ण का परम भगत था वहां (यमुना तट पर) देखा ॥२४।

इस प्रकार श्री भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के विदुर उद्धव संवाद
नाम प्रथम अध्याय में कहा है ॥

पूर्वकाल में स्वायंभुव मनु के द्वारा भी की गई सरस्वती सम्बन्धी (तटवर्ती) तीर्थों की यात्रा का संक्षेप मे वर्णन

[यह श्रीमद्भागवत में वर्णित है]

श्री भगवान् वोले—प्रजापति ब्रह्मा जी का पुत्र सम्राट (चक्रवर्ती) मनु विख्यात है मंगल (अभ्युदय अर्थात् सदाचार लक्षण रूप उन्नति) जिसका वह ब्रह्मावर्त में अधिक वास करता हुआ ही सात समुद्रों वाली पृथिवी का शासन करता है ॥२५॥

आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥२६॥

मैत्रेय उवाच—

एवं तमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः । जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥३३॥

मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् । उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥३७॥

यस्मिन् भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दव । कृपया सम्परीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥३८॥

तद्वैबिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् । पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥३९॥

प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः । ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन् हुतहुताशनम् ॥४५॥

विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् । इति श्रीमद्भागवते ३ स्क० २१ अध्याये ॥

प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः ॥२४॥

आमन्त्र्य तं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः । प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥२६॥

वह धर्म का ज्ञाता तुम को देखने की इच्छा वाला परश्व (परसों) आयेगा ॥२६॥

मैत्रेय बोले—इस प्रकार उन कर्दम ऋषि की स्तुति के पश्चात् भाषण करके निरुद्ध भूत इन्द्रियों में प्रादुर्भूत होने से प्रत्यगक्षजनाम भगवान तदन्तर उस सरस्वती नदी से परिवेष्टित बिन्दुसर तीर्थ से चले गए। उसी दिन मनु सुवर्ण की सामग्री से युक्त रथ पर स्थित होकर शान्त व्रत कर्दम मुनि के उस आश्रम स्थान के समीप आए ॥३७॥

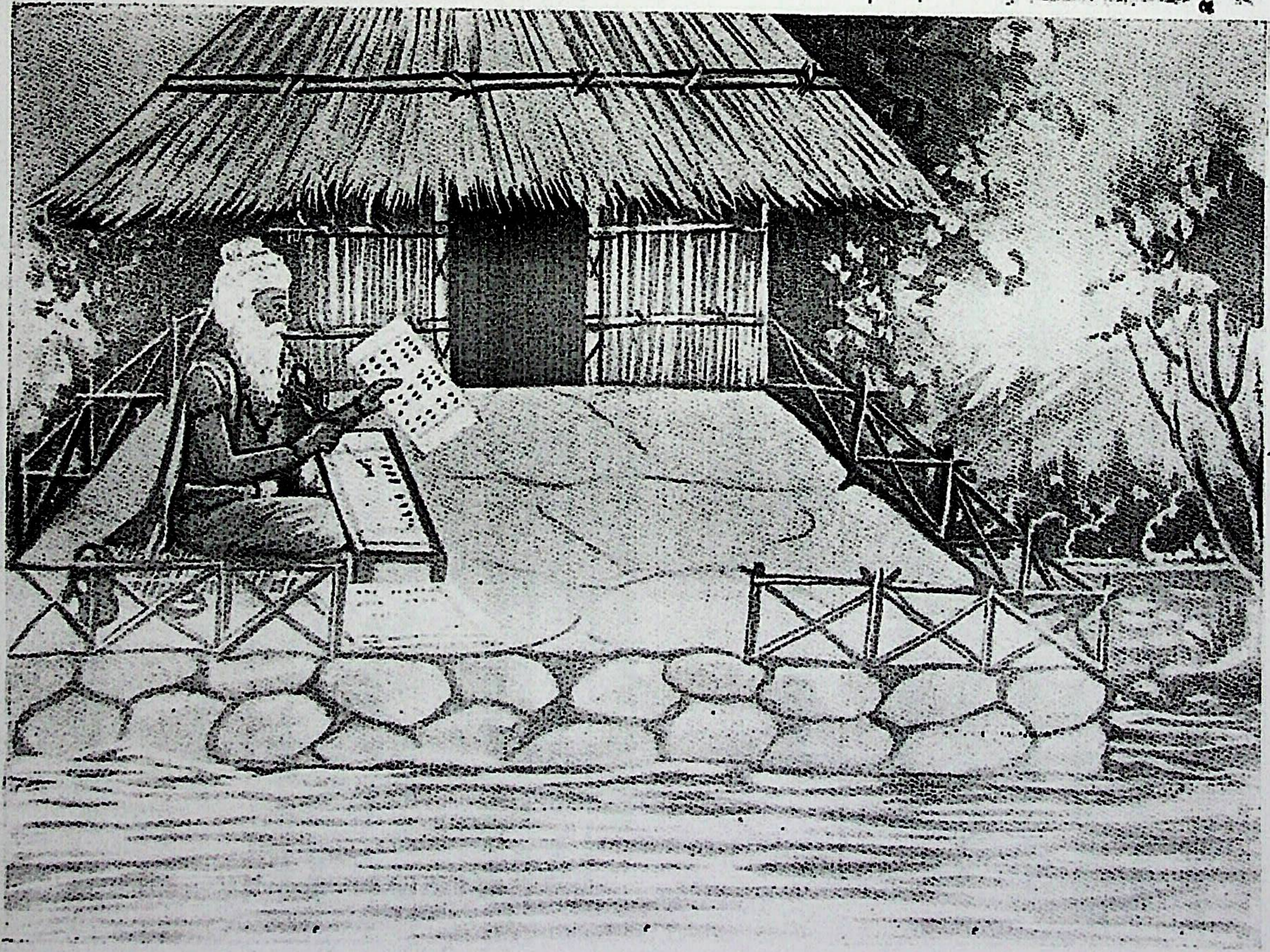
जिस शरणागत मुनि के प्रति अर्पण की हुई कृपा से व्याप्त भगवान के नेत्र से अश्रु (आंसु) के बिन्दु गिरे थे। वही सरस्वती के जल से प्लावित पवित्र अरोग्यता जनक तथा अमृत के समान स्वादिष्ट जल अरु महर्षियों के समुदाय से सेवित बिन्दु सरोवर नाम तीर्थ था ॥३९॥

आत्मजा (पुत्री) के सहित आदिराज मनु ने उस श्रेष्ठ तीर्थ में प्रवेश कर ब्रह्मचारी के योग्य अग्निहोत्र करके बैठे हुए मुनि को देखा ॥४५॥

जो चिरकाल तक उग्र तप में युक्त शरीर से प्रकाशित हो रह थे। इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्धके २१वें अध्याय में कहा है॥

योग्य वर के लिये दान की गई कन्या को देखकर महाराज मनु चिन्ता से रहित हो गए॥२४॥

उस मुनि श्रेष्ठ से अनुमति लेकर उनकी आज्ञा से अनुगामी भृत्यों सहित तथा भार्या के सहित राजा ने रथ पर आरुढ होकर स्वपुर को प्रस्थान किया ॥२६॥



सरस्वती के तट पर स्थित आश्रम में बैठे हुए महर्षि व्यास जी श्रीमद्भागवत की रचना कर रहे हैं ।

उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः । ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥२७॥
तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजाः पतिम् । गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥
बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसंपत्समन्विता । न्यपतन् यत्र रोमाणि यज्ञस्यांगविधुन्वतः ॥२९॥
कुशाः काशास्त एवासन्छश्वद्धरितवर्चसः । ऋषियो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान् यज्ञमीजिरे ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापु० तृतीयस्कन्धे द्वाविंशतितमेऽध्याये कथितम् ॥

श्रीमद्भागवतस्यापि रचना सरस्वत्यास्तटे बभूव

[श्रीमद्भागवतम्]

शौनक उवाच—

निर्गते नारदे सूत भगवान् बादरायणः । श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ॥१॥

अरु ऋषिकुल हितैषिणी सरस्वती नदी के दोनों तटों पर विद्यमान निवृत्ति परायण ऋषियों के आश्रमों की समृद्धि वा सौन्दर्य को देखते हुए स्वपुर (राजधानी) को चले आए। उस अपने स्वामी राजा को आता हुआ जानकर परम हर्ष से युक्त ब्रह्मावर्त से आगत प्रजा गीत स्तोत्र तथा वाजत्रों (वाजे) के द्वारा स्वागत करने के लिए आगे गई ॥२८॥

बर्हिष्मती नाम की पुरी (राजधानी) सब प्रकार की समृद्धि से युक्त थी तथा यहां पर अंगों को कम्पित करते (झुनझुनाते) हुए वराह भगवान के रोम गिरे थे ॥२९॥

वे ही कुशा अरु कास (काही) रूप से उत्पन्न हुए जो नित्य हरे रहते हैं। जिनके द्वारा ऋषि लोग यज्ञ नाशिक राक्षसों को तिरस्कार कर यज्ञ (विष्णु भगवान्) का यजन पूजन करते हैं। यह ब्रह्मावर्त की महिमा वर्णन की गई है ॥३०॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के अन्तर्गत वाइसवें अध्याय में वर्णन है ॥

श्रीमद्भागवतमहापुराण की रचना भी सरस्वती नदी के तट पर हुई थी

[यह उसका ही वाक्य है]

जैसे शौनक वोले—हे सूत ! नारद मुनि के आश्रम से निकल जाने के अनन्तर उनके अभिप्रेत (प्रिय या ईप्सित) को सुनने अथवा जानने वाले समर्थ भगवान् वादरायण (वेरों का वन है आश्रय जिनका उन) व्यास मुनि ने क्या किया ॥१॥

सूत उवाच—

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे। शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥२॥
तस्मिन् स्वाश्रमे व्यासो वदरीषण्डमण्डिते। आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥३॥
भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले। अपश्यत् पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम् ॥४॥
यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्। परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥५॥
अनर्थोपशमं साक्षात् भक्तियोगमधोक्षजे। लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥६॥
यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपुरुषे। भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥७॥
स संहितां भागवतीं कृत्वानुक्रम्य चात्मजम्। शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुरा० प्र० सं० द्रोणिनिग्रहेनाम सप्तमेऽध्याये ॥

सूत बोले—ब्रह्म नदी सरस्वती के तट पर ऋषियों के यज्ञों को बढ़ाने वाला वह आश्रम शम्याप्रास (शमी काष्ट को बलवान पुरुष के द्वारा घुमाकर फैंकने से जितनी दूर पर गिरे उतने भूदेश को) इस नाम से कथन किया है ॥२॥

उस बेर के वृक्षों के समूह से सुशोभित अपने आश्रम में बैठे हुए व्यास जी ने जल का आचमन करके अपने मन को समाधिस्थ किया ॥३॥

भक्तियोग से सम्यक् (भली प्रकार) से समाहित शुद्ध मन में प्रथम परम पुरुष को अरु उसके आश्रय रहने वाली माया को देखा ॥४॥

जिससे सम्यक् प्रकार से मोहित हुआ जीव तीनों गुणों से परे होने पर भी अपने आत्मा को त्रिगुणात्मक (शरीर रूप) मानता है। अरु त्रिगुणों के अभिमान कृत अनर्थ (जन्ममरण) को प्राप्त होता है अथवा कर्तृत्व भोक्तृत्व भाव को प्राप्त होता है ॥५॥

अरु अनर्थ का उपशम (निवर्तक) जो भगवान अधोक्षज (अधः है इन्द्रिय जन ज्ञान जिससे उस) में साक्षात भक्ति योग है। उसको भी देखा। यह स्वयं देखकर उस सर्वज्ञ मुनि ने अज्ञानी लोक की कल्याणार्थ सात्वत (भागवत नामक) संहिता की रचना की ॥६॥

जिसके श्रवण काल में ही परम पुरुष श्री कृष्ण में श्रोता भक्त पुरुष के हृदय में शोक अरु मोह तथा भय इन तीनों का नाश करने वाली भक्ति उत्पन्न होती है ॥७॥

उस मुनि व्यास जी ने श्री भागवत संहिता को रच कर तथा शोधन करके निवृत्ति में तत्पर अपने पुत्र शुकदेव को अध्ययन कराया था ॥८॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमहापुराण के प्रथम स्कन्ध में अश्वथामा के निग्रह नाम सातवें अध्याय में कहा है ॥

इदानीं विलोमानुलोमाभ्यां दशमहानदीनामनुक्रमेण वर्णनं क्रियते

येन तयोर्यथार्थनिर्णयो भविष्यति यथा सर्वे ग्रहाः प्रत्यङ्मुखा एव गच्छन्ति । तथैव क्रमेण पूर्वादारभ्य प्रत्युङ्मुखं गणनं मनुलोमानुक्रमोऽस्ति । अस्माद्विपरीतक्रमेणार्थात्पश्चिमादारभ्य प्राङ्मुखं गणनं विलोमानुक्रमोऽस्ति । परं तु श्री ऋग्वेदसंहितायास्तृतीयेमण्डले विलोमानुक्रमः प्रथमं प्रदर्शितः । तेनैव हेतुना मयापि प्रथमं विलोमानुक्रमो वर्ण्यते ।

दृषद्वत्यां मानुप आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ।

इति ऋ० ३ मं० १३ सू० ४ मं० ॥

(दृषद्वती आपयाया सरस्वती)

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे भरतागमनव्याजेन गिरिव्रजात्पुरवरादागमनकाले मार्गप्राप्तानां नदीनामनुक्रमेण च वर्णनम् ॥

एकसप्ततितमे सर्गे

स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान् ।
ततः सुदामां द्युतिमान् संतीर्यावेक्ष्य तां नदीम् ॥१॥

अब विपरीत और अनुकूल रूप से दशमहा नदियों का अनुक्रम वर्णन किया जाता है

जिससे सरस्वती और दृषद्वती दोनों का यथार्थ निर्णय हो जाएगा जैसे सब नक्षत्र पश्चिम मुख ही गमन करते हैं तैसे ही पूर्व दिशा से आरम्भ करके पश्चिम मुख (पश्चिम की ओर) गणना अनुलोम अनुक्रम शास्त्र में लिखा है। इससे विपरीत क्रम से अर्थात् पश्चिम से आरम्भ करके पूर्व मुख (ओर) नदियों की गणना विलोम अनुक्रम कहा है। परन्तु श्री ऋग्वेद संहिता के तीसरे मण्डल में प्रथम विलोम अनुक्रम प्रदर्शन वा (वर्णन) किया है। उसी कारण से मैंने भी प्रथम विलोम अनुक्रम वर्णन किया है। जैसे—हे अग्ने ! मनुष्यों के संचार योग्य दृषद्वती, आपयाया, सरस्वती इन तीनों में से किसी एक के तट पर प्रज्वलित होवो तथा हवि को दहन करो। दृषद्वती आपयाया सरस्वती।

श्री वाल्मीकीय रामायण में श्रीमान् भरत के आगमन के व्याज (बहाने) से पुरश्रेष्ठ गिरिव्रज (केकयदेश) से आगमन काल में (मार्ग में) आने वाली महानदियों का क्रम से वर्णन किया है ॥

इकहत्तरवां सर्ग

उस बलवान् भरत ने राज गृह (नाना के घर) से निकल कर पूर्व दिशा को गमन

ह्रादिनीं दूरपारां च प्रत्यक् स्रोतस्तरंगिणीम् ॥२॥
शतद्रुमतरच्छ्रीमान् नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
एलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान् । शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्षणम् ॥३॥
सत्यसन्धः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणः शिलावहाम् । अभ्यगात् स महाशैलान् वनं चैत्ररथं प्रति ॥४॥
सरस्वतीं च गंगा च युग्मेन प्रतिपद्य च । उत्तरान् वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद् वनम् ॥५॥
वेगिनीं च कुलिंगाख्यां ह्रादिनीं पर्वतावृताम् । यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत् तदा ॥६॥

किया। उसके पश्चात् वह तेजस्वी सुदामा महानदी का दर्शन करके उसको पार करके और श्रीमान् इक्ष्वाकु नन्दन ने दूर है पार (पाट) जिसका उस ह्रादिनी नदी को पार किया। पुनः तरंगों वाली पश्चिम वाहिनी शतद्रु (सतलुज) महानदी को एलधान नगर में पार कर (किया) और अपर (नीचे के लघु) पर्वतों में अथवा पर्वत देश में पहुंच कर। पुनः अग्नि दिशा में शल्य कर्षण देश को अपने वेग से वहा कर लाई हुई शिलाओं से पूर्ण कर देने वाली नदी (शिलावहा) को तैर कर (पार कर) तथा उन सत्य प्रतिज्ञ भरत जी ने शौच आदि के द्वारा पवित्र होकर पुनः उसने शिलावहा (दृषद्वती) तथा महाशैलों (हिमालय के शिखरों) का दर्शन करते हुए चैत्ररथ वन के प्रति प्रस्थान किया ॥४॥

पुनः सरस्वती को मन्दाकिनी के संगम से पार कर तथा वीर मत्स्य देशों के उत्तर मार्गों को लांघ कर भारुण्ड वन में प्रवेश किया ॥५॥

पुनः पर्वतों से घिरी हुई तथा वेगवाली तथा (तैसे) कल्कल नाद करने वाली कुलिंगा नाम से प्रसिद्ध यमुना नदी के समीप पहुंच कर पुनः जब पार हुए तब भरत ने सेना को विश्राम कराया ॥६॥

---

१. अवकीर्णोत्तरासङ्गः कृशो धमनि सन्ततः । आसीः कृष्णसरस्वत्यां सत्रे द्वादशवार्षिके ॥१४॥	हे कृष्ण ! आप सरस्वती नदी के तट पर बारहवर्षी यज्ञ में अपने उत्तरीय वस्त्र को त्याग देने से प्रायधमनिओं से व्याप्त कृश शरीर वाले हो गए थे ॥१४॥
परायणं देवमूर्धा क्रतुभिर्मधुसूदन । अयजो भूरितेजा वै कृष्ण चैत्ररथे वने ॥२३॥	हे मधुसूदन कृष्ण! आप सबके आश्रय और देवताओं में श्रेष्ठ महान तेजस्वी हैं और चैत्ररथ वन में अनेक यज्ञों से यजन किया है ॥२३॥
तथा नारायण पुरा क्रतुभिर्भूरि दक्षिणैः । इष्टवांस्त्वं महासत्रं कृष्ण चैत्ररथे वने ॥४१॥	तैसे हे नारायण ! हे श्रीकृष्ण ! आपने पूर्व काल में चैत्ररथ वन में महादक्षिणा वाले अनेक यज्ञों के द्वारा महायजन किया था ॥४१॥
इति श्रीम. भा. व. प. द्रौपद्याश्वासने द्वादशोऽध्यायेः॥	इस प्रकार श्रीमहाभारत के वन पर्व में कहा है ।

२. प्रतीत होता है कि रामायण काल में यमुना कुलिंग नाम से लोक में विख्यात थी। यह कुलिंग नाम कालिन्दी का ही अपभ्रंश नाम प्रतीत होता है। ऐसे ही वर्तमान में सरस्वती मार्कण्डा नाम से विख्यात है।

अनुलोम अनुक्रम के बोधक प्रमाण

५ २
ःतुज्या ।
१०
सुषोमया ॥

ःाचित् सीमा-

, मरुद्वृधा,

हे गङ्गे ! हे यमुने ! हे सरस्वती ! हे शुतुद्रि ! तथा हे परुष्णी ! मेरी स्तुति को स्वीकार करो और असिक्नी के सहित हे मरुद्वृधे ! तथा वितस्ता के तथा सुषोमा के सहित ! हे आर्जीकीये ! मेरे द्वारा संबद्ध (रचित) इस स्तुति को श्रवण करो। दृषद्वती का सरस्वती में अन्तर्भाव कर दिया है। सुषोमा कोई सीमाप्रान्तीय नदी है ॥१॥

वैशम्पायन मुनि बोले—हे जनमेजय ! भरतवंश में श्रेष्ठ पाण्डव वन में वास करने का उद्देश्य (निश्चय) करके अपने अनुगामियों के साथ गङ्गातट से कुरुक्षेत्र को गए ॥१॥

वे पाण्डव यमुना और सरस्वती, दृषद्वती इन तीनों को क्रम से सेवन करके तथा एक वन से ही दूसरे वन को सेवन करके निरन्तर पश्चिम दिशा को चले गए ॥२॥

इस प्रकार महाभारत के वनपर्व के ५ अध्याय में कहा है ॥

हे पाण्डव ! यहां पर समुद्रपर्यन्त गमन करने में समर्थ महावेगवती यमुना बहती है। वह उत्तर दिशा है।

तीर्थों की माला धारण करने वाली, ह्रादिनी (कलकल शब्द करने वाली) महापवित्र सरस्वती नदी भी उधर ही है तथा यहां पर हे भूमिप ! महापवित्र दृषद्वती नदी विख्यात है।

इस प्रकार श्री महाभारत के वन पर्व के ९०वें अध्याय में कहा है ॥

यमुना, सरस्वती, दृषद्वती ये सब महानदी हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के ५ स्कन्ध में भुवनकोशवर्णन नाम १९वें अध्याय में कहा है ॥

नदियों में गंगा, यमुना, सरस्वती श्रेष्ठ हैं।

इस प्रकार देवी भा० ८ स्क० १२ अध्याय में कहा है ॥

सरस्वती, कौशिकी, यमुना और मन्दाकिनी [illegible] महानदी हैं।

इस प्रकार देवीभागवत के अष्टम स्कन्ध में [illegible] अध्याय में कहा है ॥

॥

ती।

दश महानदियों का सुखपूर्वक बो

सिन्धु से गङ्गा महानदी पर्यन्त विलोम (विपरीत) तथा अनुलोम (अनुकूल) अनुक्रम से महानदियों के वर्तमान-काली

संख्याङ्काः	ग्रन्थस्य नाम	विलोमानुऽक्रमस्य बोधकानि प्रमाणानि	विलोम अनुक्रम के बोधक प्रमाण	लौकिक और शास्त्रोक्त नामों का विलोम अनुलोम अ
१.	ऋग्वदस्य ३ मण्डले	दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ऋग्वेदे ३ मण्डले १३ सूक्ते ४ मन्त्रे ॥ दृषद्वती आपयाया सरस्वती	हे अग्ने ! मनुष्यों के संचार योग्य दृषद्वती, आपयाया तथा सरस्वती के मध्य शुभ स्थान या तीर में प्रज्वलित होवो । इस प्रकार ऋग्वेद में कहा है ॥	सिन्ध, जेहलम, चनाब, रॉवी, ब्यास, सतलुज, घग्घर, मार्कण्डा, य सिन्धु, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, शतद्रु, दृषद्वती, स दृषद्वती, आपयाया (स्वल्पनदी), सरस्वती। (ऋग्वेद के तीसरे मण्ड
२.	वाल्मीकीय रामायणे ७१तमे सर्गे अयोध्या काण्डे	स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान् । ततः सुदामां द्युतिमान् संतीर्याऽवेक्ष्य तां नदीम् ॥१॥ सुदामा नदी ५ ४ १ ८ ९ ह्रादिनीं दूरपारां च प्रत्यक्स्रोतस्तरङ्गिणीम् । १० ७ २ ६ ३ शतद्रुमतरच्छ्रीमान् नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः ॥२॥ १२ ११ १३ १६ १४ १५ एलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान् । ह्रादिनी शतद्रु ३ ४ ५ १ २ शिलामाकुर्वतीं, तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्षणम् ॥३॥ शिलावहाया विशेषणमस्ति न त्वन्या नदी । शिलावहा नदी २ ३ ४ ७ ६ सत्यसन्धः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणः शिलावहाम् । ११ १ ५ ९ ८ १० अभ्यगात् स महाशैलान् वनं चैत्ररथं प्रति ॥४॥ सरस्वतीं च गङ्गां च युग्मेन प्रतिपद्य च । उत्तरान् वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद्वनम् ॥५॥ सरस्वती नदी २ १ ३ ४ ५ वेगिनीं च कुलिङ्गाख्यां ह्रादिनीं पर्वतावृताम् । ६ ७ ८ १० ११ ९ यमुनां प्राप्य* संतीर्णो बलमाश्वासयत् तदा ॥६॥ यमुना नदी भागीरथीं दुष्प्रतरां सोंऽशुधाने महानदीम् । उपायाद् राघवस्तूर्णं प्राग्वटे विश्रुते पुरे ॥७॥ गङ्गा नदी स गङ्गां प्राग्वटे तीर्त्वा	वह बलवान् भरत जी राजभवन से निकल कर पूर्व दिशा को चले। वहां से चल कर उस तेजस्वी भरत ने मार्ग में प्राप्त सुदामा नदी का दर्शन करके उसको सम्यक् तैर (पार) कर (किया) ॥१॥ और श्रीमान् इक्ष्वाकुनन्दन ने दूर है पार जिसका उस ह्रादिनी नदी को तरा अर्थात् पार किया और पश्चिमवाहिनी तथा तरङ्गों वाली शतद्रु नदी को एलधान (रोपड़) में तर (पार) कर (किया) और पर्वतों (हिमालय के नीचे की लघु पहाड़ियों) को पहुंच कर आग्नेयकोण (दिशा) में स्थित शल्यकर्षण देश को अपनी प्रखर धारा से वहा कर लाई हुई शिलाओं से पूर्ण कर देने वाली शिला (वहा) नदी को तैर (पार) कर (किया) ॥२-३॥ वह सत्यप्रतिज्ञ भरत वहां शौच स्नान आदि के द्वारा पवित्र हो कर पुनः हिमालय के शिखरों और शिलावहा को देखते हुए चैत्ररथ वन की ओर चले गए ॥४॥ और सरस्वती को मन्दाकिनी गङ्गा के संगम से पार करके वीरमत्स्य देशों के उत्तर भाग से होते हुए भारुण्ड वन में प्रवेश किया ॥५॥ और वेगवाली कुलिङ्गा नाम से प्रसिद्ध, कल-कल शब्द करने वाली तथा पर्वतों से घिरी हुई यमुना के पास (पहुंच) कर जब पार हुए। तब सेना को विश्राम कराया ॥६॥ तदनन्तर महानदी भागीरथी को अंशुधान नगर में दुस्तर जान कर शीघ्र वह रघुनन्दन भरत जी विख्यात प्राग्वट पुर के समीप आए और वह उस प्राग्वट नगर में भागीरथी गङ्गा को तैर (पार) कर आगे चले गए ॥७॥	वाल्मीकीय रामायण में— सुदामा, ह्रादिनी, शतद्रु, शिलावहा, सरस्वती, यमुना, भागीरथी गङ्गा से सिन्धुपर्यन्त अनुलोमानुक्रम वर्णन। सुषोमा, आर्जीकीया, वितस्ता, मरुद्वृधा, असिक्नी, परुष्णी, शुतु दृषद्वती,

*[illegible]

...यों का सुखपूर्वक बोधक-चक्र

...हानदियों के वर्तमान-कालीन नामों का वर्णन पश्चात् शास्त्रोक्त नामों का विलोम अनुलोम अनुक्रम वर्णन

...क नामों का विलोम अनुलोम अनुक्रम वर्णन	संख्याङ्कः	नाम ग्रन्थस्य	अनुलोमानुक्रमस्य बोधकानि प्रमाणानि	अनुलोम अनुक्रम के बोधक प्रमाण
...यास, सतलुज, घग्घर, मार्कण्डा, यमुना, गङ्गा । ...वती, विपाशा, शतद्रु, दृषद्वती, सरस्वती, यमुना, भागीरथी । सरस्वती। (ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में)। ...रामायण में— ...द्रा, सरस्वती, यमुना, भागीरथी, ...नुक्रम वर्णन।	१.	ऋग्वेदस्य १० मण्डले	१३ ११ १ २ ३ ४ १४ १ ५ २ इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। ६ ७ ८ ९ १५ १० असिक्निया मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ऋग्वेदे १० मं० ७५ तमे सू० ५ मन्त्रे ॥ अत्र दृषद्वत्याः सरस्वत्याम् अन्तर्भावः। सुषोमा काचित् सीमाप्रान्तीय नदी । गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, आर्जीकीया, सुषोमा ।	हे गंगे ! हे यमुने ! हे सरस्वती ! हे शुतुद्रि ! तथा हे परुष्णी ! मेरी स्तुति को स्वीकार करो और असिक्नी के सहित हे मरुद्वृधे ! तथा वितस्ता के तथा सुषोमा के सहित ! हे आर्जीकीये ! मेरे द्वारा संबद्ध (रचित) इस स्तुति को श्रवण करो। दृषद्वती का सरस्वती में अन्तर्भाव कर दिया है। सुषोमा कोई सीमाप्रान्तीय नदी है ॥१॥
मरुद्वृधा, असिक्नी, परुष्णी, शुतुद्री, सरस्वती यमुना, गङ्गा दृषद्वती, सरस्वती, यमुना, जाह्नवी दृषद्वती सरस्वती यमुना	२.	महाभारते वन पर्वणि	वैशम्पायन उवाच— पाण्डवास्तु वने वासमुद्दिश्य भरतर्षभाः । प्रययुर्जाह्नवीकूलात् कुरुक्षेत्रं सहानुगाः ॥१॥ ४ ५ २ ३ ६ १ सरस्वतीदृषद्वत्यौ यमुनां च निषेव्य ते। १३ ७ ८ ९ १० ११ १२ ययुर्वनेनैव वनं सततं पश्चिमां दिशम् ॥२॥ महा भा० वन० प० पञ्चमेऽध्याये ॥ समुद्रगा महावेगा यमुना यत्र पाण्डव । सरस्वती महापुण्या ह्रादिनी तीर्थमालिनी ॥३॥ दृषद्वती महापुण्या यत्र ख्याता युधिष्ठिर ॥११॥ महाभारते वन प० धौम्यतीर्थयात्रायां ९०तमेऽध्याये ॥	वैशम्पायन मुनि बोले—हे जनमेजय ! भरतवंश में श्रेष्ठ पाण्डव वन में वास करने का उद्देश्य (निश्चय) करके अपने अनुगामियों के साथ गङ्गातट से कुरुक्षेत्र को गए ॥१॥ वे पाण्डव यमुना और सरस्वती, दृषद्वती इन तीनों को क्रम से सेवन करके तथा एक वन से ही दूसरे वन को सेवन करके निरन्तर पश्चिम दिशा को चले गए ॥२॥ इस प्रकार महाभारत के वनपर्व के ५ अध्याय में कहा है ॥ हे पाण्डव ! यहां पर समुद्रपर्यन्त गमन करने में समर्थ महावेगवती यमुना बहती है। वह उत्तर दिशा है। तीर्थों की माला धारण करने वाली, ह्रादिनी (कलकल शब्द करने वाली) महापवित्र सरस्वती नदी भी उधर ही है तथा यहां पर हे युधिष्ठिर ! महापवित्र दृषद्वती नदी विख्यात है। इस प्रकार श्री महाभारत के वन पर्व के ९०वें अध्याय में कहा है ॥
दृषद्वती, सरस्वती, यमुना	३.	श्रीमद्भागवते	यमुना, सरस्वती, दृषद्वती । श्रीमद्भागवते ५ स्क० भुवनकोशवर्णने १९ अध्याये ॥	यमुना, सरस्वती, दृषद्वती ये सब महानदी हैं। इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के ५ स्कन्ध में भुवनकोशवर्णन नाम १९वें अध्याय में कहा है ॥
दृषद्वती, सरस्वती, यमुना, जाह्नवी	४.	देवीभागवते	१ २ ३ नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती ॥ देवी भा० ८ स्क० १२ अ० ४ श्लोके ॥ जाह्नवी, यमुना, सरस्वती ... ... च सरस्वती। कौशिकी यमुना च मन्दाकिनी दृषद्वती ॥ देवी भा० ८ स्क० २१ अध्याये ॥ सरस्वती, कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती ।	नदियों में गंगा, यमुना, सरस्वती श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार देवी भा० ८ स्क० १२ अध्याय में कहा है ॥ सरस्वती, कौशिकी, यमुना और मन्दाकिनी तथा दृषद्वती ये महानदी हैं। इस प्रकार देवीभागवत के आठवें स्कन्ध में २१ अध्याय में कहा है ॥

भागीरथीं दुष्प्रतरां सोंऽशुधाने महानदीम् । उपायाद् राघवस्तूर्णं प्राग्वटे विश्रुते पुरे ॥९॥

स गङ्गां प्राग्वटे तीर्त्वा ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥

अथाऽनुलोमाऽनुक्रमः

[ऋग्वेदे]

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या । असिक्निया मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया । ऋग्वेदे १० मं० ७५तमे सूक्ते पञ्चमे मन्त्रे ।

हे गङ्गे हे यमुने हे सरस्वति हे शुतुद्रि ! हे परुष्णि ! इमं मे स्तोमम् आसचता आसेवध्वम् । असिक्निया सह हे मरुद्वृधे ! वितस्तया च सुषोमया सह हे आर्जीकीये ! मया संबद्धमिमं स्तोमम् आशृणुहि ।

पाण्डवानां काम्यकवनं गच्छतां मार्गप्राप्तानां नदीनां वर्णनम्

[महाभारते]

वैशम्पायन उवाच—

पाण्डवास्तु वने वासमुद्दिश्य भरतर्षभाः । प्रययुर्जाह्नवीकूलात् कुरुक्षेत्रं सहानुगाः ॥१॥

पुनः वह राघव भरत अंशुधान नाम नगर में महानदी भागीरथी को तरने में अति-कठिन जान कर तुरन्त विख्यात प्राग्वट पुर के समीप गए। उस प्राग्वट में वह गंगा को पार कर आगे चले गए। १. सुदामा (रावी), २. ह्लादिनी (व्यासा), ३. शतद्रु (सतलुज), ४. शिलावहा (दृषद्वती), ५. सरस्वती, ६. यमुना, ७. भागीरथी गंगा। यह महानदियां हैं।

इस प्रकार ऋषिप्रणीत श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण आदिकाव्य के अयोध्या-काण्ड के इकहत्तरवें सर्ग में कहा है ॥

अब अनुलोम रूप अनुक्रम का वर्णन करता हूं

(१) हे गंगे (२) हे यमुने (३) हे सरस्वती (४) हे शुतुद्रि (५) हे परुष्णी मेरे इस स्तोत्र को स्वीकार करो। (६) असिक्नी के सहित (७) हे मरुद्वृधे (८) वितस्ता और (९) सुषोमा के सहित (१०) हे आर्जीकीये ! मेरे द्वारा सम्बद्ध (रचित) इस स्तोत्र को आप सब ओर से सुनो।

महाभारत में

पाण्डवों के काम्यक वन को गमन करते हुए मार्ग में प्राप्त नदियों का वर्णन इस

सरस्वतीदृषद्वत्यौ यमुनां च निषेव्य ते । ययुर्वनेनैव वनं सततं पश्चिमां दिशम् ॥२॥

ततः सरस्वतीकूले समेषु मरुधन्वसु । काम्यकं नाम ददृशुर्वनं मुनिजनप्रियम् ॥३॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि अरण्यपर्वणि पञ्चमेऽध्याये ॥

महाभारते

समुद्रगा महावेगा यमुना यत्र पाण्डव । सरस्वती महापुण्या ह्लादिनी तीर्थमालिनी ॥३॥

यत्र पुण्यतरं तीर्थं प्लक्षावतरणं शुभम् ॥४॥

सरस्वती नदी सद्भिः सततं पार्थ पूजिता ॥१०॥

दृषद्वती महापुण्या यत्र ख्याता युधिष्ठिर ॥११॥

इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि नवतितमेऽध्याये ॥

प्रकार है। वैशम्पायन बोले—वन में निवास का उद्देश्य करके भरतवंश में श्रेष्ठ सब पाण्डव अपने भृत्यों के सहित जाह्नवी गंगा के तीर से कुरुक्षेत्र को चले गए ॥१॥

वे सब यमुना और सरस्वती-दृषद्वती को (समास संगम का बोधक है) संगम पर सेवन कर तथा एक वन से दूसरे वन को सतत सेवन कर अर्थात् एक रात्रि से अधिक कहीं न रुक कर पश्चिम दिशा को गए ॥२॥

तदनन्तर सरस्वती के तीर पर समतल मरुभूमि में मुनिजनों के प्रिय काम्यक नाम वन को उन्होंने देखा ॥३॥

इस प्रकार महाभारत के वनपर्वान्तर्गत अरण्यपर्व के पाँचवें अध्याय में कहा है ॥

(१) भागीरथी (२) यमुना (३) सरस्वती (४) दृपद्वती।

पुनः महाभारत में उक्ति

हे पाण्डव ! यहाँ पर समुद्र तक गमन में समर्थ अतिवेग वाली यमुना है। तथा यहाँ पर तीर्थों की माला धारण करने वाली महापवित्र सरस्वती महानदी है ॥३॥

यहाँ पर पुण्यतर प्लक्षावतरण नाम शुभ तीर्थ है ॥४॥

हे पार्थ ! सरस्वती नदी सत्पुरुषों के द्वारा निरन्तर पूजित है ॥१०॥

हे युधिष्ठिर ! यहाँ पर महापवित्र दृषद्वती विख्यात नदी है। इस प्रकार महाभारत के वनपर्व के नव्वें अध्याय में कहा है ॥११॥

(१) यमुना (२) सरस्वती (३) दृषद्वती।

श्रीमद्भागवते

१. यमुना २. सरस्वती ३. दृषद्वती। इति क्रमः पंचमस्कन्धे।

श्रीदेवीभागवते

नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती। महानदीनामासामाधुनिकनामानि।

१. गंगा २. यमुना ३. मार्कण्डा ४. घघर ५. सतलुज ६. व्यासा ७. रावी ८. चनाव ९. जेहलम १०. सिन्ध। इति दश महानद्यः। ऋग्वेद वर्णितानां तासां विशेषवर्णनं भूचित्रे दर्शनीयम्।

उभे सरस्वतीदृषद्वत्यौ महानद्यौ स्तः क्षुद्रनद्यौ वा

[श्रीमद्भागवतम्]

अस्मिन् विषये प्रमाणानि कथ्यन्ते। भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति। बहवो मलयादिगिरीति चान्ये च शतसहस्रशः सन्त्यसंख्याताः ॥१६॥

श्रीमद्भागवत में

यमुना, सरस्वती, दृषद्वती। यह क्रम पंचम स्कन्द में है।

श्री देवीभागवत में

नदियों में जाह्नवी और यमुना तथा सरस्वती श्रेष्ठ है। ऋग्वेद में वर्णित इन महानदियों के नाम वर्तमान काल में निम्नोक्त है—

(१) गंगा (२) यमुना (३) मार्कण्डा (४) घघर (५) सतलुज (६) व्यास (७) रावी (८) चनाव (९) जेहलम (१०) सिन्ध।

इस प्रकार यह दश महानदियों का अनुक्रम है विशेप रूप से प्राचीन पंचाप भूगोल चित्र में देखने योग्य है जिसका उपचित्र नीचे दिया गया है।

सरस्वती दृषद्वती दोनों महानदी हैं अथवा स्वल्प (लघु) नदी हैं

इस विषय के बोधक प्रमाण कहे जाते हैं।

श्रीमद्भागवत

इस भारतवर्ष में भी नदियां और पर्वत बहुत हैं। इस प्रकार मलयगिरि आदि

एतासामपोभारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥१७॥

चन्द्रवसाः ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी, कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुंगभद्रा कृष्णा, वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धः शोणश्च नदो महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रुश्चन्द्र-भागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥१८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥

श्रीदेवीभागवतेऽपि

नर्मदा च सरस्वती । कौशिकी यमुना चैव मन्दाकिनी दृषद्वती ।

इति अ०. स्कं. २४ अ. १७ श्लोक ॥

भी सैंकड़ों हजारों पर्वत हैं। उनके नितम्ब (कटिभाग) से उत्पन्न नद और नदियां असंख्यात (अनगणित) हैं नाममात्र से भी पवित्र करने वाली इन नदियों के जलों को भी भारतीय प्रजा शरीर से स्पर्श करती अर्थात् स्नान आदि करती है—

१. चन्द्रवसा २. ताम्रपर्णी ३. अवटोदा ४. कृतमाला ५. वैहायसी तथा ६. कावेरी ७. वेणी ८. पयस्विनी ९. शर्करावर्ता १०. तुंगभद्रा ११. कृष्णा १२. वेण्या १३. भीमरथी १४. गोदावरी १५. निर्विन्ध्या १६. पयोष्णी १७. तापी १८. रेवा १९. सुरसा २०. नर्मदा २०. चर्मण्वती २१. सिन्धुरन्धः २२-२३. नद शोण २४. नदी २५. महानदी २६. वेदस्मृति २७. ऋषिकुल्या २८. त्रिसामा २९. कौशिकी ३०. मन्दाकिनी ३१. यमुना ३२. सरस्वती ३३. दृषद्वती ३४. गोमती ३५. सरयू ३६. रोधस्वती ३७. सप्तवती ३८. सुषोमा ३९. शतद्रु ४०. चन्द्रभागा ४१. मरुद्वृधा ४२. वितस्ता ४३. असिक्नी ४४. विश्वा ये सब महानदियां हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भगवतमहापुराण के पंचम स्कन्ध में जम्बुद्वीप वर्णन नाम उन्नीसवें अध्याय में कहा है ॥

श्रीदेवीभागवत में

इस में भी कहा है। नर्मदा और सरस्वती कौशिकी यमुना और मन्दाकिनी तथा दृषद्वती यह महानदिया मैंने संक्षेप से कहीं हैं।

इस प्रकार दे० भा० स्क० २४ अ० १७ श्लोकों॥

अथ वाराहपुराणम्

पिबन्ति चैतासु नदीषु पानीयम् ॥३॥

तद्यथा गंगासिन्धुः सरस्वती शतद्रुः वितस्ता विपाशा चन्द्रभागा सरयू यमुना इरावती देविका कुहूर्गोमती । धूतपापा बाहुदा दृषद्वती कौशिकी निस्वीरा गण्डकी । चक्षुष्मती लोहिता इत्येता हिमवत्पादनिर्गताः । एताः प्रधान्येन कुलपर्वतनद्यः । शेषाः क्षुद्रनद्यः ।

इति बहुभिरेतैः प्रमाणैः सरस्वतीदृषद्वत्योर्महानदीत्वं सिद्धम् । पुनरपि कथ्यते ॥

वायुपुराणम्

पीयन्ते यैरिमा नद्यो गंगा सिन्धुः सरस्वती । शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ॥९४॥

इरावती वितस्ता विपाशा देविका कुहूः । गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥९५॥

कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरा गण्डकी तथा इक्षुर्लोहिता इत्येता हिमवत्पादनि सृताः ॥९६॥

अथ वाराहपुराण

इस में वर्णित नदियों का वर्णन किया जाता है जो हिमालय पर्वत से निकली हैं ।

इन नदियों के तीर वासी प्राणी इन का जल पीते हैं । जो जैसे गंगा आदि । गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु (सतलुज), वितस्ता (जेहलम), विपाशा (व्यास), चन्द्रभागा (चनाव, सरयू, यमुना इरावती, देविका कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, निस्वीरा, गण्डकी, चक्षुष्मती, लोहिता इस प्रकार ये सब हिमवान् के पाद (नीचे) से निकली हैं । इतनी ही मुख्य (महा) कुल संज्ञक पर्वतों की नदियों कही है । शेष सब क्षुद्र नदियाँ हैं । ऐसे बहुत से प्रमाणों द्वारा सरस्वती दृषद्वती का महानदीत्व सिद्ध हुआ पुनः और भी कहा जाता है ।

अथ वायुपुराण से

जिन पुरुषों के द्वारा इन नदियों का जल पिया जाता है वे ये हैं—गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना तथा सरयू नदी ॥९४॥

इरावती, वितस्ता और विपाशा देविका कुहू । गोमती, धूतपापा और बाहुदा और दृषद्वती ॥९५॥

तृतीया[1] और कौशिकी पुनः निश्चीरा तथा गण्डकी (अन्य पुराण में त्रिदिवा नाम है) इक्षु लोहिता ये इतनी ही हिमालय के पाद (नीचे) से निकलती हैं ॥९६॥

---

१. अन्यत्र त्रिदिवा ।

सर्वाः पुण्याः सरस्वत्याः सर्वाः गंगा समुद्रगाः। विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः॥
तासां नद्युपनद्योऽपि शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०९॥

अथ ब्रह्माण्डमहापुराणोक्तम्

पीयन्ते यैरिमा नद्यो गंगा सिन्धुः सरस्वती ॥२४॥
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा। इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥२५॥
गोमती धूतपापा च बुद्‌बुदा च दृषद्वती। कौशिकी त्रिदिवा चैव निष्ठीवी गंडकी तथा ॥२६॥
चक्षुर्लोहिता इत्येता हिमवत्पादनिःसृताः। तास्तु नद्यः सरस्वत्यः सर्वा गंगाःसमुद्रगाः ॥२७॥
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः। तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२८॥

सब सरस्वती के समान पवित्र और प्रवाह वाली हैं और गंगा के समान समुद्र तक गमन करती हैं। सब विश्व की माताएं और सब जगत् का पाप हरने वाली कही हैं ॥१०८॥

उनकी सहायक तथा उपसहायक नदीयाँ भी सैंकडों अथवा हजारों की संख्या में हैं।

अथ ब्रह्माण्डपुराण

[इसमें कथित हिमालय की महानदियां यह हैं]

जो इन नदियों का जल पीते हैं—गंगा, सिन्धु, सरस्वती ॥२४॥

शतद्रु (सतलुज), चन्द्रभागा (चनाव) और यमुना तथा सरयू। इरावती, वितस्ता (जेहलम) और विपाशा (व्यास) देविका, कुहू ॥२५॥

गोमती धूतपापा और बुदबुदा (यह शब्द अशुद्ध प्रतीत होता है अन्यत्र बाहुदा है) और दृशद्वती। कौशिकी त्रिदिवा और निष्ठीवी तथा गण्डकी ॥२६॥

चक्षुलोहिता इस प्रकार ये इतनी हिमालय के पादों से निकली हैं। वे सब नदियाँ सरस्वती के समान हैं और सब गंगा के समान समुद्र पर्यन्त गमन करने वाली हैं ॥२७॥

तथा सब विश्व की माताएं हैं और सब जगत् के पापों को हरने वाली कहीं हैं। उनसे भिन्न और नदियां तथा उपनदियां (उनकी सहायक नदियां) सैंकड़ों अथवा हजारों हैं ॥२८॥

---

१. अन्यत्र बाहुदा।

श्री मार्कण्डेयपुराणे

तै र्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाश्चार्याश्च भागशः ॥१५॥

तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्ताः सम्यङ्निबोध मे। गंगा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथा परा॥

यमुना च शतुद्रुश्च वितस्तेरावती कुहूः। गोमती धूतपापा च बाहुदा सदृषवती ॥१७॥

विपाशा देविका रंक्षुर्निश्चीरा गण्डकी तथा। कौशिकी चापगा विप्र हिमवत्पादनिःसृताः॥

सर्वाः पुण्याः सरस्वत्याः सर्वा गंगाः समुद्रगाः। विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाः पापहरा स्मृताः॥

अन्याः सहस्रशश्चोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तम। प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः॥

इति मार्क० पु० ५७वें अध्याय उक्तम् ॥

श्री मार्कण्डेयपुराण

उन पर्वतों से मिले हुए तथा मलेच्छ और आर्यों के विभाजन पूर्वक जो देश हैं ॥१५॥

उन देशवासियों के द्वारा जिन श्रेष्ठ नदियों के जल पीए जाते हैं उनको सम्यक् (यथार्थ) रूप से मेरे से जान लो।

गंगा, सरस्वती, सिन्धु नदी, चन्द्रभागा तैसे और भी हैं ॥१६॥

यमुना और शतद्रु विपाशा (व्यासा), इरावती, कुहू, गोमती, धूतपापा और बाहुदा दृषद्वती के सहित ॥१७॥

विपाशा, देविका, रंक्षु, निश्चीरा गण्डकी और कौशिकी नदी ये सब महानदी हैं। हे विप्र! ये सब नदियां हिमवान् (हिमालय) के चरणों (निचले भाग) से निकली हैं ॥१८॥

सब ही सरस्वती के समान तो पुण्यदायका या पवित्र हैं और प्रवाह वाली हैं और गंगा के समान समुद्र तक गमन करने वाली हैं। सब विश्व की माताएं हैं तथा सब ही पापों को हरने वाली कही हैं ॥३०॥

हे द्विजों में उत्तम! इन से भिन्न जो हैं वे सब क्षुद्रनदियाँ कहीं हैं। इन में भी कोई तो वर्षा ऋतु में ही वहने वाली हैं और कोई जो है वह सदा वहने वाली है ॥३१॥

इति मार्कण्डेय पुराण ॥

अथ वामनपुराणम्

सरस्वती पंचरूपा कालिंदी च हिरण्यवती ॥२०॥

शतद्रुश्चंद्रिका नीला वितस्तैरावती कुहूः। मधुराहाररावी च उशीरा धातुकी रसा ॥२१॥

गोमती धूतपापा च बाहुदा सदृषद्वती। निःस्वरा गंडकी चित्रा कौशिकी च वधूसरा ॥२२॥

सरयूश्च सलोहित्या हिमवत्पादनिःसृताः। वेदस्मृतिर्वेदसिनी वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ॥२३॥

एताश्चापि महानद्यो हिमवत्पादनिर्गताः। सर्वाः पुण्याः सरस्वत्याः पापप्रशमनास्तथा ॥३३॥

जगतो मातरः सर्वाः सर्वाः सागरयोषितः। अन्याः सहस्रशश्चात्र क्षुद्रनद्योऽहि राक्षस ॥३४॥

सदा कालवहाश्चान्याः प्रावृट्कालवहास्तथा। एता मध्योद्भवोदेशाः पिबन्ति स्वेच्छया शुभाः॥

श्रीवामनपुराणे भुवनकोशवर्णने त्रयोदशोऽध्यायः ॥

अथ वामनपुराण

सरस्वती पंचरूपा (पंच सहायक नदियों से युक्त) कालिन्दी (यमुना) और हिरण्यवती ॥२०॥

शतद्रु (सतलुज), चन्द्रिका, नीला, वितस्ता (जेहलम), इरावती, कुहू, मधुर आहार वाली रावी अथवा मधुराहार और रावी उशीरा, धातुकी, रसा, गोमती और धूत-पापा, बाहुदा सदृषद्वती (दृषद्वती के सहित) निःस्वरा, गण्डकी, चित्रा, कौशिकी और वधूसरा ॥२२॥

सरयू और सलोहित्या ये हिमालय के पादों (नीचे के भाग) से निकली हैं। वेदस्मृति वेदसिनी वृत्रघ्नी और सिन्धु ॥२३॥

ये महानदियां भी हिमालय से निकली हैं। ये सरस्वती के समान पवित्र प्रवाह वाली तथा पापों को शमन करने वाली हैं ॥३३॥

सब ही जगत की माताएं तथा सब समुद्र की पत्नियां हैं। हे अहि राक्षस! इन से भिन्न सहस्रों ही यहाँ क्षुद्र (स्वल्प) नदियाँ हैं ॥३४॥

उनमें से कुछ सदा काल बहने वाली तथा अन्य सब वर्षा काल में ही बहने वाली हैं इनके मध्य में उत्पन्न जो शुभ देश हैं उनके वासी स्वेच्छा पूर्वक इन का जल पीते हैं ॥३५॥

इस प्रकार वामन पुराण में भुवनकोश वर्णन नामक तेहरवां अध्याय कहा है॥

अथ नारदीयपुराणम्

सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ॥७॥

गंगा मन्दाकिनी पुण्या तथैवान्या मधुस्रवा। दृषद्वती कौशिकी च पुण्या हैरण्यवती नदी ॥८॥

वर्षाकालवहाश्चैता वर्जयित्वा सरस्वतीम् । इति कुरुक्षेत्रान्तर्गताः नद्यः ॥

(दृषद्वती ञ्चेत्यध्याहारः कर्तव्यो महानदीत्वात्)

इति नारदीयमहापुराणे उ० भा० कु० क्षे० माहात्म्ये ६५ अध्याये चोक्ताः ॥

महानदी-त्रयं वर्णनम्

[स्कन्दपुराणम्]

ऋषय ऊचुः—

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानामिह भूतले। श्रूयते सूत कात्स्न्येंन कीर्त्यमाना मुनीश्वरैः ॥

कथं लभ्यते सर्वेषां तीर्थानां स्नानजं फलम्। अल्पायुभिर्महाभाग कलिकाले उपस्थिते ॥२॥

सूत उवाच—

महानदीत्रयं चैव सर्वपातकनाशनम् ॥४॥

श्री नारदीयपुराण

जहां पुण्यदायक वा पवित्र सरस्वती नदी तथा वैतरणी नदी है ॥७॥

पवित्र मंदाकिनी गंगा, तैसे ही अन्य मधुस्रवा नाम की नदी है। दृषद्वती, कौशिकी और पवित्र हैरण्यवती नदी है ॥८॥

सरस्वती को त्याग कर ये सब वर्षा काल में वहने वाला हैं। यहां महानदी होने से दृषद्वती भी ग्रहण करने योग्य है।

इति नारदीयपुराण में कुरुक्षेत्र माहात्म्य के अन्तर्गत यह कथन है ॥

स्कन्द पुराण में वर्णित महानदी त्रय

ऋषियों ने कहा—हे सूत ! इस भूमि पर सम्पूर्ण सार्ध ३½ करोड़ तीर्थ मुनीश्वरों द्वारा कथित (कहे हुए) सुने जाते हैं ॥१॥

हे महाभाग ! कलियुग के विद्यमान होने पर अल्प आयु वाले मनुष्यों को सब तीर्थों का स्नानजन्य फल कैसे उपलब्ध हो ॥२॥

सूत बोले—महानदियों का त्रिक ही सब पातकों (पापों) का नाश करने वाला है ॥४॥

गंगानदी स्मृता पूर्वा नर्मदाख्या तथा परा। सरस्वती तृतीया तु नदी प्लक्षसमुद्भवा ॥२५॥

तासु सर्वासु यः स्नाति चतुर्विंशतिभाग्भवेत् ॥२६॥

ऐतेष्वेव हि सर्वेषु यः स्नानं कुरुते नरः। सार्धकोटित्रयस्यात्र स कृत्स्नं फलमाप्नुयात् ॥२७॥

यश्चैकस्मिन्नरः स्नाति स त्रिकस्य फलं लभेत् ॥२८॥

इति श्रीस्कन्दमहापुराणे प्रोक्तम् ॥

मार्कंडैव सरस्वती

इदानीं युक्त्यापि सिद्धम् क्रियते। यथोक्तम्। तर्कप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिरिति। अतः सांप्रतं मार्कण्डायाः सरस्वतीत्वं साध्यतेऽनुमानेन। मार्कण्डैव सरस्वती। महानदीत्वाद्ब्रह्मावर्तपूर्वासीमावोधिकत्वान्मार्कण्डेयाश्रमनिर्गत्वाच्च यन्नैवं तन्नैवम्। यथेयं वर्तमानकाले कल्पिता क्षुद्रनदीति।

दृपद्वती-प्रकरणम्

वामनपुराणम्—

दृपद्वत्यां नरः स्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः ॥४८॥

उसमें प्रथम गंगा नदी कही है तथा दूसरी नर्मदा नाम से विख्यात है। और प्लक्ष से उत्पन्न तीसरी सरस्वती नदी है ॥२५॥

इन सब में जो स्नान करता है वह चौवीस तीर्थों के फल का भागी होता है ॥२६॥,

और जो नर इन सब (चौवीस) तीर्थों में भी स्नान कर लेता है। वह यहीं सार्ध तीन (साढ़े तीन) करोड़ तीर्थों के सम्पूर्ण फल को प्राप्त होता है ॥३७॥

जो एक ही नदीरूप तीर्थ में स्नान करता है उसे तीनों का फल उपलब्ध होता है।

अब युक्ति से भी सिद्ध किया जाता है। जैसे कहा है कि तर्क (युक्ति) और प्रमाण दोनों से वस्तु (पदार्थ) की सिद्धि होती है। इस लिए अब मार्कण्डा नदी का सरस्वतीत्व अनुमान प्रमाण से सिद्ध किया जाता है। मार्कण्डा ही सरस्वती है। महानदी तथा ब्रह्मावर्त की सीमा का बोध कर्त्री तथा मार्कण्डेय मुनि के आश्रम से निर्गमन (निकलने) रूप हेतुओं से। जो ऐसे न हैं वह सरस्वती भी नहीं। जैसे यह वर्तमान काल में कल्पित क्षुद्र (स्वल्प) नदी है।

दृपद्वती-प्रकरण

[दृपद्वती नदी का माहात्म्य]

वामनपुराण दृषद्वती नदी में मनुष्य स्नान कर और देवताओं का तर्पण करके तथा (तैसे)

अग्निष्टोमातिरात्रस्य फलं विन्दति मानवः । सोमक्षये च संप्राप्ते सोमस्य च दिने यथा ॥४९॥

इति श्रीवामनपुराणे सरो महात्म्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

श्रीकालिका उपपुराणम्—

सर्वां क्षितिं वशे चक्रेऽमात्यैः स चन्द्रशेखरः । सार्वभौमो नृपो भूत्वा राजभिः परिषेवितः । अमरैरिव देवेन्द्रो विजहार श्रिया युतः । एवं पौष्यसुतो भूत्वा त्र्यम्बकः प्राप्य निर्वृतिम् ।

ब्रह्मावर्ताह्वये रम्ये कारवीराह्वये पुरे । दृषद्वती नदीतीरे राजा भूत्वा मुमोद ह ॥

इति श्री कालिकापुराणे ४६ अध्याये । इति शब्दकल्पद्रुमे ॥

अनुमानेनापि साध्यते : यथा इदानीम्

घर्घरैव (घग्घर) दृषद्वती नद्यस्ति । महानदीत्वात् मार्कण्डायां (सरस्वत्यां) संगमत्वाद् ब्रह्मावर्तपश्चिमसीमाबोधकत्वात् । यन्नैवं तन्नैवं । यथेयं वर्तमानकल्पिता क्षुद्र नदी राकसी । इति ।

सोमक्षय (अमावस) अरु सोमवार के दिन विशेष स्नान अरु तर्पण करके मानव अग्निष्टोम और अतिरात्र नाम यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ॥४९॥

इस प्रकार श्री वामनपुराण के सर माहात्म्य में छत्तीसवें अध्याय में कहा है ।।

श्री कालिका पुराण—उस चन्द्रशेखर ने मन्त्रियों सहित सम्पूर्ण पृथिवी को वश में कर लिया । अरु सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा होकर अन्य राजाओं से पूर्ण सेवित हुआ । श्री (राजलक्ष्मी) के साथ ऐसे क्रीड़ा को जैसे देवराज इन्द्र देवताओं के साथ करते हैं । इस प्रकार पौष्य राजा का पुत्र होकर वह त्र्यम्बक भगवान सुख को प्राप्त करके ब्रह्मावर्त नाम मनोहर देश में दृषद्वती नदी के तीर पर करवीर नाम पुर (राजधानी) में राजा होकर प्रसन्नता को प्राप्त हुए । ऐसे शब्दकल्पद्रुम में कहा है ।

अब अनुमान प्रमाण से भी सिद्ध किया जाता है जैसे—घघर ही दृषद्वती नदी है महानदी होने से । (सरस्वती) मार्कण्डा में संगम और ब्रह्मावर्त की पश्चिम सीमा बोधक होने से । जो ऐसे नहीं सो दृषद्वती भी नहीं । जैसे यह वर्तमान काल में कल्पित अति स्वल्प नदी राकसी ।

दृषद्वत्याः सरस्वत्यां संगमो भवति

दृषद्वत्या अप्ययेऽपोनप्त्रीत्यामिष्टिं निर्वपेत् ।

(लाट्यायन श्रौतसूत्रे० १० अध्या० १७ प्रपा०१ सूत्रे)

अप्ययः संगमः । सरस्वत्या एकीभाव इति भाष्यम् । दृषद्वत्यप्ययेऽपोनप्त्रीयश्चरुः ।

(कात्यायन० श्रौतसूत्रम् अ० २४-६ का० ६ सू०)

दृषद्वत्या अप्ययेऽपोनप्त्रीयं चरुम् ।

(ताण्डय० ब्रा० २५ अ० १० खंडे सू० १५)

दृषद्वत्यादि पंचनदीनां संगमः

पंच नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे भवत्सरित् ॥

इति शु० यजु० वे० अ० ३४॥११॥

वैतरण्याद्याः पंचनद्य एव सरस्वत्यां संगमं प्राप्नुवन्ति । ताः सर्वा नारदवामनपुराणयोः कुरुक्षेत्रमाहात्म्ये वर्णिताः सन्ति । यथा—

नारद पुराणम—

सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी । गंगा मन्दाकिनी पुण्या तथैवान्या मधुस्रवा ॥७॥

दृषद्वती का सरस्वती में संगम होता है

दृषद्वती के संगम में अपो नप्तृ (अग्नि) देवता की प्रीति के लिए तत्-संबंधि इष्टि (याग) करे। ऐसा लाट्यायन श्रौतसूत्र के १० अध्याय में कहा है। अप्यय नाम संगम का है। सरस्वती के साथ एकरूपिता ऐसा भाष्य में कहा है।

दृषद्वती के संगम में अपोनप्तृ (अग्नि) देवता संबंधि चरुः (हव्यान्न) प्रदान करे। कात्यायन श्रौतसूत्र दृषद्वती के संगम में अपो नप्तृ (अग्नि) देवता संबंधि चरु करे।

वैतरण्यादि पांच नदीयां अपने स्रोतों अर्थात् सहायक नदियों के सहित सरस्वती में मिलती हैं। मानो वह सरस्वती नदी ही उस देश (ब्रह्मावर्त) में अपने से भिन्न पांच रूप धार कर नदी हुई ॥११॥

वैतरणी नदी से आदि लेकर पांच नदीयां ही सरस्वती में संगम को प्राप्त होती हैं। वह सब नारद और वामन पुराण के कुरुक्षेत्र ब्रह्मावर्त माहात्म्य में वर्णन की गई हैं। जैसे प्रथम ना० पु०।

जैसे सरस्वती नदी पवित्र है तैसे ही वैतरणी नदी भी पवित्र है तथा (तैसे) मन्दाकिनी गंगा भी पवित्र है और अन्य जो मधुस्रवा है वह भी वैसे हो पवित्र है ॥७॥

दृषद्वती कौशिकी च पुण्या हैरण्यवती नदी । वर्षाकालवहाश्चैता वर्जयित्वा सरस्वतीम् ॥८॥

इति नारदपुराणे कुरुक्षेत्रमाहात्म्ये वर्णिताः सप्त नद्यः ॥

इति ना० पु० कु० मा० उ० भा० अ० ६४ ॥

वामनपुराणम्—

सप्त नदीः शृणुत मे द्विजाः । सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ॥६॥

इत्यादिश्लोकैर्वर्णिता उपर्युक्ता एव सप्त नद्यः कथिताः । विशेषेण तत्रैव द्रष्टव्याः । अत्र सरस्वतीं मुक्त्वा शेषाः षण्नद्यः सन्ति । परन्तु यजुर्वेदे (३४,११) पंच नद्य उक्ताः । तस्य समाधानम् ।

महाभारतम् यथा—

कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्याश्च भारत । स्नाति वै नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

श्रीम० भा० व० प० ८३ अध्याये ॥

अत्र कौशिक्या दृषद्वत्यां संगमात् शेषाः पंचनद्यः शिष्टाः, याश्च वेदेन संगताः । तासां सरस्वत्या संगम उचितमेव । परन्तु शुक्लयजुर्वेदसंहितायां भाष्यकारैः उव्वटैर्दृषद्वती

दृषद्वती, कौशिकी तथा हैरण्यवती नदियां भी पवित्र हैं । यह सब सरस्वती को छोड़ कर वर्षा काल में ही बहने वाली हैं । यहां महानदी होने से दृषद्वती का भी अध्याहार (ग्रहण) कर लेना चाहिए ॥८॥

इस प्रकार ना० पु० कु० क्षे० मा० उ० भा० ६४ अध्याय में ॥

वामन पुराण—हे ऋषियो ! अब आप मेरे से सात नदियों को सुनो । यथा सरस्वती नदी पवित्र है तैसे वैतरणी नदी भी है ॥६॥

इस प्रकार इन श्लोकों के द्वारा भी ऊपर कही हुई वही सात नदियां कहीं हैं । विशेष करके वामन पुराण कुरुक्षेत्र माहात्म्य में ही देखें । जो इस ग्रन्थ के अन्त में दिया गया है । यहां पर सरस्वती से भिन्न छः नदियां कही हैं । परन्तु यजुर्वेद में पांच नदियों का संगम कहा है । उसका समाधान ।

जैसे म० भा०—हे भारत ! कौशिकी के और दृषद्वती के संगम में जो पुरुष स्नान करता है वह आहार का संयम करके सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥

श्रीम० भा० व० प० ८३ अध्याय ॥

जहां पर कौशिकी का दृषद्वती में संगम हो जाने से पांच नदियां ही शेष रहती हैं । जो वेद से संगत (मिलती) हैं । उनका सरस्वती में संगम उचित ही है ।

शतद्रुः, विपाशा, इरावती (रावी), चन्द्रभागा च पंच नद्यः सरस्वत्यां संगच्छन्तीत्युक्तम् । तन्न युक्तम् । कथम् । यदि त्वेतासां तस्यां संगमं बभूवुः । तर्हि तस्या लोपः कथम्भवितुं शक्यते । तथा प्रमाणस्यापि यत्राभावोऽस्ति । तदर्थं ग्रहणायोग्यम् । अनेनायं प्रतीयते । ते विद्वांसः केवलं वेदानामेव ज्ञातारो बभूवुः । अन्येषां पुराणादीनां न । ये पुराणादीनां ज्ञानेन हीनाः सन्ति । ते न पूर्णविद्वांसः । यथा भागवतस्कन्दपुराणयोरुक्तम् ।

श्रीमद्भागवतम् —

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः । इतिहासपुराणं च पंचमो वेद उच्यते ॥

इति श्रीम० पु० १ स्कं० ४ अ० ॥

स्कन्दपुराणम् —

वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणं वै द्विजोत्तमाः । वेदाः प्रतिष्ठताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः ॥९०॥

बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं चालयिष्यति । इतिहासपुराणैस्तु निश्चलोऽयं कृतः पुरा ॥९१॥

परन्तु शुक्ल यजुर्वेद संहिता के भाष्यकार उव्वट जी ने दृषद्वती, सतलुज, व्यास, रावी, चनाब ये पांच नदियां संगम को प्राप्त होती हैं। ऐसा कहा है। सो उचित (यथार्थ) नहीं। कैसे? जो यदि इन सबका उस सरस्वती में संगम होता था। तब उसका लोप कैसे हो सकता है और उसमें उन्होंने कोई प्रमाण भी नहीं दिया। जिसमें प्रमाण का अभाव है वह अर्थ कभी ग्रहण करने योग्य नहीं। इससे यह प्रतीत होता है कि वह विद्वान् केवल वेदों के ही ज्ञाता थे। अन्य पुराण इतिहास आदि शास्त्रों के नहीं। जो पुराण आदि ज्ञान से हीन हैं वह पूर्ण विद्वान् नहीं। जैसे भागवत और स्कन्द पुराण में कहा है।

भागवत पुराण—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चारों का जैसे उद्धार किया वैसे इतिहास (महाभारत) और पुराणों का भी उद्धार (संकलन) किया। यह दोनों मिला कर पंचम वेद कहा जाता है।

इस प्रकार भागवत में कहा है॥

स्कन्द पुराण—हे ऋषियो ! मैं वेद के समान ही पुराण को भी निश्चल (परिवर्तन रहित) मानता हूं। सारे वेद पुराण में प्रतिष्ठित (स्थापित) हैं। इस में संदेह नहीं ॥९०।

(अल्पश्रुत वेदों का थोड़ा सा अर्थ जानने वाले)ःवेद से भी भय करता (डरता) है कि यह पुरुष मुझ को भी चलायमान (कुठाराघात) करेगा अर्थात् अर्थ का अनर्थ करेगा। इस लिये पहले (प्राचीन) काल से ही इतिहास और पुराणों के द्वारा यह वेद का अर्थ निश्चित कर दिया है ॥९१॥

यन्न दृष्टं हि वेदेषु न दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः । उभयोर्यन्न दृष्टं च तत्पुराणेषु गीयते ॥९२॥

यो वेद चतुरो वेदान्सांगोपनिषदो द्विजः । पुराणं नैव जानाति न च स स्याद्विचक्षणः ॥९३॥

इति श्री स्क० पु० प्र० खं० २ अ० ॥

अतश्चायं निश्चितः । इतिहासपुराणयोः प्रमाणैः सह वेदानां यथार्थज्ञानं भवति ।

अथ ब्रह्मावर्तकुरुक्षेत्रयो र्विवेचनम्

उभौ तौ किमेकस्य जनपदस्य द्वे नाम्नी स्तोऽथवा पृथगेव जनपदौ । अस्मिन् विषये प्रमाणानि उद्ध्रियन्ते ।

मनुस्मृत्याम्—

सरस्वतीदृषद्वत्यो र्देवनद्यो यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥१७॥

अयं श्लोको नारदीयवामनपुराणयोरपि किंचित् पाठान्तरेण पठितोऽस्ति ।

स्पष्टस्तदग्रे कुरुक्षेत्रमाहात्म्ये द्रष्टव्यः ॥१८॥

जो अर्थ वेदों में नहीं देखा जाता हे ऋषियो ! जो स्मृतियों में भी नहीं देखा गया । जो दोनों में नहीं मिलता । वह पुराणों में गाया (कहा) गया है ॥९२॥

जो द्विज व्याकरण ज्योतिष आदि अंगों और ईश केन आदि उपनिषदों के सहित वेदों को जानता है । परन्तु पुराण को नहीं जानता है वह विद्वान् नहीं होता है ॥९३॥

इससे यह निश्चित हो गया कि इतिहास (महाभारत और वाल्मीकीय रामायण) पुराण (जो १८) हैं दोनों के प्रमाणों द्वारा ही वेदों का यथार्थ ज्ञान होता है । अन्यथा नहीं ।

इसके अनन्तर ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्र दोनों का विवेचन किया जाता है

वह दोनों क्या एक ही देश के दो नाम हैं । अथवा भिन्न भिन्न देश हैं । इस विषय में प्रमाणों को कथन किया जाता है । (जैसे मनुस्मृति में कहा है) कि सरस्वती और दृषद्वती दोनों देवनदियों के मध्य में जो देवताओं का निर्माण किया हुआ देश है । उसको ब्रह्मावर्त कहते हैं ॥१७॥

यही श्लोक नारद तथा वामनपुराण में भी किंचित् (कुछ) पाठभेद से वर्णन

---

१. तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः । वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते । मनु० २ १८ श्लोकः ।

उस देश में जो क्रम पूर्वक परम्परा से आया हुआ चारों वर्ण तथा वर्ण संकरों का आचार है वही सदाचार कहा जाता है । यह मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में १७,१८वें श्लोकों में कहा है ।

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः । एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥१९॥

श्रीमद्भागवते---

ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान् सारस्वतानथ । मरुधन्वतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ॥३४-३५॥
आनर्तान् भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहोमनाग्विभुः ।

इति श्रीमद्भागवते महा० १ स्क० १० अध्याये ॥

मेघदूते—

ब्रह्मावर्तंजनपदमथछायया गाहमानः । क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः (इति प्रथम मेघे ४८ श्लोके) । इत्येतैः प्रमाणैः तयोः पृथकत्वं कथितम् ।

महाभारते—

दक्षिणेन सरस्वत्या उत्तरेण दृषद्वतीम् । ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ।

इति महाभा० वन० प० ८३वें अध्याये ॥

वामनपुराणे—

सरस्वतीदृषद्वत्योरंतरे कुरुजांगले ।

इति वा० पु० २२ अ० ४७ श्लोके ॥

किया है । वह आगे कुरुक्षेत्र महात्म्य में देखने योग्य है । कुरुक्षेत्र और मत्स्य तथा पंचाल और शूरसेन यह ब्रह्म ऋषियों का देश ब्रह्मावर्त से अनन्तर (बाह्य) है ॥१९॥

श्रीमद्भागवत---हे भार्गव ! ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य और सरस्वती सम्बन्धी (नदतटी) देश तथा मरुभूमि को अतिक्रमण (उल्लंघन) कर के किंचित् थक गए हैं वाहन घोड़े जिनके वह भगवान् कृष्ण सौवीर और आभीर (आहीर) दोनों देशों के परे जो आनर्तदेश उनके समीप पहुंच गए ।

इस प्रकार भा० १ स्कन्ध १० अध्याय में कहा है ॥

मेघदूत में कालिदास ने भी कहा है— कि इसके पश्चात् ब्रह्मावर्त को अपनी छाया से आच्छादन करते हुए क्षत्रियों के परस्पर विनाश से निन्दित जो कुरु राजा का क्षेत्र (कुरुक्षेत्र) उन को भजो (चले जाओ) । इस प्रकार इन प्रमाणों के द्वारा उन दोनों का भेद ही कथन किया गया है । अब एकत्व कथन किया जाता है ।

जैसे महाभारत में कथन है—सरस्वती के दक्षिण (दाहिने) भाग से दृषद्वती के उत्तर (वाम) भाग पर्यन्त कुरुक्षेत्र भूमि में जो लोग वास करते हैं वे सब स्वर्ग में ही निवास करते हैं ।

इति महाभा० वन० प० ८३वें अध्याय में ॥

वामन पुराण---सरस्वती और दृषद्वती दोनों नदियों के मध्य में कुरु जंगल है ।

इत्येताभ्यां प्रमाणाभ्यां तयोरेकत्वं दृश्यते। विरोधस्य परिहारः।

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं रामह्रदानां च मचक्रुकस्य च।

एतत् कुरुक्षेत्रसमन्तपंचकं प्रजापतेरुत्तरवेदि रुच्यते ॥२४॥

इति म० भा० श० ॥

अथ शब्दकल्पद्रुमे वृहत्कोशेऽप्युक्तम्—

समन्तपंचकं, क्ली, (समन्तात् पचकं ह्रदपंचकं यत्र) कुरुक्षेत्रम्। तच्च कुरुपाण्डवयोर्युद्धस्थानम्। तत्र पुरा परशुरामः क्षत्रियरुधिरेण पंचह्रदान् चकार। यथा—

त्रिसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः। समन्तपंचके पंच कृतवान् रुधिरैः ह्रदान्।

इति पाद्मे भूमीखण्डे १२४वें अध्याये ॥

तस्य माहात्म्यं सीमा च यथा—

पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरीक्षे च पुष्करम्। त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते। इत्यारभ्य—तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं रामह्रदानां मचक्रुकस्य च। एतत् कुरुक्षेत्रसमन्त-

---

उसमें इस प्रकार इन दोनों प्रमाणों से उन ब्रह्मावर्त और (कुरुक्षेत्र) दोनों को एकता ही ज्ञात होती है। अब इस विरोध के परिहार बोधक प्रमाण कहे जाते हैं। तरन्तुक और अरन्तुक दोनों यक्षों के मध्य में जो और परशुराम कृत पंच सरोवरों तथा मचक्रुक यक्ष के मध्य में जो भूभाग है। यही समन्त पंचक कुरुक्षेत्र नाम से विख्यात प्रजापति की उत्तर वेदी कही गई है। इसी प्रकार महाभारत के शल्यपर्व में कहा है। अब शब्द-कल्पद्रुम नाम वृहत् (बड़े) कोश में भी एसे ही कहा है।

शब्द समन्त पंचकं। नपुंसक लिंग। इसका अर्थ व्युत्पत्ति सहित (समन्त सब ओर से ह्रद पंचक यत्र, सरोवर पांच यहां पर है वह) कुरुक्षेत्र है। और वही कुरु और पाण्डुपुत्रों के युद्ध की भूमि है। वहां पर पूर्वकाल में परशुराम ने क्षत्रियों के रक्त (खून) से पांच सरोवर पूर्ण करके यज्ञ किया था। यथा (जैसे) इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से रहित करके प्रभु (भगवान् विष्णु के अंशावतार) परशुराम ने समन्त पंचक कुरुक्षेत्र में रक्त से पांच सरोवरों को पुर्ण किया अथवा भरा था।

इस प्रकार पद्मपुराण के भूमि खण्ड के १२४वें अध्याय में कहा है॥

उसका महात्म्य अरु सीमा भूमि में नैमिषारण्य तीर्थ और अन्तरिक्ष में पुष्कर तीर्थ प्रधान है परन्तु कुरुक्षेत्र तीनों लोकों में ही प्रधान है इस प्रकार से आरम्भ करके तरन्तुक और अरन्तुक दोनों यक्षों के मध्य में तथा परशुराम कृत पांच सरोवरों के और मचक्रुक नाम

पंचकं पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ।

इति श्री महाभारतीयवनपर्वणि ८३ अध्यायः ॥

इति शब्दकल्पद्रुमे पंचमकाण्डे समन्तपंचकार्थे ॥

वामनपुराणेऽपि समन्तपंचकस्यार्थमुक्तम्—

समन्तपंचकं नाम धर्मस्थानमनुत्तमम् । आसमन्ताद् योजनानि पंच पंच च सर्वतः ॥१५॥

इति वा० पु० २२ अध्याये १५ श्लोके ॥

इत्येतैः प्रमाणैस्तयोः सीम्नो भेदः प्रदर्शितः । अतोऽनेन सीमाभेदेन हेतुना ब्रह्मावर्त-समन्तपंचकौ पृथगेव जनपदौ इति सिद्धम् । परन्तु कुरुक्षेत्रसंज्ञा उभयोर्दृश्यते तयोर्भेदकर्त्री सरस्वती महानदी अस्ति । यथा—

वामनपुराणे—

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो नागह्रदं स्मृतम् । कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम् ।

द्वारपाल के मध्यवर्ति भूमि का जो भाग है यही समन्त पंचक कुरुक्षेत्र है और पितामह (ब्रह्मा) की उत्तर वेदी कहा है।

इस प्रकार श्री महाभारत के वन पर्वान्तर्गत ८३वें अध्याय में है।

यह शब्द-कल्पद्रुम नाम कोश के पंचम काण्ड में समन्त-पंचक शब्द का अर्थ किया है।

वामन पुराण में भी समन्त पंचक का अर्थ मुनि ने स्वयं लिखा है। सो जैसे—समन्त-पंचक नाम धर्म स्थान (तीर्थ) सब तीर्थों से उत्तम है। इसकी सीमा सब ओर से अथवा चारों ओर से पांच पांच योजन (बीस बीस कोस हैं) ॥१५॥

इस प्रकार वामन पुराण के २२वें अध्याय में कहा है ॥

इस प्रकार नारदीय-पुराण में भी कहा है। वह आगे देख लें ॥

इस प्रकार इन उपरोक्त प्रमाणों के द्वारा इन दोनों की सीमा का भेद दिखाया गया है अर्थात् दोनों की सीमा भिन्न भिन्न वर्णन की है।

अतः इस सीमा के भेद रूप हेतु से ब्रह्मावर्त और समन्त पंचक दोनों पृथक् पृथक् देश हैं। यह सिद्ध हुआ। परन्तु कुरुक्षेत्र संज्ञा दोनों की दिखाई गई है। उनको विभाजन करने वाली सरस्वती महानदी है।

जैसे कहा है कि आदि काल में इस भूमि का नाम पवित्र ब्रह्म सरोवर था। पश्चात् नागह्रद नाम से कहा जाने लगा। जब से राज ऋषि कुरु ने कर्षण किया (जोता) उस काल से कुरुक्षेत्र कहा गया।

तस्य मध्येन वै याहि पुण्यापुण्यजलावहा ।

इति वामनपुराणे मार्कण्डेयेन मुनिना सरस्वत्याः प्रत्युक्तम् ॥

एवं ब्रह्मावर्तकुरुक्षेत्रं समन्तपंचककुरुक्षेत्रं चेति द्वाभ्यां नामाभ्यां शास्त्रे वर्णितम् ।

किन्तु लोके केवलं समन्तपंचककुरुक्षेत्रस्यैव ख्यात्यस्ति । ब्रह्मावर्तकुरुक्षेत्रं लोकेऽज्ञात-मेवाभवत् ।

एवं ज्ञात्वा मया तत्प्रतिबोधाय प्रयत्नः कृतः । ननु यदा स्मृतिकर्ता स्वायम्भुवो मनुरभवत् तदा कुरुक्षेत्रस्याभाव आसीत् । तर्हि तस्य वर्णनं कथम् । इति चेच्छृणु । सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । इति वेदमन्त्रानुसारं यथा पूर्वकल्पान्तर्गतं कुरुक्षेत्रं बभूव । तद्वदस्मिन् कल्पेऽपि पितामहेन निर्मितम् । स एव स्वायम्भुवमनोः काले ब्रह्मर्षि देशः पुनर्जायमान एव ब्रह्मावर्तादनन्तरः कथितः । परन्तु योऽस्मिन् वैवस्वतमन्वन्तरे कुरुरित्यभिधेयो राजा बभूव । स ब्रह्मावर्तं देशं चकर्ष । अतः तस्यापि नाम कुरुक्षेत्रमभवत् । तथा ब्रह्मावर्तमित्यपि । अथवातूभावेव चकर्षतु । उपर्युक्तप्रमाणेनापि चायमेव सिध्यति ।

हे पवित्र अपवित्र जल को वहाने वाली सरस्वति ! तुम उसके मध्य भाग से होकर चली जाओ ।

इस प्रकार वामनपुराण के ३२वें अध्याय में मार्कण्डेय मुनि ने
सरस्वती के प्रति कहा है ॥

इस प्रकार इसका विभाग हो जाने से इसको ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र और समन्त पंचक कुरुक्षेत्र दो नामों से शास्त्र में वर्णन किया है । किन्तु लोक में केवल समन्त-पंचक कुरुक्षेत्र ही प्रसिद्ध है । ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र तो संसार में अज्ञात ही हो गया है । ऐसा जानकर मैंने उसको जनाने के प्रति प्रयत्न किया है । सफलता दैवाधीन है । शंका । जिस काल में स्मृतिकार स्वायम्भुव मनु हुआ । उस काल में कुरुक्षेत्र का अभाव था । तब उन्होंने उसका वर्णन कैसे किया । यदि ऐसे शंका है तो सुनो ! जैसे वेदमन्त्र में कहा है । विधाता ने सूर्य चन्द्रमा दोनों की जैसे पूर्व कल्प में रचना की थी । वैसे ही इसमें रचा है । इस वेद मन्त्र के अनुसार जैसे पूर्व कल्प में कुरुक्षेत्र था । उसी के समान इस कल्प में भी पितामह ब्रह्मा जी ने निर्माण किया । वह पुनः निर्माण किया हुआ ही स्वायम्भुव मनु काल में ब्रह्मावर्त से अनन्तर ब्रह्म ऋषि देश मनु ने कथन किया है । परन्तु जो इस वैवस्वत मन्वन्तर में चन्द्रवंश में कुरु नाम का राजा हुआ । उसने ब्रह्मावर्त देश को जोता । इसी से उसका नाम भी कुरुक्षेत्र हुआ तथा ब्रह्मावर्त भी रहा । अथवा दोनों को कर्षण किया है । यही ऊपर कहे हुए प्रमाण से भी सिद्ध होता है ।

एवं ब्रह्मावर्तकुरुक्षेत्रयोर्यथार्थज्ञानं वस्तुतः सरस्वतीदृशद्वत्योर्निर्णयास्याधीनत्वादेवमया तयोर्निर्णयार्थं प्रमाणैः पूर्वं प्रयत्नः कृतः ।

समन्तपञ्चकस्य महिमा

[महाभारते]

ऋषय ऊचु —

प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते सनातनं राम समन्तपंचकम् ।
समीजिरे यत्र दिवौकसा वरेण सत्रेण महावरप्रदाः ॥१॥

पुरा च राजर्षिवरेण धीमता बहूनि वर्षाण्यमितेन तेजसा ।
प्रकृष्टमेतत् कुरुणा महात्मना ततः कुरुक्षेत्रमितीह पप्रथे ॥२॥

नातः परतरं पुण्यं भूमेः स्थानं भविष्यति । इह तपस्यन्ति ये केचित्तपः परमकं नराः ॥१७॥
देहत्यागेन ते सर्वे यास्यन्ति ब्रह्मणः क्षयम् । ये पुनः पुण्यभाजो वै दानं दास्यन्ति मानवाः ॥

इस प्रकार ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्र दोनों का यथार्थ ज्ञान तो वास्तव में सरस्वती तथा दृषद्वती दोनों के निर्णय के अधीन है । इस कारण मैंने प्रथम प्रमाणों के द्वारा ही निर्णय करने के लिए निमित्त प्रयत्न किया है ।

समन्त पंचक कुरुक्षेत्र महिमा

[महाभारत में]

ऋषियों ने कहा—हे राम ! सनातन समन्त पंचक प्रजापति की उत्तरवेदी कही जाती है । यहाँ पर पूर्व काल में महा वर प्रदान करने वाले देवलोकवासी देवताओं ने उत्तम यज्ञों से यजन किया था ॥१॥

इसी क्षेत्र को पुरा काल में राज ऋषियों में श्रेष्ठ बुद्धिमान् महात्मा कुरु ने असीम तेज के द्वारा जोता था । उसी समय से इस लोक में कुरुक्षेत्र इस नाम से विख्यात हुआ ॥२॥

इससे परे दूसरा भूमि का पवित्र स्थान नहीं होगा ।

जो कोई मनुष्य इस स्थान में सर्वोत्तम तप करेंगे । वे सब देह त्याग कर ब्रह्मलोक या ब्रह्मपद को प्राप्त होंगे ॥१७॥

पुनः ये पुण्य के भागी मानव दान देंगे ॥१८॥

तेषां सहस्रगुणितं भविष्यत्यचिरेण वै । ये चेह नित्यं मनुजा निवत्स्यन्ति शुभेप्सिणः ॥१९॥
यमस्य विषयं ते तु न द्रक्ष्यन्ति कदाचन । पांसवोऽपि कुरुक्षेत्राद् वायुना समुदीरिताः ।
अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥२२॥

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं रामह्रदानां च मचक्रुकस्य च ।
एतत् कुरुक्षेत्रसमन्तपंचकं प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते ॥२४॥

इति श्री महाभा० श० प० बलरामती० या० सारस्वतोप० त्रिपंचाशततमोऽध्यायः ॥

ईषद्विस्तरेण कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्यम्

[वामनपुराणान्तर्गतम्]

देवदेव उवाच—

तस्यां तपत्यां नरसत्तमेन, जातः सुतः पार्थिवलक्षणस्तु ।
स जातकर्मादिभिरेव संस्कृतो, ह्यवर्धताज्येन हुतो यथाग्निः ॥१॥

उनके वह दान निश्चय शीघ्र ही सहस्र (हजार) गुणा हो जायेंगे और जो शुभ फल के इच्छुक मनुष्य इस भूमि में निवास करेंगे ॥१९॥

वे लोक पुनः यम के लोक को कदाचित् (कभी) नहीं देखेंगे (जायेंगे) कुरुक्षेत्र से वायु के द्वारा सम्यक् उडाई गई धूलि भी दुष्टकर्म करने वाले को भी परम गति को ले जाती हैं ॥२२॥

तरन्तुक यक्ष और अरन्तुक दोनों का मध्य भाग और परशुराम के ह्रदों (कुण्डों) का तथा मचक्रुक के मध्य की जो भूमि यह ही कुरुक्षेत्र समन्त पंचक नाम प्रजापति की उत्तरवेदी कही जाती है ॥२४॥

इस प्रकार श्री महाभारत के शल्यपर्व में बलराम तीर्थ यात्रा
में सा० उपा० नाम ५३ वाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

किंचिद्विस्तार पूर्वक कुरुक्षेत्र के दोनों भागों का माहात्म्य वर्णन

[वामनपुराण उक्त]

देवों के देव बोले—उस तपती में नर श्रेष्ठ राजा संवर्ण से राजा के योग्य लक्षणों से युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ । वह जात कर्म (जन्म समय का कर्म) आदि संस्कारों से संस्कृत हुआ ऐसे बुद्धि को प्राप्त हुआ जैसे घृत की आहुतियों से अग्नि देव वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१॥

कृतं च चूडाकरणं तु देवा, विप्रेण मित्रावरुणात्मजेन ।
नवाब्दिकस्य व्रतवंधनं च, वेदे च शास्त्रे विधिपारगोऽभूत् ॥२॥

ततश्चतुःषड्भिरपीह वर्षैः, सर्वज्ञतामभ्यगमत्ततोऽसौ ।
ख्यातः पृथिव्यां पुरुषोत्तमोऽसौ, नाम्ना कुरुः संवरणस्य पुत्रः ॥३॥

ततो नरपतिर्दृष्ट्वा पुत्रं तं षोडशब्दिकम्, दारक्रियार्थमकरोद्यत्नं शुभकुले ततः ॥४॥
सौदाम्नीं च सुदाम्नस्तु सुतां रूपाधिकां नृपः, कुरोरर्थाय वृतवान्स प्रादात्कुरवेऽपि ताम् ॥५॥
स तां नृपसुतां लब्ध्वा स्वधर्मानविरोधयन्, रेमे तन्व्या सह तया पौलोम्या मघवानिव ॥६॥
ततो नरपतिः पुत्रं राज्यभारक्षमं बली, विदित्वा यौवराज्याय विधानेनाभ्यषेचयत् ॥७॥
ततो राज्येऽभिषिक्तस्तु कुरुः पित्रा निजे पदे, स पालयामास महीं पुत्रवच्च प्रजाः स्वयम् ॥८॥

हे देवताओ ! पुनः मित्रावरुण ऋषि के पुत्र वसिष्ठ ब्राह्मण के द्वारा चूडाकरण संस्कार किया गया और नव (नौ) वर्ष की आयु में ब्रह्मचर्य व्रत के पालन अर्थ उपनयन संस्कार हुआ । तथा गुरुकुल में विद्या अध्ययन करता हुआ वेद में तथा अन्य शास्त्र में विधि के अनुसार अथवा वेदशास्त्र सहित तदुक्त विधि (कर्मानुष्ठान) में भी पारगामी हुआ ॥२॥

तत्पश्चात् वह इस लोक में ही चार छः वर्ष के अनन्तर सर्वज्ञाता (सर्व विद्याओं के ज्ञान) को प्राप्त हो गया । तदनन्तर वह संवरण का पुत्र पुरुषों में श्रेष्ठ भूमि पर कुरु नाम से विख्यात हुआ ॥३॥

उसके अनन्तर राजा संवरण ने उस पुत्र को षोडश (सोलह १६) वर्ष का हुआ देख कर तत्पश्चात् शुभ कुल में विवाह अर्थ यत्न किया ॥४॥

और राजा ने रूप में सब से अधिक सुदामा की पुत्री सौदाम्नी को कुरु के लिए वरण किया (याचना की) । उस राजा ने भी कुरु के लिए उस अपनी कन्या को प्रदान कर दिया ॥५॥

वह राजा कुरु उस राजकन्या को उपलब्ध करके अपने वर्णाश्रम धर्मों का विरोध (त्याग) न करते हुए उस कृश शरीर वाली के साथ ऐसे रमण करने लगे जैसे देवराज इन्द्र पौलोमी के साथ रमण करते हैं ॥६॥

तत्पश्चात् नरपति बलवान् संवरण ने पुत्र को राज्य के भार को संभालने में समर्थ जानकर शास्त्र की विधि के अनुसार युवराज के पद पर अभिषेक कर दिया ॥७॥

पिता के द्वारा निज राज्य अधिकार पर अभिषेक हुए उस कुरु राजा ने भूमि और प्रजाओं का पुत्र के समान पालन किया ॥८॥

स एव क्षेत्रपालोऽभूत् पशुपालः स एव हि, स एव राजपालश्च अजापालो महाबलः ॥९॥
ततोऽस्य बुद्धिरुत्पन्ना ह्यस्मिल्लोके गरीयसी। यावत्कीर्तिः सुसंस्था हि तावद्वासस्तया सह ॥
अस्त्वेवं नृपतिश्रेष्ठो यथातथ्यममन्यत। विचचार महीं सर्वां कीत्यर्थं तु नराधिपः ॥११॥
ततो द्वैतवनं नाम पुण्यं लोकचरो वशी। तदाऽसावतिसंतुष्टो विवेशाभ्यन्तरं ततः ॥१२॥
तत्र देवीं ददर्शाथ पुण्यां पापविमोचनीम्। प्लक्षजां ब्रह्मणः पुत्रीं हरिजिह्वां सरस्वतीम् ॥
सुदर्शनस्य जननीं ह्रदं कृत्वा सुविस्तृतम्। तस्यास्तज्जलमासाद्य स्नात्वा प्रीतोऽभवन्नृपः ॥
समाजगाम च पुनर्ब्रह्मणो वेदीमुत्तराम्। समन्तपंचकं नाम धर्मस्थानमनुत्तमम् ॥१५॥
आसमन्ताद् योजनानि पंच पंच च सर्वतः।

देवाः उवाच—

किमन्या वेदयो देव ब्रह्मणः पुरुषोत्तम ॥१६॥

वह ही क्षेत्रपाल हुआ तथा वही पशुपाल भी हुआ। तथा महाबलवान होने से वह ही राजपाल और अजापाल भी हुआ ॥९॥

उसके पश्चात् इस भूलोक में ही इस कुरु राजा की महत्वपूर्ण बुद्धि उत्पन्न हुई। कि जब तक कीर्ति है। और जब तक इस लोक की स्थिति है। अथवा जब तक कीर्ति की स्थिति है। तब तक ही उसके साथ निवास हो अर्थात् नाम रहे ॥१०॥

इस प्रकार उस श्रेष्ठ राजा ने यथार्थ ही जाना। पुनः वह राजा कीर्ति के लिए संपूर्ण पृथिवी में विचरा ॥११॥

तदनन्तर लोक है वश में जिसके वह लोक में विचरने वाला राजा कुरु पवित्र द्वैतवन में पहुंचा। तब वह अतिसंतुष्ट (प्रसन्न) हुआ पश्चात् उसके भीतर प्रवेश किया ॥१२॥

उस वन में प्रवेश करने के अनन्तर वहां पर पापों को नाश करने वाली भगवान् हरि की जिह्वा ब्रह्मा जी की पुत्री प्लक्ष (पाकर) से उत्पन्न होने वाली पवित्र सरस्वती देवी को देखा ॥१३॥

जो सुदर्शन की माता है। उस को देखा। पुनः शोभनविस्तार युक्त सरोवर का निर्माण कर के और सरस्वती का जल उस में लाकर तथा स्नान करके राजा प्रसन्नता को प्राप्त हुआ ॥१४॥

पुनः वह राजा कुरु ब्रह्मा जी की उत्तरवेदी को चला आया। जिसका नाम समन्त पंचक है। तथा अनुत्तम (जिससे उत्तम कोई नहीं) धर्मस्थान (तीर्थ) है ॥१५॥

और वह सर्वतः (सब ओर से) पंच पंच योजन विस्तार वाला है।

देवता बोले—हे पुरुषोत्तम देव! क्या ब्रह्मा जी की अन्य (और) भी वेदियां हैं ॥१६॥

हरिरुवाच—

येनोत्तरतया वेदी गदिता सर्वपंचके। वेदयो लोकनाथस्य पंचधर्मस्य सर्वतः ॥१७॥

यासु चेष्टं सुरेशेन लोकनाथेन शंभुना। प्रयागो मध्यमा वेदिः पूर्वा वेदिर्गया शिरः ॥१८॥

विरजा दक्षिणा वेदिरनन्तफलदायिनी। प्रतीची पुष्करा वेदिस्त्रिभिः कुण्डैरलंकृता ॥१९॥

समन्तपंचके चोक्ता वेदिरेवोत्तरा तथा। तदमन्यत राजर्षिरिदं क्षेत्रमहाफलम् ॥२०॥

करिष्यामि कृषिष्यामि सर्वान् कामान् यथेप्सितम्। इति संचित्य मनसा त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम् ॥

चक्रे कीर्त्यर्थमतुलं स्थानं तत्पार्थिवर्षभः। कृत्वा सीरं स सौवर्णं गृह्य रुद्रवृषं प्रभुः ॥२२॥

वोढारं याम्यमहिषं स्वयं कर्षितुमुद्यत। तं कर्षन्तं नरवरं समभ्येत्य शतक्रतुः ॥२३॥

प्रोवाच राजन् किमिदं भवान्कर्तुमिहोद्यतः। राजाब्रवीत्सुरवरं तपः सत्यं क्षमा दयाम् ॥२४॥

जिस कारण से आपने सर्वतः पंचक में उत्तरवेदी नाम से कथन किया है। श्री हरि बोले—हे देवताओ ! लोक के स्वामी धर्म की सर्व ओर से पांच वेदियां हैं ॥१७॥

जिन में देवेश ने तथा लोकों के स्वामी शंभु ने अथवा स्वयंभु ने यज्ञ किया था। प्रयाग मध्यम वेदी है और पूर्व वेदी गयाशिर है ॥१८॥

अनन्त फल देने वाली विरजा दक्षिण वेदी है। पश्चिम वेदी तीन कुण्डों (सरोवरों) से अलंकृत पुष्कर राज है ॥१९॥

तथा (वैसे) समन्तपंचक में उत्तरवेदी कही है। इस कारण से राजऋषि कुरु ने इस क्षेत्र (भूमि) को ही महाफल दायक करूंगा। ऐसा निश्चय किया ॥२०॥

तथा यथेष्ट (इच्छा अनुसार) सर्व कामनाओं को कर्पण करूंगा (जोतूंगा)। इस प्रकार मन से सम्यक् चिन्तन (विचार) कर और उत्तम रथ को त्याग कर ॥२१॥

राजाओं में श्रेष्ठ कुरु ने कीर्ति (यश) के लिए उस स्थान को अतुल (समानता रहित) कर दिया। उस समर्थ राजा ने सुवर्ण का हल बनाकर भगवान् रुद्र (शंकर) के बैल (नन्दिगण) को ग्रहण कर (लेकर) ॥२२॥

तथा यमराज के वाहन महिष (भैंसे) को लेकर स्वयं कर्पण करने (जोतने) के लिए उद्यत हुआ उस कर्पण करते हुए राजा के समीप आकर सौ यज्ञ करने वाले इन्द्र ने कहा ॥२३॥

हे राजन् ! आप इस समय यहां यह क्या करने के लिए उद्यत (तत्पर) हुए हैं। राजा ने देवराज से कहा कि मैं तप, सत्य, क्षमा, दया ॥२४॥

कृषामि शौचदाने च योगं च ब्रह्मचारिताम् । तं चोवाच हरिर्देवः कस्माद्बीजं नरेश्वर ॥२५॥

लब्धं त्वयेति सहसा ह्यवहस्य गतस्ततः । गतेऽपि शक्रे नृपतिरहन्यहनि सीरधृक् ॥२६॥

कृषतेऽन्यत्समन्ताच्च सप्तक्रोशान्महीपतिः । ततोऽहमब्रुवं गत्वा कुरो किमिदमित्यथ ॥२७॥

तदाष्टांगं महाधर्मं समाख्यातं नृपेण हि । ततो मयास्य गदितं नृपबीजं क्व तिष्ठति ॥२८॥

स चाह मम देहस्थं बीजं तमहमब्रुवम् । देह्यहं वापयिष्यामि सीरं कृषतु वै भवान् ॥२९॥

ततो नृपतिना बाहुर्दक्षिणः प्रसृतः कृतः । प्रसृतं तं भुजं दृष्ट्वा महाचक्रेण वेगतः ॥३०॥

सहस्रधा प्रचिच्छेद् यस्मादेकभुजोऽभवत् । ततः सव्यो भुजो राज्ञा दत्तश्छिन्नोऽप्यसौ मया ॥

तथैवोरुयुगं प्रादान्मया च्छिन्नौ च तावुभौ । ततः स मे शिरः प्रादात्तेन प्रीतोऽस्मि तस्य च ॥

शौच (बाह्यान्तर पवित्रता) और दान और योग और ब्रह्मचर्य को कर्षण करूंगा। तब हरिदेव (इन्द्र) ने उस राजा को कहा। हे नरेश्वर! किस से बीज को उपलब्ध करोगे। अर्थात् बीज कहां है ॥२५॥

तुम्हारे से उपलब्ध हुए बीज को बोऊंगा। इस प्रकार कहने पर हंसी या हठपूर्वक उपहास करके वहां से चला गया ॥२६॥

इन्द्र के चले जाने पर भी सुवर्ण हल को धारण करने वाला राजा प्रतिदिन सात कोस भूमि कर्षण करता रहा। वह पृथिवीपति दूसरे दिन दूसरे सात कोस इस प्रकार सब ओर से कर्षण करता रहा। तत्पश्चात् मैंने जाकर कहा। हे कुरु! यह क्या करते हो ॥२७॥

तब इस प्रकार कहने के अनन्तर राजा ने अष्टांग (अष्ट अंगों वाले) महाधर्म को कथन किया। तब मैंने उससे कहा कि हे राजन्! बीज कहां स्थित (रखा) है ॥२८॥

उसने कहा—बीज मेरे शरीर में है। तब मैंने उस राजा को कहा। दो मैं बोऊंगा। आप हल को ही कर्षण करें ॥२९॥

तब राजा ने दक्षिण (दाहिनी) भुजा पसारी। पसारी हुई भुजा को देख कर महा (सुदर्शन) चक्र से वेग पूर्वक ॥३०॥

सहस्र (हजार) भागों में काट दिया। जिस से राजा एक भुजा वाला हो गया। तदनन्तर राजा ने सव्य (वाम) भुजा प्रदान की। वह भी मैंने छेदन कर डाली ॥३१॥

तैसे ही उसने दोनों उरुओं को प्रदान किया। वह भी दोनों मैंने छेदन कर दिए। तब उसने मेरे प्रति शिर प्रदान किया। तिस कारण से मैंने उसके प्रति कहा मैं बहुत प्रसन्न हूं ॥३२॥

कुरुरुवाच—

वरदोऽसीत्यथेत्युक्ते कुरुर्वरमयाचत। यावदेतन्मया कृष्टं धर्मक्षेत्रं तदस्तु वः ॥३३॥

स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलं त्विह। उपवासश्च दानं च स्नानं जप्यं च माधव ॥

होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाप्यशुभं विभो। त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शंखचक्रगदाधर ॥३५॥

अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्वत्र महाफलम्। तथा भवान्सुरैः सार्द्धं समं देवेन शूलिना ॥३६॥

वसात्र पुंडरीकाक्ष मन्नाम व्यंजकेऽच्युत। इत्येवमुक्तस्तेनाहं राज्ञा बाढमुवाच तम् ॥३७॥

तथा च त्वं दिव्यवपुर्भव भूयो महीपते। तथांतकाले मय्येव लयमेष्यसि सुव्रत ॥३८॥

शाश्वती तव कीर्तिश्च भविष्यति न संशयः। तत्र वै याजको यज्ञान्यजिष्यसि सहस्रशः ॥३९॥

पुलस्त्युवाच—

तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः। यक्षं च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पन्नगम् ॥४०॥

तुम वर देने योग्य हो। इस प्रकार कहने के अनन्तर कुरु ने वर के लिए याचना की। कुरु बोले—जितना यह भूभाग मैंने कर्षण किया (जोता) है। आपके अनुग्रह से वह धर्म क्षेत्र हो जाये ॥३३॥

सांग वेदों का अध्ययन करने के अननन्तर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के लिए उसका अंग भूत स्नान करने वाले ब्राह्मणों के और मरे हुए पुरुषों के लिए इस स्थान में पुण्य का फल महान् हो ॥३४॥

तथा हे माधव! उपवास और दान और स्नान और जप और होम-यज्ञ, आदिक शब्द से तप का ग्रहण है। हे व्यापक प्रभु! तथा अन्य भी जो शुभ वा अशुभ कर्म हैं। हे हृषिकेश! हे शंख चक्र गदा धारण करने वाले प्रभु ॥३५॥

इस प्रधान क्षेत्र में उपरोक्त धर्मों का महाफल अक्षय हो। कमल नेत्र! हे अच्युत! तथा (तैसे) आप देवताओं के सहित तथा त्रिशूलपाणि महादेव के साथ ॥३६॥

मेरे नाम को व्यक्त करने वाले इस कुरुक्षेत्र में वास करो। ऐसे ही जब उस राजा ने कहा तब मैंने उसको कहा। सत्य है। यह प्रतिज्ञा की ॥३७॥

हे पृथिवीपते! तैसे तुम भी पुनः दिव्य शरीर हो जाओ। हे शोभन व्रत वाले अथवा हे धर्मनिष्ठ! तैसे अन्त (मृत्यु) काल में भी मेरे में ही लय या लीन होवेंगे और तुम्हारी कीर्ति भी नित्य होवेगी। इसमें सन्देह नहीं। और वहां पर यज्ञ कराने वाला ऋत्विग् सहस्रों (हजारों) यज्ञों का तुमसे यजन करायेगा ॥३९॥

पुलस्ति बोले—उस पुरुषोत्तम ने उस कुरुक्षेत्र की रक्षा के लिए चन्द्र नाम यक्ष को और वासुकि नाम सर्प को भी दिया ॥४०॥

विद्याधरं शंकुकर्णं सुकेशं राक्षसेश्वरम् । अजावनं च नृपतिं महादेवं च पावकम् ।।४१।।

एतानि सर्वतोऽभ्येत्य रक्षति कुरुजांगलम् ।
अमीषां बलिनोऽन्ये च भृत्याश्चैवानुयायिनः ।।४४।।

अष्टौ सहस्राणि धनुर्धराणां निवारयंतीह सुदुष्कृतान्वै ।
स्नातुं न यच्छन्ति महोग्ररूपास्त्वन्यस्य ते वीरचरा चराणाम् ।।४३।।

तस्यैव मध्ये बहुपुण्ययुक्तं, पृथूदकं पापहरं शिवं च ।
पुण्या नदी प्राङ्मुखतां प्रयाता, जलौघयुक्तस्य सुता जलाढ्या ।।४४।।

पूर्वं नदीयं प्रपितामहेन, सृष्टा समं भूतगणैः समस्तैः ।
महीं जलं वह्निसमीरमेव, खं त्वेवमादौ विचभौ पृथूदकम् ।।४५।।

सर्वं तथा तोयधयो महान्तस्तीर्थानि नद्यः स्रवणाःसरांसि ।
संनिर्मितानीह महाभुजेन स देवमार्गः सलिलं हि तेषु ।।४६।।

तथा शंकु कर्ण विद्याधर और सुकेश नाम राक्षस राज को और अजावन नाम राजा को और महादेव नाम पावक (अग्नि) को भी दिया ।।४१।।

यह सब ओर से समीप आकर कुरु जांगल की रक्षा करते हैं। इनके अन्य (और) भी बहुत से आज्ञा में चलने वाले बलवान् भृत्य (सेवक) हैं ।।४२।।

जिन धनुष धारियों की संख्या आठ सहस्र (हजार) है। हे वीर! वे महान् उग्र (घोर) रूप वाले अतिदुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों को इस भूमि में जाने से हटाते हैं। तथा अन्य भी जो चर (जंगम) अचर (स्थावर) प्राणी हैं। उनको स्नान नहीं करने देते हैं ।।४३।।

उस कुरुक्षेत्र के ही मध्य में बहुत पुण्य से युक्त अथवा पवित्रता से युक्त और पापों को हरने वाला कल्याण करने वाला पृथूदक (पेहोवा) नाम तीर्थ है। यहां पर जल समूह से युक्त ब्रह्म सरोवर की पुत्री तथा जल से भरी हुई पवित्र नदी सरस्वती प्राङ्मुख (पूर्ववाहनी) हुई है ।।४४।।

पूर्व काल में प्रपितामह ब्रह्मा जी ने समस्त भूत समुदाय सहित इस नदी को उत्पन्न किया था। तथा पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश को भी आदिकाल में ही रचा था। ऐसे ही पृथूदक (पेहोवा) भी आदि काल में ही प्रादुर्भाव हुआ ।।४५।।

तैसे ही महान समुद्र महातीर्थ नदियों झरने सरोवर ये सब इस भूमि पर महाबाहु ब्रह्मा जी ने निर्माण किए। उन में जो जल है। वह ही देवलोक का मार्ग है। प्रायः जल ही से संपूर्ण शुभ कर्म होते हैं। इस लिए जल को देव मार्ग कहा है ।।४६।।

सरस्वतीदृषद्वत्योरन्तरे कुरुजांगले, मुनिप्रवरमासीनं पुराणं लोमहर्षणम् ।

अपृच्छन्त द्विजवराः प्रभवं सुरसत्तमाः ॥४७॥

ऋषय उवाच—

प्रमाणं सरसो ब्रूहि तीर्थानां च विशेषतः ॥४८॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तान्द्विजांल्लोमहर्षणः । प्रणिपत्य पुराणर्षिमिदं वचनमब्रवीत् ॥४९॥

लोमहर्षण उवाच—

ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थं विष्णुं च लक्ष्मीसहितं तथैव ।

रुद्रं च देवं प्रणिपत्य मूर्ध्ना तीर्थं वरं ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये ॥५०॥

रन्तुकादौजसं चापि पावनाच्चतुर्मुखम् । सरः संनिहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु ॥५१॥

कलिद्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना । सरः प्रमाणं यत्प्रोक्तं तच्छृण्वन्तु द्विजोत्तमाः ॥५२॥

विश्वेश्वराद्धस्ति पुरं तथा कन्याजरद्गवी । यावदोघवती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः ॥५३॥

हे देवताओं में श्रेष्ठ ! सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों नदियों के मध्य (बीच) में जो कुरु का जंगल है । उसमें बैठे हुए वे मुनियों में श्रेष्ठ पुराणों के वक्ता अथवा प्राचीन लोम हर्षण को द्विजश्रेष्ठ ऋषियों ने सरोवर की उत्पत्ति या प्रभाव पूछा ॥४७॥

ऋषियों ने कहा—हे सूत ! ब्रह्म सरोवर तथा कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत अन्य तीर्थों का प्रमाण (माप) विशेष रूप से वर्णन करो ॥४८॥

उनका यह वचन सुन कर पुराणों के श्रोता और द्रष्टा लोम हर्षण ने उन विप्रों को प्रणाम करके यह वचन कहा ॥४९॥

लोम हर्षण बोले—कमल के आसन पर विराजमान भगवान् ब्रह्मा जी को तथा लक्ष्मी के सहित भगवान् विष्णु को तथा भगवान् रुद्रदेव को मस्तक के साथ प्रणाम करके तीर्थों में श्रेष्ठ ब्रह्मसरोवर को विशेष रूप से कहूंगा ॥५०॥

रन्तुक से औजस पर्यन्त और पावन से भी चतुर्मुख पर्यन्त ब्रह्मा जी ने पूर्व काल से ही सन्निहित सर कहा है ॥५१॥

हे ऋषियो ! कलियुग और द्वापर के मध्य (सन्धि) में महात्मा व्यास जी ने सरोवर का प्रमाण (माप) जो (जितना) कहा है । उसको सुनो ॥५२॥

विश्वेश्वर (सर्वेश्वर) से हस्तिपुर तक तथा कन्या जरद्गवी से ओघवती नदी पर्यन्त जितनी भूमि कही है । उतना संनिहित सर है ॥५३॥

मया श्रुतं प्रमाणं तु कथयमानं तु वामनम्। तच्छृण्वन्तु द्विजश्रेष्ठाः पुण्यं वृद्धिकरं महत् ॥

विश्वेश्वराद्देववरात्पावनी च सरस्वती । सरःसंनिहितं प्रोक्तं समन्तादर्द्धयोजनम् ॥५५॥

एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः। सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थं चापरे स्थिताः ॥५६॥

आद्यैषा ब्राह्मणो वेदिस्ततो रामह्रदः स्मृतः। कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम् ॥५७॥

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥

अथ वामनपुराणम्

लोमहर्षण उवाच—

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः । नदी प्रवाहसंयुक्ता कुरुक्षेत्रं विवेश ह ॥१॥

तत्र साऽरन्तुकं प्राप्य पुण्यतोया सरस्वती । कुरुक्षेत्रं समाप्लाव्य प्रयाता पश्चिमां दिशम् ॥२॥

हे ऋषियो ! वामन भगवान् के द्वारा कहा हुआ जो प्रमाण (माप) मैंने सुना है। उसको भी सुनो। वह पुण्य की महावृद्धि करने वाला है ॥५४॥

देव श्रेष्ठ विश्वेश्वर (सर्वेश्वर) से पवित्र सरस्वती नदी पर्यन्त संनिहित सर कहा है जो सब ओर से अर्ध (आधा) योजन (दो कोस) है ॥५५॥

मिलकर आये हुए देवता और ऋषि दोनों इसको आश्रय करके मुक्ति की कामना के निमित्त सेवन करते हैं। तथा इन से भिन्न दूसरे लोक जो वहां स्थित हैं। वह स्वर्ग की कामना से सेवन करते हैं ॥५६॥

आदि काल में यह भूमि ब्रह्मा की वेदी कही जाती थी। उसके पश्चात् रामह्रद नाम से कहा गया जब से कुरु राजा ने कर्षण किया। तब से कुरुक्षेत्र नाम हुआ ॥५७॥

इस प्रकार श्री वामनपुराण के सरोवर माहात्म्य में बाइसवां अध्याय
समाप्त हुआ ॥

अथ वामनपुराण का तेतीसवां अध्याय प्रारंभ होता है

लोमहर्षण बोले—इस प्रकार बुद्धिमान् मार्कण्डेय ऋषि के वचन को सुनकर सरस्वती नदी ने प्रवाह संयुक्त कुरुक्षेत्र में ही प्रवेश किया ॥१॥

वहां पर पवित्र जल वाली सरस्वती नदी अरन्तुक में पहुंच कर और कुरुक्षेत्र को सम्यक् रूप से प्लावन (सींच) कर पश्चिम दिशा को चली गई ॥२॥

तत्र तीर्थसहस्राणि ऋषिभिः सेवितानि च । तान्यहं कीर्तयिष्यामि प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥३॥

तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम् । स्नानं पुण्यकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः ॥४॥

ये स्मरिष्यन्ति तीर्थानां देवताः प्रीणयन्ति च । स्नान्ति च श्रद्दधानाश्च ते यान्ति परमां गतिम् ॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यंतरः शुचिः ॥

कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् । अप्येतां वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७॥

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं ध्रुवम् । वासः पुंसा कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥८॥

सरस्वती दृषद्वत्योर्द्वयोर्नद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥९॥

दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि वसाम्यहम् । एवं यः सततं ब्रूयात् सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥

तत्रैव च वसन्धीरः सरस्वत्यास्तटे स्थितः । तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयं भविष्यति न संशयः ॥११॥

वहां पर ऋषियों द्वारा सेवित सहस्रों (हजारों) तीर्थ हैं । परमेष्ठी ब्रह्मा जी के अनुग्रह से मैं उन सबको वर्णन करूंगा ॥३॥

तीर्थों का स्मरण शुभ फल देने वाला और दर्शन पापों को नाश करने वाला है । और स्नान तो दुष्कर्म करने वाले को भी पवित्र करने वाला कहा है ॥४॥

और जो लोक तीर्थों का स्मरण करेंगे । वह मानो देवता को प्रसन्न करते हैं । और जो श्रद्धा पूर्वक स्नान करते हैं । वह परम गति को प्राप्त होते हैं । अपवित्र हो या पवित्र अथवा सब अवस्थाओं को भी प्राप्त हुआ हो तद्यपि कमलनेत्र भगवान् विष्णु का जो स्मरण करे । वह अन्तर और वाह्य दोनों प्रकार से शुद्ध हो जाता है । मैं कुरुक्षेत्र को जाऊंगा और कुरुक्षेत्र में वसूंगा । इस वाक्य को उच्चारण करके भी सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥७॥

ब्रह्म तत्व का ज्ञान और गया तीर्थ में कराया हुआ श्राद्ध तथा गऊ के व्याघ्र (चीता) आदि के द्वारा पकड़े जाने पर उसको छुडाते समय हुई जो अटल मृत्यु और कुरुक्षेत्र में निवास यह चार प्रकार की मुक्ति कही है । अर्थात् चारों मुक्ति के साधन हैं ॥८॥

सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों नदियों का जो मध्य भाग है । उस देवताओं द्वारा निर्मित देश को ब्रह्मावर्त कहते हैं ॥९॥

दूर देश में स्थित होने पर भी मैं कुरुक्षेत्र को जाऊंगा । और वहां वसता हूं । इस प्रकार जो पुरुष निरन्तर उच्चारण करे । वह भी सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥१०॥

उस कुरुक्षेत्र में ही निवास करता हुआ जो धीर पुरुष सरस्वती नदी के तट पर स्थित होता है । उसको ब्रह्म रूप ज्ञान अवश्य होगा । इस में सन्देह नहीं ॥११॥

देवता ऋषयः सिद्धाः सेवन्ते कुरुजांगलम् । तस्य संसेवनान्नित्यं ब्रह्मं चात्मनि पश्यति ।।
चंचलं हि मनुष्यत्वं प्राप्य ये मोक्षकांक्षिणः । वसन्ति नियतात्मानो येऽपि दुष्कृतकारिण ।।
ते विमुक्ताश्च कलुषैरनेकजन्मसम्भवैः । पश्यन्ति निर्मलं देवं हृदयस्थं सनातनम् ।।१४।।
ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पुण्यं संनिहितं सरः । सेवमाना नरा नित्यं प्राप्नुवन्ति परं पदम् ।।१५।।
ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद्भयम् । कुरुक्षेत्रमृतानां च पतनं नैव विद्यते ।।१६।।
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः । गन्धर्वाश्चाप्सरो यक्षाः सेवन्ते स्थानकांक्षिणः ।।१७।।
गत्वा तु श्रद्धया युक्तः स्नात्वा स्थाणुमहाह्रदे । मनसा चिंतितं कामं लभते नात्र संशयः ।।
नियमं नरः कृत्वा च सरः कृत्वा प्रदक्षिणम् । रन्तुकं च समासाद्य क्षामयित्वा पुनः पुनः ।।

देवता, ऋषि, सिद्धलोक भी कुरु के जंगल को सेवन करते हैं। उसके सम्यक् प्रकार से सेवन करने से नित्य ब्रह्म को आत्मा में देखता है। अथवा नित्य ही देखता है।।१२।।

ज्ञान का साधन भूत मनुष्य शरीर निश्चय ही चंचल (क्षण भंगुर) है। इसको पाकर जो मुमुक्षु लोक वहां बसते हैं। और जो दुष्कर्म करने वाले भी मन को संयम कर वहां वास करते हैं ।।१३।।

तो वह उनसे मानों मुक्त ही हैं। और जो पूर्वजन्म कृत पाप कर्मों से मुक्त होने के लिए वहां वसते हैं। तो वह भी उनसे मुक्त हैं। इस में तो कहना ही क्या है। किन्तु वह मुमुक्षु उनसे मुक्त हो हृदय में स्थित सनातन (नित्य) निर्मल (माया मल रहित) परमदेव (परमात्मा) को भी देखते हैं ।।१४।।

ब्रह्मा जी की उत्तरवेदी कुरुक्षेत्र तथा संनिहित सर को श्रद्धा से नित्य सेवन करने वाले मनुष्य परम पद को प्राप्त होते हैं ।।१५।।

ग्रह (नव) नक्षत्र (अश्वनी आदि) तथा अन्य भी जो तारा गण हैं। उनको काल के द्वारा गिरने का भय है। परन्तु कुरुक्षेत्र में मरने वालों का पतन नहीं होता है ।।१६।।

जिसका निज पद की स्थिति की इच्छा वाले अथवा उत्तम पद की इच्छा वाले ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, सिद्ध और चारण, गन्धर्व, यक्ष और अप्सरायें ये सब सेवन करते हैं ।।१७।।

और श्रद्धा से युक्त हुआ पुरुष वहाँ की यात्रा करके तथा स्थाणु नाम महा सरोवर में स्नान कर के मनोंवांछित कामना को उपलब्ध कर लेता है। इस में संदेह नहीं ।।१८।।

और वहां के नियम को पूर्ण करके तथा सरोवर की परिक्रमा करके और सरस्वती नदी में स्नान करके तथा अरन्तुक नाम यक्ष के समीप पहुंच कर उसका दर्शन कर के और

सरस्वत्यां नरः स्नात्वा यक्षं दृष्ट्वा प्रणम्य च। पुष्पं धूपं च नैवेद्यं दत्वा वाचमुदीरयेत् ॥
भ्रमिष्यामि च तीर्थानि ह्यविघ्नं कुरु मे सदा।

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

कुरुक्षेत्रस्य ब्रह्मावर्तस्य च माहात्म्यम्

[नारदपुराणम्]

मोहिन्युवाच---

वसो कृपालो धर्मज्ञस्त्वया बहुविदा मम। तीर्थराजस्य माहात्म्यं प्रयागस्य निरूपितम् ॥१॥

यत्सर्वतीर्थमुख्येषु कुरुक्षेत्रं शुभावहम्। पावनं सर्वलोकानां तन्ममाचक्ष्व सांप्रतम् ॥२॥

वसुरुवाच---

शृणु मोहिनि वक्ष्यामि कुरुक्षेत्रं सुपुण्यदम्। यत्र गत्वा नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

तत्र तीर्थान्यनेकानि सेवितानि मुनीश्वरैः। तान्यहं तेऽभिधास्यामि शृण्वतां मुक्तिदानि च ॥४॥

प्रणाम करके और पुष्प (फूल) धूप और नैवेद्य (भोग) अर्पण करके और पुनः पुनः (वार-वार) क्षमा मांग कर इस वाक्य को उच्चारण करे ॥१९-२०॥

हे द्वारपाल। मैं कुरुक्षेत्र के तीर्थों में भ्रमण (यात्रा) करूंगा। उसमें सदा कभी विघ्न न करें।

इस प्रकार श्रीवामनपुराण के सर माहात्म्य में तैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र और समन्तपंचक कुरुक्षेत्र का माहात्म्य

[नारदपुराण]

मोहिनी बोली—हे धर्म के जानने वाले कृपालो वसो। बहुत ज्ञान वाले आपने मेरे प्रति तीर्थ राज प्रयाग का महात्म्य निरूपण किया ॥१॥

अब सब लोकों के पापों को नाश करने वाला तथा कल्याण की प्राप्ति करने वाला और जो सब मुख्य तीर्थों में गिना जाने वाला कुरुक्षेत्र है। उसको मेरे प्रति कहो ॥२॥

वसु बोले—हे मोहिनि ! सुनो। मैं शोभन पुण्य देने वाले कुरुक्षेत्र को कहूंगा। यहां पर जाकर मनुष्य स्नान करके सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥३॥

वहां पर मुनीश्वरों द्वारा सेवित अनेकों तीर्थ हैं। उनको मैं तेरे प्रति कथन करूंगा जो श्रवण करने वालों को भी मुक्ति देने वाले हैं ॥४॥

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥५॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवसेवितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥६॥
दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रे गच्छामि च वसाम्यहम्। एवं यः सततं ब्रूयात्सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥७॥
तत्र वै यो वसेद्धीरः सरस्वत्यास्तटे स्थितः। तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयं भविष्यति न संशयः ॥८॥
देवता ऋषयः सिद्धाः सेवन्ते कुरुजांगलम्। तस्य संसेवनाद्देवि ब्रह्म चात्मनि पश्यति ॥९॥

मोहिन्युवाच—

कुरुक्षेत्रं द्विजश्रेष्ठ सर्वतीर्थाधिकं कथम्। तन्मे विस्तरतो ब्रूहि त्वामहं शरणं गतः ॥१०॥

वसुरुवाच—

शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि कुरुक्षेत्रं महाफलम्। यथा जातं नृणां पापदहनं ब्रह्मणः प्रियम् ॥११॥
आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं तत्र स्थानं समुद्भतम्। ततो रामह्रदो जातः कुरुक्षेत्रं ततः परम् ॥१२॥

ब्रह्मतत्व का ज्ञान, गया तीर्थ में कराया हुआ श्राद्ध तथा (तैसे) गउ के शत्रु द्वारा ग्रहण किए जाने पर उसके निमित्त से हुई मृत्यु तथा पुरुषों का कुरुक्षेत्र में वास (बसना) यह चार प्रकार की मुक्ति कही है ॥५॥

सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों देवनदियों का जो मध्य भाग है। उस देवताओं द्वारा सेवित देश को ब्रह्मावर्त कहते हैं ॥६॥

दूर देश में स्थित होने पर भी मैं कुरुक्षेत्र जाता हूं। और वहां बसता हूं। इस प्रकार जो निरन्तर कहता है। वह भी पापों से मुक्त हो जाता है ॥७॥

वहां जो धीर पुरुष सरस्वती नदी के तट (तीर) पर स्थित हुआ निवास करे। उस के प्रति ब्रह्मस्वरूप ज्ञान निश्चय होगा। इस में संदेह नहीं ॥८॥

हे देवी। कुरु जंगल (क्षेत्र) को देवता, ऋषि और सिद्ध लोक भी सेवन करते हैं। उसके सम्यक् सेवन करने से अधिकारी पुरुष ब्रह्म को आत्मा में देखते हैं ॥९॥

मोहिनी बोली—हे द्विजों में श्रेष्ठ। कुरुक्षेत्र सब तीर्थों से अधिक (श्रेष्ठ) किस कारण है उसको मेरे प्रति विस्तार से कहो। मैं आपकी शरण को प्राप्त हूं ॥१०॥

वसु बोले हे भद्रे (कल्याणी)! सुनो महाफलदायक कुरुक्षेत्र को मैं कथन करूंगा। वह जिस प्रकार ब्रह्मा जी का प्यारा मनुष्यों के पापों को दहन (जलाने) वाला उत्पन्न हुआ। उस स्थान समन्त पंचक कुरुक्षेत्र में पूर्व पवित्र ब्रह्मसर उत्पन्न हुआ। अर्थात् ब्रह्मसर नाम हुआ ॥११॥

तत्पश्चात् (उसके पीछे) परशुराम ह्रद उत्पन्न हुआ। उसके अनन्तर कुरुक्षेत्र प्रादुर्भाव हुआ ॥१२॥

सरः संनिहितं तच्च ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । अथैषा ब्रह्मणो वेदी दिशमन्तरतः स्थिता ॥१३॥
ब्रह्मणात्र तपस्तप्तं सृष्टिकामेन मोहिनि । स्थितिकामेन हरिणा तपस्तप्तं च चक्रिणा ॥१४॥
सरः प्रवेशात्संप्राप्तं स्थाणुत्वं शम्भुनापि च । पितुर्वधाच्च तप्तेन परशुरामेण भामिनि ॥
अब्रह्मण्यक्षत्रवधाद्वै च रक्तह्रदाः कृताः । तद्रक्तेन संतर्प्य कृतवांस्तत्र वै तपः ॥१६॥
रामतीर्थं ततः ख्यातं संजातं पापनाशनम् । मार्कण्डेयेन मुनिना संतप्तं परमं तपः ॥१७॥
यत्र तत्र समायाता प्लक्षजाता सरस्वती । सा सभाज्य स्तुता तेन मुनिना धार्मिकेण ह ॥
सरः संनिहितं प्लाव्य पश्चिमां प्रस्थिता दिशम् । कुरुणा तु ततः कृष्टं यावत्क्षेत्रं समन्ततः ॥
पंचयोजनविस्तारं दयासत्यक्षमोद्गमम् । स्यमन्तपंचकं तावत्कुरुक्षेत्रमुदाहृतम् ॥२०॥
अत्र स्नाता नरा देवि लभन्ते पुण्यमक्षयम् । मृता विमानमारुह्य ब्रह्मलोकं व्रजन्ति च ॥

उस संनिहित सर को पूर्व काल में ब्रह्मा जो ने निर्माण किया था । अब यह जो ब्रह्मा जी की उत्तरवेदी के अन्तर (मध्य) दिशा में स्थित है ॥१३॥

हे मोहिनी—यहां पर ब्रह्मा जी ने सृष्टि (संसार रचने की) कामना से तप किया था। और चक्रपाणि भगवान हरि ने जगत् की स्थिति (पालना) की इच्छा से तप किया था। और भगवान् शम्भू ने सरोवर में प्रवेश से स्थाणुत्व प्राप्त किया था ॥१४॥

हे भामिनी—(हे सुन्दरी) ! पिता के वध (घात) से संतप्त (क्रुद्ध हुए) परशुराम ने ब्राह्मणों में भक्तिभाव से शून्य क्षत्रियों के वध से उत्पन्न रक्त से पांच ह्रद (कुण्ड) भरे थे ॥१५॥

उस रक्त से पितरों को तर्पण कर के पुनः वहां परम तप भी किया था ॥१६॥

तब से राम तीर्थ नाम से विख्यात हुआ और पापों के नाश करने को प्रकट हुआ ॥१७॥

यहां पर मार्कण्डेय मुनि ने परम तप किया था । वहां पर प्लक्ष से उत्पन्न होने वाली सरस्वती आई अर्थात् प्रकट हुई । उस धार्मिक मुनि के द्वारा स्तुति (प्रशंसित) वह भी मुनि का सम्मान करके पुनः संनिहित सर को प्लावन (पूर्ण भर) करके पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया (चली गई) तब से यावत्परिमाण (जितने माप) में क्षेत्र था उस को चारों ओर से कुरु ने कर्षण किया ॥१८-१९॥

वह चारों ओर से पांच योजन विस्तार वाला और दया सत्य क्षमा का उद्गम स्थान है । तब से स्यमन्तक पंचक कुरुक्षेत्र कहा गया ॥२०॥

यहां पर स्नानकर्ता मनुष्य अक्षय पुण्य को उपलब्ध करते हैं । और यहां पर मरे हुए विमान पर चढ़ कर ब्रह्मलोक को जाते हैं ॥२१॥

उपवासश्चश्च दानं च होमो जप्यं सुरार्चनम्। अक्षयत्वं प्रयात्येव नात्र कार्या विचारणा ॥
ब्रह्मवेद्यां कुरुक्षेत्रे ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। ग्रह नक्षत्रताराणां कालेन पतनाद्भयम् ॥२३॥
कुरुक्षेत्रे मृतानां तु न भूयः पतनं भवेत्। देवर्षिसिद्धगन्धर्वास्तत्सरः सेवनोत्सुकाः ॥२४॥
यत्र नित्यं स्थिता देवि रन्तुकं नामतस्ततः। तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं विष्णुना स्थापिताः पुरा ॥
यक्षः सुचन्द्रः सूर्यश्च वासुकिः शंबुकर्णकः। विद्याधरः सुकेशी च राक्षसाः स्थापिताः शुभे ॥
स भृत्यैस्तेऽष्टसाहस्रैर्धनुर्वाणधरैः सदा। रक्षन्ति च कुरुक्षेत्रं वारयन्ति च पापिनः ॥२७॥
रन्तुकन्तु समासाद्य क्षामयित्वा पुनः पुनः। ततः स्नात्वा सरस्वत्यां यक्षं दृष्ट्वा प्रणम्य च ॥
पुष्पं धूपं नैवेद्यं कृत्वैतद्वाक्यमुच्चरेत्। तव प्रसादाद्यक्षेन्द्र वनानि सरितस्तथा ॥२९॥

यहां पर किया हुआ उपवास (व्रत) और दान होम जप्य तथा देवताओं का पूजन अक्षय रूप को प्राप्त होता है। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥२२॥

जो प्राणी ब्रह्मवेदी रूप कुरुक्षेत्र में मरे हैं। वह मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। सूर्यादि नव (ग्रह) और अश्वनी आदि नक्षत्र और अन्य तारा गण को भी काल से पतन होने का भय है ॥२३॥

किन्तु कुरुक्षेत्र में मरे हुए मनुष्यों का पुनः पतन नहीं होता है। देवता और ऋषि और सिद्ध और गन्धर्व लोक भी उस सरोवर को सेवन करने के लिए नित्य उत्सुक (उतावले) रहते हैं ॥२४॥

हे देवि ! उस क्षेत्र की रक्षा के लिए पूर्वकाल में विष्णु भगवान् ने रन्तुक नाम से प्रसिद्ध यक्ष को स्थापन किया था ॥२५॥

हे शुभे ! पश्चात् (पीछे) सुचन्द्र, सूर्य और वासुकि, शंबुकर्ण, विद्याधर और सुकेशी इन नामों वाले राक्षस स्थापन किए ॥२६॥

वह सब आठ हजार संख्या वाले धनुष वाण धारण किए हुए अपने सेवकों के सहित सदा कुरुक्षेत्र की रक्षा करते हैं और अनुचित पापियों को हटाते हैं ॥२७॥

अरन्तुक यक्ष को प्राप्त होकर (पहुंच कर) तत्पश्चात् सरस्वती नदी में स्नान करके उस यक्ष का दर्शन करके और प्रणाम कर के पुनः पुनः (वार वार) क्षमा की याचना (मांग) कर पुनः धूप दीप और नैवेद्य अर्पण करके इस वाक्य को उच्चारण करे ॥२८॥

हे यक्षेन्द्र ! तुम्हारे लिए नमस्कार है। आपके प्रसाद (अनुग्रह) से वनों नदियों ॥२९॥

भ्रमतो मम तीर्थानि मा विघ्नं जायतां नमः। इति प्रसाद्य यक्षेशं यात्रां सम्यक् समाचरेत् ॥

वनानां चापि तीर्थानां सारितामपि मोहिनि । यो नरः कुरते यात्रां कुरुक्षेत्रस्य पुण्यदाम् ॥

न तस्य न्यूनता लोके काचिदिह परत्र च ॥३२॥

इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणे उत्तरभागे कुरुक्षेत्रमाहात्म्ये क्षेत्रप्रमाणादिनिरूपणं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥

कुरुक्षेत्रान्तार्गतानां वनानां नदीनां च वर्णनम्

[श्री वामनपुराणम्]

ऋषय ऊचुः—

वनानि सप्त नो ब्रूहि सप्तनद्यश्च काः स्मृताः । तत्सर्वं विस्तरेणेह ब्रूहि पौराणिकोत्तम ॥१॥

लोमहर्षण उवाच—

द्विजाः शृणु वनानीह कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः । येषां नामानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च ॥३॥

तथा अन्य तीर्थों में भ्रमण करते हुए मेरे प्रति विघ्न उत्पन्न न हो । इस प्रकार यक्षेश को प्रसन्न करके सम्यक् (विधिपूर्वक) यात्रा करे ।।३०।।

हे मोहिनि ! जो नर कुरुक्षेत्र के वनों और तीर्थों तथा सरिताओं की भी पुण्यदायक यात्रा करते हैं ।।३१।।

उसके प्रति इस लोक और परलोक में कोई न्यूनता कभी नहीं रहती ।।३२।।

इस प्रकार श्रीवृहन्नारदीयपुराण के उत्तर भाग में कुरुक्षेत्र माहात्म्य के अन्तर्गत प्रमाण आदि निरूपण नाम चौसठवां अध्याय समाप्त हुआ ।।

ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत वनों और नदियों का वर्णन

[श्री वामनपुराण]

ऋषि बोले—हे पुराण के वक्ताओं में श्रेष्ठ ! आप इस भूमि के सात वनों को हमारे प्रति कहो और सात नदियां कौन सी हैं । उन सब को विस्तार से कहो ।।१।।

लोमहर्षण ने कहा—हे द्विजो ! अब कुरुक्षेत्र के मध्य में स्थित वनों को श्रवण करो । जिन के नाम पवित्र और सब पापों को हरने वाले हैं ।।३।।

काम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदितिवनं महत् । व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीवनमेव च ॥४॥

तथा सूर्यवनं स्थानं तथा मधुवनं महत् । पुण्यं सीतावनं नाम सर्वकल्मषनाशनम् ॥५॥

वनान्येतानि वै सप्त नद्यः शृणुत मे द्विजाः । सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ॥६॥

आपगा च महापुण्या गंगामन्दाकिनी नदी । मधुश्रवा अम्लुनदी कौषिकी पापनाशनी ॥७॥

दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्वती नदी । वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम् ॥८॥

एतासामुदकं पुण्यं प्रावृट्कालेऽपि कीर्तितम् । रजस्वलात्वमेतासां विद्यते न कदाचन ।
तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्या ह्येताः सरिद्वराः ॥९॥

पवित्र काम्यक वन और तैसे महान् अदितिवन है और पुण्यदायक व्यास वन और पवित्र फलकी-वन भी है ॥४॥

तथा (तैसे) सूर्य वन की भूमि तैसे महा मधुवन है । तथा सब पापों को नाश करने वाला पवित्र सीता नाम वन है ॥५॥

हे द्विजो ! वन तो इतने ही हैं । अब मुझ से सात नदियों को सुनो । प्रथम पवित्र सरस्वती नदी है । तथा (तैसे) वैतरणी नदी है ॥६॥

और महा पवित्र आपगा (नदी) तथा मन्दकिनी गंगा है । तथा मधुश्रवा अमुल नदी नाम से कही है और पापों का नाश करने वाली कौषिकी नदी कही है ॥७॥

यथा (जैसे) महापवित्र दृषद्वती है तैसे हिरण्यवती नदी है । सरस्वती को त्याग कर सब वर्षा काल में वहने वाली हैं । यहां सरस्वती के साथ दृषद्वती भी ग्रहण करने योग्य है । चूंकि वह भी महा नदियों में वर्णित है ॥८॥

इनके जल को वर्षा काल में भी पवित्र कहा है । इन का रजस्वला धर्म कदाचित् नहीं होता है । तीर्थ के प्रभाव से यह श्रेष्ठ नदियां सदा पवित्र हैं ॥९॥

---

१. इयमापगानदी ऋग्वेदोक्ता आपयाया नाम्निका नद्यस्ति ।

यह आपगा ही ऋग्वेदोक्त आपयाया नाम की नदी है ।

कुरुक्षेत्रांतर्गतस्य कुलोत्तारणकतीर्थस्य माहात्म्यम्

ततो गच्छेच्च विप्रेन्द्रास्तीर्थंकल्मषनाशनम् । कुलोत्तारणकं नाम विष्णुना कल्पितं पुरा ॥७६॥
वर्णानामाश्रमाणां च तारणाय सुनिर्मलम् । तेऽपि तत्तीर्थमासाद्य पश्यन्ति परमं पदम् ॥७७॥
कुलानि तारयेत्स्नातः सप्त सप्त च सप्त च । ब्रह्मचारीगृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥७८॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियाः शूद्राश्च तत्पराः । तीर्थस्नाता भक्तियुताः पश्यन्ति परमं पदम् ॥

मेघदूते —

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीव धन्वा, धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥४८॥
हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनांकां, बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लांगली याः निषेवे ।
कृत्वा तासामभिगममपां सोम्य सारस्वतीनामन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥४९॥

इत्यलम् ।

कुरुक्षेत्र भूमि के अन्तर्गत कुल का उद्धार करने वाले तीर्थ का माहात्म्य

हे ऋषियो ! वहां से पाप नाशक तीर्थ को जाये । पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने कुलोत्तारणक नाम रचा था ॥७६॥

वह वर्णों और आश्रमों का उद्धार करने के लिए सुनिर्मल (अति पवित्र) तीर्थ है । उस तीर्थ को प्राप्त करके वह भी परम पद ब्रह्मतत्व को देखते हैं (अनुभव करते हैं) ॥७७॥

उस तीर्थ में स्नान किया हुआ । कोई भी ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा यति (सन्यासी) अपनी त्रिसप्त (इक्कीस) कुलों का उद्धार करे (अर्थात् करता है) ॥७८॥

उसी में आसक्त और भक्ति सहित तीर्थों में स्नान किए हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य स्त्रियां और शूद्र भी परम पद को देखते हैं ॥७९॥

मेघदूत—इसके अनन्तर ब्रह्मावर्त नाम देश को अपनी छाया से आच्छादन करते हुए क्षत्रियों के परस्पर विनाश से निन्दित हुए उस कुरुक्षेत्र को भजो (चले जाओ) यहां पर गाण्डीव धनुष वाले अर्जुन ने राजाओं के मुखरूपी कमलों पर अपने तीक्ष्ण सैंकड़ों बाणों की ऐसे वर्षा की थी। जैसे तुम अपनी धारापात से कमलों पर वर्षा करते हो ॥४८॥

अपनी पत्नी रेवती के नेत्रों से प्रतिबिम्बित प्रिय मदिरा को भी त्याग कर बन्धु (भगवान् कृष्ण) के प्रेमवश महाभारत के युद्ध से विमुख हुए बलराम ने जिनको सेवन किया था । हे सोम्य ! तुम भी उस सरस्वती नदी के जल को सेवन (पान) करके बाह्य वर्णमात्र से कृष्ण (काले) होते हुए भी अन्तर से शुद्ध हो जाओगे ॥४९॥

एतत्तत्सारस्वतं नाम व्याख्यानमतिबुद्धिदम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि मतिस्तस्य विवर्धते । सरस्वत्याः प्रसादेन सत्यमेतन्मयोदितम् ॥१६॥

इति स्कन्धमहापुराणे षष्ठे नागरखण्डे सरस्वत्युपाख्याने १७३ अध्याये उक्तम् ॥

इदं फलं त्वेकस्यैवाख्यानस्यास्ति । सर्वस्य ग्रन्थस्य का कथा । एवं मया सुखदाः पुण्यदाः सारभूताः सरस्वत्या नद्या गुणास्तथा लक्षणानि तन्निर्णयहेतवः कथितानि । नदीरूपवाग्रूपायै सरस्वत्यै नमोनमः ।

श्रीकृष्णकृष्णसखवृष्ण्यृषभावनिध्रुग्-राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्दगोद्विजसुरार्तिहरावतारयोगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ।

इति श्रीमद्भागवते महापु० १ स्कं० ८ अध्याये ४३ श्लोकः ॥

इति समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

यह सारस्वत नाम (सरस्वती नदी सम्बन्धी) व्याख्यान अतिबुद्धि देने वाला है। जो श्रद्धालु पुरुष इसको पढ़े व श्रवण करे उसकी भी बुद्धि सरस्वती के प्रसाद (अनुग्रह) से बढ़ जाती है। यह मैंने सत्य कहा है ।।१६॥

इस प्रकार स्कन्ध-महापुराण के छटे नागर खण्ड में सरस्वत्युपाख्यान के १७३वें अध्याय में कहा है ॥

यह फल तो एक ही आख्यान के स्वाध्याय का है। सम्पूर्ण ग्रन्थ की तो कथा ही क्या है। इस प्रकार मैंने सुख और पुण्य प्रदान करने वाले या पवित्र करने वाले सारभूत सरस्वती नदी के निर्णय के हेतु उसके गुण और लक्षण सब विस्तार से वर्णन कर दिए हैं। लाभ उठाना जनता के अधीन है।

अब नदी रूप और वाणी रूप सरस्वती के लिए नमस्कार है।

हे श्रीकृष्ण ! हे कृष्ण (अर्जुन) सखे ! हे वृष्णी वंश में श्रेष्ठ ! हे पृथिवी के द्रोही राजवंश दहन (दाह करने वाले)। हे अक्षीण प्रभाव ! हे गोविन्द ! हे गऊ ब्राह्मण और देवताओं के दुःखों को हरने के निमित्त अवतार रूप। हे योगेश्वर ! हे अखिल (सर्व जगत् गुरो) ! हे भगवन् ! आपके लिए नमस्कार है। दोहा :—

अल्प विद्या अल्प बुद्धि बल अल्प लेखन सामर्थ। केवल कृष्ण प्रसाद से पूर्ण हुआ ग्रन्थ ॥
सरस्वती प्रेरणा करी ग्रन्थ रचन में हुई प्रवृत्ति। जासुं पूर्व कबहूं नहीं मन में थी स्मृति ॥
संवत बीससौ तेईस में दसमीं विजय रविवार। पंचाल देस में पूंण हुआ ग्रन्थ यह पुर हुश्यार ॥

इस प्रकार यह ग्रन्थ हिन्दी टीका सहित समाप्त हुआ ॥

श्रीमद्भागवते सरस्वत्या नद्या विशदं वर्णनम्

[सरस्वती प्रकरणस्य शिष्टांशः]

सूत उवाच—

द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये । जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥१४॥

स कदाचित् सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचिः । विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ॥

दुर्भगांश्च जनान् वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा । सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥१८॥

नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ । वितर्कयन् विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥२७॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० प्रथम स्कं० ४ अध्याये ॥

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा । परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥३६॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० प्रथम स्कं० १६ अध्याये ॥

श्रीमद्भागवत में सरस्वती नदी का विशाल वर्णन

[सरस्वती प्रकरण का शिष्टांश]

सूत जी बोले—तीसरे द्वापर युग का परिवर्तन सम्यक् रूप से प्राप्त होने पर अर्थात् संध्यांश में योगी महर्षि वेदव्यास जी हरि की कला द्वारा महर्षि पराशर के वीर्य से वासवी नाम की केवट कन्या में उत्पन्न हुए ॥१४॥

वह किसी दिन सूर्य मण्डल के उदय होने पर सरस्वती के जल को आचमन करके विशुद्ध या पुण्यात्मा एकांत देश में बैठे हुए ॥१५॥

अमोघ दृष्टि या अमोघ ज्ञान वाले मुनि ने दिव्य चक्षु (योग दृष्टि) से मनुष्यों को भाग्य हीन देख कर सब वर्ण और आश्रमों का जो हित तदर्थ ध्यान किया ॥१८॥

ध्यान करने पर भी उनका हृदय अतिप्रसन्न न हुआ। तब सरस्वती के पवित्र तट (किनारे) पर एकांत में स्थित विशेष तर्क (विचार) करते हुए वह धर्मज्ञ मुनि यह बोले ॥२७॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में कहा है ॥

उन गो रूप पृथिवी और बैल रूप धर्म दोनों के इस प्रकार कहते हुए उसी समय परीक्षित नाम राजऋषि पूर्ववाहिनी सरस्वती (पृथूदक) में दिग्विजय करते हुए पहुंच गए ॥३६॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के १६वें अध्याय में कहा है॥

राजोवाच—

न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये।
ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥३३॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० प्र० स्कं० १७ अध्याये ॥

तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम्। प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥४३॥
नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप। ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥४४॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० द्वि० स्कं० ९ अध्याये ॥

उद्धव उवाच—

भगवान् स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः। सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥३॥
अहं चोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण च। बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥४॥
अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्दम्। पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥५॥

राजा परीक्षित बोले—हे अधर्म के संबन्धी धर्म और सत्य के द्वारा वर्तने योग्य उन ब्रह्मावर्त में तुम्हें नहीं वर्तना (ठहरना) चाहिए। जहां पर यज्ञ कर्म के विस्तार को जानने वाले यज्ञों द्वारा यज्ञ भगवान् का यजन (पूजन) करते हैं ॥३३॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के १७वें अध्याय में कहा है ॥

प्रसन्न हुए भगवान् ब्रह्मा जी ने भगवान् के द्वारा कहे हुए इस दस लक्षण वाले श्रीमद्भागवत पुराण को उस पुत्र के लिए कहा अर्थात् उपदेश किया ॥४३॥

हे राजन्! नारद जी ने सरस्वती के तट पर परम ब्रह्म का ध्यान करते समय अमित तेजस्वी मुनि वेदव्यास जी के प्रति कहा ॥४४॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महा पुराण के द्वितीय स्कन्ध के ९ अध्याय में कहा है ॥

उद्धव जी बोले—वह भगवान् श्रीकृष्ण उस अपनी माया की गति (परिणाम या प्रभाव) को देख कर सरस्वती नदी के जल को आचमन करके वृक्ष मूल के समीप बैठ गए ॥३॥

शरणागतों के दुःख को हरने वाले और अपने कुल को संहार करने की इच्छा वाले भगवान् के द्वारा तुम बदरीनारायण को जाओ ऐसा मुझे कहा भी गया था ॥४॥

हे शत्रुओं को दमन करने वाले! उसके अनन्तर भी उन के अभिप्राय को जानता हुआ अपने स्वामी के चरणों के वियोग को सहने में असमर्थ उन के पीछे ही चला गया ॥५॥

अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् । श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥६॥
श्यामावदातं विरजं प्रशान्तारुणलोचनम् । दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ॥७॥
वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम् । अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ॥८॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० तृतीय स्कं० विदुरोद्धवसं० ४ अध्याये ॥

मैत्रेय उवाच—

प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः । सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥

इति श्रीमद्भा० म० पुरा० ३ स्कं० २१ अध्याये ॥

सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् । तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥
अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान्कुटिलालकान् । आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० ३ स्कं० ३३ अध्याये ॥

एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः । हुत्वाग्नीन् सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥३६॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० ४ स्कं० १४ अध्याये ॥

मैं उन अपने प्यारे स्वामी श्री के धाम को खोजते हुए सरस्वती के तट पर निवास किए वास्तव में निवास रहित प्रभु को देखा ॥६॥

श्याम वर्ण विशुद्ध परम शान्त और रक्त नेत्र पीले रेशमी वस्त्र और चार भुजाओं से ज्ञात और बाईं जंघा पर दाहिने चरण कमल को रख कर फल रहित बालक स्थूल पिप्पल वृक्ष को आश्रय किए मैंने देखा ॥७-८॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के महापुराण के तीसरे स्कन्ध के ४ अध्याय में कहा है॥

मैत्रेय जी बोले—प्रजा (सन्तान) उत्पन्न करो। इस प्रकार ब्रह्मा जी के द्वारा कहे हुए भगवान् कर्दम मुनि ने सरस्वती नदी के तट पर दश हजार वर्ष तप किया ॥६॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध के २१वें अध्याय में कहा है ॥

और वह देवहूति भी पुत्र कपिल मुनि के कहे हुए योगादेश अनुसार योग से युक्त होकर उसी आश्रम में समाहित चित्त वाली निरन्तर सरस्वती के जल में अवगाहन (स्नान) करने से भूरे रंग वाली कुण्डल युक्त जटा बन्धी हूई अलकों को धारण करती हुई और फटे पुराणे वस्त्रों वाले अपने कृश शरीर को उग्र तप से पीड़ित किया ॥१४॥

इस प्रकार श्रीमद्भा० म० पु० के ३ स्कं० के ३३वें अध्याय में कहा है ॥

एक समय वे मुनि लोग सरस्वती के जल में डुबकी लगाए हुए अग्निओं को आहुति देकर (हवन करके) नदी के तट पर बैठे हुए शुभ कथाएं कर रहे थे ॥३६॥

इस प्रकार श्रीमद्भा० म० पु० के ४ स्कन्ध के १४वें अध्याय में कहा है ॥

मैत्रेय उवाच—

अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः। ब्रह्मावर्ते मनोःक्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥१॥
तदभिप्रेत्य भगवान् कर्मातिशयमात्मनः। शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥२॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० ४ स्कं १९ तमेऽध्याये ॥

एषोऽश्वमेधान् शतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र।
अहारषीद्यस्य हयं पुरन्दरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० ४ स्कं० १७ अध्याये ॥

स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः। प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० ६ स्कं० ८ अध्याये ॥

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः। पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥३३॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० ९ स्कं० १४ अध्याये ॥

मैत्रेय जी बोले—इसके अनन्तर उस राजा पृथु ने स्वायंभुव मनु के क्षेत्र ब्रह्मावर्त में जहां पर प्राची (पूर्ववाहिनी) सरस्वती थी। सौ अश्वमेध यज्ञ की दी दीक्षा ली ॥१॥

उस महाराज पृथु के महान् उत्सव रूप यज्ञ कर्म को अपने से अतिशय (अधिक) जान कर भगवान् इन्द्र ने सहन नहीं किया ॥२॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ४ स्कन्ध के १९वें अध्याये में कहा है॥

जहाँ पर सरस्वती नदी प्रादुर्भाव हुई थी। वहां इस पृथु राजा ने सौ (१००) अश्वमेध यज्ञों को सम्पादन किया था। अन्तिम यज्ञ के चालू होने पर सौ यज्ञ करने वाले इन्द्र ने जिस के घोड़े को हर लिया था।

इस प्रकार श्रीमद्भा० म० पु० ४ स्कन्ध के १७वें अध्याय में कहा है॥

वह गन्धर्वराज चित्ररथ विसमय को प्राप्त हुआ वालखिल्य नामक ऋषियों के वचन से अस्थियों (हड्डियों) को ले जा कर प्राची (पूर्ववाहिनी) सरस्वतो में डाल कर पुनः स्नान करके अपने लोक को चला गया ॥४०॥

इस प्रकार श्रीमद्भा० म० पु० के ६ स्कन्ध के ८ अध्याय में कहा है॥

उस पुरूखा राजा ने उस घृताची नाम अप्सरा और प्रसन्न मुख वाली उसकी पांच सखियों को कुरुक्षेत्र की भूमि में सरस्वती नदी के तट पर या जल में देख कर सूक्त कहा अर्थात् वेद मन्त्रों से स्तुति की ॥३३॥

इस प्रकार श्रीमद्भा० म० पु० ९वें स्कन्ध के १४ अध्याय में कहा है॥

ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः। सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥२३॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० ९ स्कं० १६ अध्याये ॥

श्रीशुक उवाच—

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः। अनोभिरनुडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम्। आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥

ऊषुः सरस्वती तीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः। रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥४॥

इति श्रीमद्भा० म० पु० दशम स्कं० ३४ अध्याये ॥

आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः। गिरीन् नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥२१॥

ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम्। पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥२२॥

उस क्षत्रिय रक्तरूप यज्ञ के अनन्तर ब्रह्मनदी सरस्वती में किए जाने वाले स्नान से दूर हो गए हैं सम्पूर्ण पाप जिसके वह भगवान् परशुराम जी ऐसे शोभा को प्राप्त हुए जैसे मेघों से रहित सूर्य भगवान् प्रकाशित होते हैं ॥२३॥

इस प्रकार श्रीमद्भा० म० पु० ९ स्कन्ध १६ अध्याय में कहा है ॥

श्री शुकदेव जी बोले—एक समय देवयात्रा में हर्ष से भरे हुए गोपाल लोग बैल-गाड़ियों के द्वारा वे सब अम्बिका वन को गए थे ॥१॥

हे राजन्! वहां पर सरस्वती के जल में स्नान करके विभु भगवान् पशुपति महादेव को और देवी अम्बिका को भक्ति से पूजन सामग्रियों से पूजन किया ॥२॥

वह महा भाग्यवान् नन्द सुनन्दक आदि व्रत धारण करने वाले उस रात्रि को सरस्वती के तीर पर केवल जल पीकर ही रहे (निवास किया) ॥४॥

इस प्रकार श्रीमद्भा० म० पु० १० स्कन्ध के ३४ अध्याय में कहा है ॥

भगवान् हरि (श्रीकृष्ण) युधिष्ठिर के द्वारा राजसूय यज्ञ के समय बुलाए जाने पर द्वारिका से जाते हुए मार्ग में आनर्त, सौवीर, मरु (मारवाड़) को लांघ कर विनशन, पर्वतों, नदियों, पुर, गाँव और गोष्ठों के समूहों को लांघ कर ॥२१॥

तदनन्तर वह मुकुन्द भगवान् दृषद्वती नदी को पार कर पश्चात् सरस्वती को पार करके अनन्तर पञ्चालों और मत्स्यदेशों को लांघ कर इन्द्रप्रस्थ में पहुंच गए ॥२२॥

तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम् । अजातशत्रुर्निरगात् सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते म० पु० १० स्कं० उ० भा० ७१तमे अध्याये ॥

श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः । तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥

स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् । सरस्वतीं प्रतिस्रोतां ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥१८॥

पृथूदकं विन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् । विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीसरस्वतीम् ॥१९॥

स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे । वारयिष्यन् विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते म० पु० १० स्कं० उ० भा० ७८–७९ अध्याययोः ॥

श्रीशुक उवाच—

दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान् समुत्थितान् ।
दृष्ट्वाऽऽसीनान् सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥४॥

एते घोरा महोत्पाता द्वारवत्यां यमकेतवः । मुहूर्त्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥५॥

मनुष्यों को दुर्लभ है दर्शन जिनका उन भगवान् श्रीकृष्ण को समीप आ गए जान कर वह अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर सुहृदों से घिरे हुए उपाध्याय के सहित राजधानी से बाहर निकले ॥२३॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत म० पु० १० स्कन्ध के ७१वें अध्याय में कहा है ॥

भगवान् बलराम पाँडवों के साथ निश्चित युद्ध का उद्यम (तैय्यारी) सुन कर मध्यस्थ (पक्षपात रहित) भाव वाले तीर्थस्नान के बहाने से चले गए ॥१७॥

वह प्रभासक्षेत्र (सोमनाथ) में स्नान करके देवता, ऋषि, पितरों और मनुष्यों का तर्पण करके ब्राह्मणों के सहित सरस्वती के बहाव से विरुद्ध (विलोम) मार्ग से यात्रा करते हुए गए ॥१८॥

पृथूदक (पेहोवा), विन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, विशाल (विस्तृत) ब्रह्मतीर्थ और चक्रतीर्थ तथा प्राची (पूर्ववाहिनी) सरस्वती को गए ॥१९॥

वह यदुनन्दन बलराम रणभूमि में भीम और दुर्योधन को गदाओं से युद्ध करते हुओं को हटाने के लिए कुरुक्षेत्र भी गए थे ॥२३॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के १०वें स्कन्ध के उत्तर भाग के ७८–७९वें अध्यायों में कहा है ॥

श्री शुकदेव जी बोले—द्युलोक भूमि और अन्तरिक्ष में सम्यक् उठे हुए महा उत्पातों को देख कर सुधर्मा नाम की सभा में बैठे हुए यादवों को भगवान् कृष्ण ने यह कहा ॥४॥

द्वारकापुरी में यह घोर उत्पात यमराज की ध्वजाएं हैं। हे यदुश्रेष्ठो ! हमें यहाँ पर एक मुहूर्त भी नहीं ठहरना चाहिए ॥५॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शङ्खोद्धारं व्रजान्विताः । वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥

तत्राऽभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः । देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥७॥

यहां से स्त्रियां और बालक और वृद्ध पुरुष शङ्खोद्धार तीर्थ को जाएं और हम यहां से प्रभास क्षेत्र को जाएंगे । जहां पर पश्चिमवाहिनी सरस्वती है ॥६॥

वहां स्नान करके शुद्ध हुए उपवास करके भली प्रकार से समाहित (एकाग्र) चित्त हुए स्नान लेपन आदि पूजन के योग्य उपचारों से देवताओं की पूजा करेंगे ॥७॥

सरस्वती के तटवर्ती तीर्थों की विलोमानुक्रमणिका

संख्याङ्क	नाम तीर्थ	संख्याङ्क	नाम तीर्थ
१	प्रभास क्षेत्र	२०	वसिष्ठापवाह
२	चमसोद्भेद	२१	सरस्वत्यरुणासङ्गम
३	उदपान	२२	सोमतीर्थ
४	विनशन	२३	अग्नितीर्थ
५	सुभूमिक	२४	ब्रह्मयोनिद्वितीय
६	गन्धर्वतीर्थ	२५	कौबेरतीर्थ
७	गर्गस्रोत	२६	बदरपाचन
८	शङ्खतीर्थ	२७	इन्द्रतीर्थ
९	द्वैतवन	२८	रामतीर्थ या रामह्रद
१०	नागधन्वा	२९	यमुनातीर्थ
११	कोटितीर्थ	३०	आदित्यतीर्थ
१२	नैमिषेयिकुञ्ज	३१	सारस्वततीर्थ
१३	सप्तसारस्वत	३२	वृद्धकन्यातीर्थ
१४	औशनस या कपालमोचन	३३	समन्तपञ्चक
१५	रुषङ्ग्वाश्रम	३४	दिव्यविष्ण्वाश्रम
१६	पृथूदक	३५	प्लक्षप्रस्रवण या कारपवन
१७	ब्रह्मयोनि		
१८	अवाकीर्ण	३६	मित्रावरुणाश्रम
१९	यायात		

शुद्धि-पत्रम्

ग्रन्थ के पन्नों पर शीर्षक में 'भाषा-टीका सहित' के स्थान में 'भाषा-टीका-सहितः' पढ़ें। यथार्थ में 'भाषा-टीका-सहितः' के स्थान में भी शीर्षक में अन्तर्वर्ती विषयों को पढ़ना चाहिये। जैसे—पृष्ठ १–३ तक 'प्रयोजनम्'। पृष्ठ ४–५ 'अथ सरस्वती-नदी-महिमा वेदेषु' पृष्ठ ६–७ 'सरस्वत्यै सुरभीनां शापदानम्' पृष्ठ ८–१३ 'सरस्वत्या नदीरूपेणाऽवतरणम्' पृष्ठ १३–१६ 'सरस्वत्या उद्गम-स्थानम्' इत्यादि।

अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठे	पङ्क्तौ
प्रात प्रातकृत रघुराई	प्रात प्रातकृत करि रघुराई	भूमिका ix	१
प्रथमखंडे	प्रथमखण्डे	२	६
अक्नाम्	अह्नाम्	४	२
पुरुष्णी और	हे परुष्णी ! इस स्तोत्र को सेवन करो	४	१२ (भाषा में)
विष्णु उवाच	विष्णुरुवाच	९	५
विनिक्षिपत्वं	विनिक्षिप त्वं	११	४
क्रोड़ तीर्थ	करोड़ तीर्थ	१२	५ (भाषा में)
हसती	हसन्ती	१३	१
सप्तमाधाये	सप्तमाध्याये	१६	८
वृष्टयोघै०	वृष्ट्योघैः०	१९	२
क्रोडसंख्यिक	करोड़संख्यक	२१	२ (भाषा में)
रुलं	रुल्लं	२३	२
कोलां	कोल्लां	,,	३
हृष्टस्तनुरुहा	हृष्टतनूरुहा	२४	२
'साहस्र्यां	'साहस्र्यां	,,	८
महासंतापसानि	महासान्तपनानि	२९	६
समाज्ञेया	समा ज्ञेया	,,	८
क्रोड़	करोड़	३१	४ (भाषा में)
अहरअहः	अहरहः	३२	७
चिन्तामणि समादेवी	चिन्तामणिसमा देवी	३३	२
पराङ्मुखी	प्राङ्मुखी	३५	१२ (भाषा में)

अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठे	पङ्क्तौ
आलिङ्क्तः	आलिङ्गितः	३६	३
तैत्तिरीय संहितात	तैत्तिरीयसंहितायां	,,	टिप्पणे
नारदीय पुराण कं कुरुक्षेत्र	नारदीयपुराण और महाभारत के प्रयाग	३८	१७ (भाषा में)
यमुनागंगया	यमुना गङ्गया	३९	७
पूर्वोतकश्लोके	पूर्वोक्तश्लोके	,,	१२
सदशं गुणारेव	सदृशा गुणा एव	४०	२
अस्तित्वर्मास्त	अस्तित्वेऽस्ति	४१	१२
प्रांजली भूत्वा	प्राञ्जलिर्भूत्वा	४३	१०
वक्षयामि	वक्ष्यामि	४४	८
एतस्मिनन्नतरे	एतस्मिन्नन्तरे	४५	३
रध्रन्द्वयेन विप्रन्द्रा	रन्ध्रद्वयेन विप्रेन्द्रा	४७	३
शुद्राभीरान् प्रतिद्धेपान	शूद्राभीरान् प्रति द्वेषान्	४९	९
गन्धर्वतीर्थाश्च	गन्धर्वतीर्थाच्च	५०	१
जन्मेय	जनमेजय	,,	१६ (भाषा में)
सप्तसाल्वतं	सप्तसारस्वतं	५१	६
नैमिष्यारण्य	नैमिषारण्य	,,	१४ (भाषा में)
ब्रह्मात्व	ब्राह्मणत्व	५४	१३ (,,)
वैश्वायन	वैशम्पायन	५५	८
सरस्वत्यरुणयाश्च	सरस्वत्यरुणायाश्च	५६	३
एकोनपंचाशततमो॰	एकोनपञ्चाशत्तमो॰	५७	८
ज्योतिषामाविपत्यं	ज्योतिषामाधिपत्यं	५८	६
एकपंचाशततमो	एकपञ्चाशत्तमो	५९	३;९
द्विपंचाशततमो	द्विपञ्चाशत्तमो	६०	१;६
चतुर्पंचशततमो	चतुष्पञ्चाशत्तमो	६०	७
हिमवतोऽचयुतः	हिमवतोऽच्युतः	६१	४
तत्रोश्यैकां	तत्रोप्यैकां	,,	९
शिष्योर्यदि	शिष्ययोर्यदि	६३	१
संक्षेपेन	संक्षेपेण	६४	४

अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठे	पङ्क्तौ
प्रत्यंगमुख्यांकित°	प्रत्यङ्गमुख्याङ्कित°	६५	२
°मंगलः	°मङ्गलः	,,	६
योऽधिवसंछास्ति	योऽधिवसञ्छास्ति	,,	,,
अरोग्यता जनक	आरोग्यजनक	६६	७ (भाषा में)
°स्कन्द	स्कन्ध	,,	१३ (,,)
यज्ञस्यांग विधुन्वतः	यज्ञस्याङ्गं विधुन्वतः	६७	३
बाजत्रों	वादित्रों	,,	४ (भाषा में)
प्र० स०	प्र० स्क०	६८	८
द्रौणिनिग्रहे नाम	द्रौणिनिग्रहे नाम्नि	,,	,,
सरस्वती के तट पर	सरस्वती के पश्चिम तट पर	,,	१ (भाषा में)
पराङ्मुखं	प्राङ्मुखं	६९	४
दशद्वती	दृषद्वती	,,	२;८;९ (भाषा में)
(दशद्वती)	(दृषद्वती)	७०	७ (,,)
कृष्णसरस्वत्यां	कृष्ण सरस्वत्यां	,,	टिप्पणे
स्क० २४	अष्ट स्क० २४ अ०	७४	१८ (भाषा में)
गंगासिन्धुः	गङ्गा सिन्धुः	७५	३
गंगा	गङ्गाः	७६	१;७
सदशवती	सदृषद्वती	७७	४
शतद्रु विपाशा (व्यासा)	शतद्रु वितस्ता (जेहलम)	,,	६ (भाषा में)
मार्कंडेय	मार्कण्डेय	८०	६
तर्कप्रमाणाभ्यां	लक्षणप्रमाणाभ्यां	,,	७ (सं०, भा०)
महानदीत्वाद्ब्रह्मा°	महानदीत्वाद् ब्रह्मा°	,,	८
ब्रह्मावर्तपूर्वीसीमाबोधिक°	ब्रह्मावर्तपूर्वसीमाबोधक°	,,	,,
°श्रभनिर्गत्वाच्च	°श्रमनिर्गतत्वाच्च	,,	,,
माहत्म्य	माहात्म्य	८०	१४
......	(इस प्रकार स्कन्द पुराण में कहा है)	,,	७
इदानि	इदानीम्	८१	९
अप्ययेऽपोनप्त्रीस्यामिष्टिं	अप्ययेऽपोनप्त्रीयामिष्टिं	८२	२

अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठे	पङ्क्तौ
दृषद्वत्यप्ययये	दृषद्वत्यप्यये	८२	४
नदीयां	नदियां	,,	६;१० (भाषा में)
संगच्छन्तीत्युक्तम् ।	संगच्छन्त इत्युक्तम्	८४	१
संगमं बभूवुः	संगमोऽभविष्यत्	,,	२
कथम्भवितुं शक्यते	कथम्भवितुमशक्ष्यत	,,	२-३
है	था	,,	४ (भाषा में)
इति श्रीम०	इति श्रीभाग०	,,	१०
प्रतिष्ठवाः	प्रतिष्ठिताः	,,	११
वेद से भी भय करता	से वेद भी भय करता	,,	१४ (भाषा में)
अतश्चायं निश्चितः	अतश्चेदं निश्चतम्	८५	४
तदग्रे	स चाग्र	,,	११
मरुधन्वतिक्रम्य	मरुधन्वमतिक्रम्य	८६	३
पदमथछायया	पदमथच्छायया	,,	७
८३वें	८३तमे	,,	११
सरस्वतीदशद्वत्योरंतरे	सरस्वतोदृषद्वत्योरन्तरं	,,	१३
महात्म्य	माहात्म्य	,,	१ (भाषा में)
पचकं	पञ्चकं	८७	६
भूमीखण्डे १२४वें	भूमिखण्ड १२४ तमे	,,	[illegible]
तीर्थमन्तरीक्षे	तीर्थमन्तरिक्षे	,,	[illegible]
त्रयाणमपि	त्रयाणामपि	,,	[illegible]
समन्त पंचकस्यार्थमुक्तम्	समन्तपञ्चकस्यार्थ उक्तः	८८	[illegible]
सरस्वत्याः	सरस्वतीं	८९	२
ख्यात्यस्ति	ख्यातिरस्ति	,,	३
ब्रह्मावर्तमित्यपि	ब्रह्मावर्त इत्यपि	,,	१२
चाऽयमेव	चेदमेव	,,	[illegible]
षोडशब्दिकम्	षोडशाब्दिकम्	९२	५
यथातथ्यममन्यत	याथातथ्यममन्यत	९३	३
जिह्वा	जिह्वा	,,	११ (भाषा में)
रक्षति	रक्षन्ति	९७	५

अशुद्धयः	शुद्धयः	पृष्ठे	पङ्क्तौ
वीरचॆरॊ चराण	वीर चराचराणाम्	९७	५
लोमहर्ष	लोमहर्षण	९८	६
श्रद्दाधनाश्च	श्रद्धानाश्च	१००	३
सरस्वती दशद्वत्योर्द्वयोः	सरस्वतीदृषद्वत्योर्द्वयोः	,,	७
अमुल	अम्लु	१०७	७ (भाषा में)
कुरुक्षेत्रांतर्गतस्य	कुरुक्षेत्रान्तर्गतस्य	१०८	१
°मथछायया	°मथच्छायया	,,	७
१७३ अध्याये	१७३तमेऽध्याये	१०९	३
श्रीकृष्णकृष्णसखवृष्ण्यभावनि-	श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभाऽवनि-	,,	७
ध्रुग्-राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।	ध्रुग्-राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।	,,	,,
गोविन्दगोद्विजसुरार्तिहरावतार	गोविन्द गोद्विजसुरार्त्तिहरावतार	,,	८
योगश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्त ॥	योगेश्वराऽखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥	,,	,,
मनोःक्षेत्र	मनोः क्षेत्रे	१०३	१
विसमय	विस्मय	,,	१० (भाषा में)
पुरुवा	पुरूरवा	,,	१४ (,,)